Working of the Legislative Council

in

UTTAR PRADESH

From 1952 to 1962

●

A THESIS

submitted under the supervision of

Prof. Mohan Lal

for the Degree of Doctor of Philosophy of Allahabad University

Indra Deo Mishra

1972

POLITICS DEPARTMENT
UNIVERSITY OF ALLAHABAD

प्राक्कथन

उत्तर प्रदेश विधान परिषद् को शोध प्रबन्ध का विषयवस्तु बनाये जाने का कारण

संवैधानिक समस्याओं में सबसे अधिक विवादास्पद विषय विधान-मण्डल का दूसरा सदन है, किन्तु जितना वह विवादास्पद है, संविधानवेत्ताओं के लिए वह उतना ही अधिक आकर्षण का केन्द्रविन्दु भी है। संसार के द्वितीय सदनों की तरह ही भारतीय संघ के राज्यों में भी द्वितीय सदन की स्थापना का प्रश्न विवादास्पद रहा है और वर्तमान समय में भी जिन राज्यों में विधान परिषद् है, उसके अस्तित्व को बनाये रखने के प्रश्न पर विवाद है।

विधान परिषद् के पक्ष तथा विपक्ष में उन्हीं परम्परागत तर्कों को दुहराया जाता रहा है जिन तर्कों को ब्रिटिश लार्ड सभा तथा अन्य द्वितीय सदनों के पक्ष तथा विपक्ष में प्रयोग किया गया है। कभी-कभी तो विधान परिषद् के दो-एक गुण-अवगुणों के आधार पर ही विधान परिषद् की उपयोगिता का मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाता है, किन्तु इस प्रकार का प्रयास अथवा रूढ़िवादी विचारों तथा परम्परागत तर्कों की पृष्ठभूमि में विधान परिषद् का मूल्यांकन उचित नहीं है। इस प्रकार के प्रयास से विधान परिषद् के पक्ष अथवा विपक्ष में स्थायी एवं उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता। उदाहरणार्थ २४ नवम्बर १९४८ को संविधान सभा में पश्चिमी बंगाल के प्रतिनिधि-मंडल बंगाल में विधान परिषद् की स्थापना के पक्ष तथा विपक्ष के प्रश्न पर बराबर-बराबर विभाजित थे, किन्तु दूसरे दिन ही बारह सदस्यों ने विधान परिषद् की स्थापना के पक्ष में मत दिया था तथा तीन सदस्यों ने विपक्ष में। इसीप्रकार दिसम्बर १९४८ में मद्रास, बम्बई और उत्तरप्रदेश के प्रतिनिधियों ने विधान परिषद् के पक्ष में मत दिया था, किन्तु मई १९४९ में

उन्हीं प्रतिनिधियों ने विधान परिषद् के प्रश्न को पुनः उभाड़ा । १९६७ के आम चुनाव के बाद भी बंगाल, पंजाब, बिहार और उत्तर प्रदेश के विधान सभाओं ने अपने-अपने राज्यों से विधान परिषद् के उन्मूलन के लिए संकल्प पारित किया था । ३ अप्रैल १९७० को बिहार विधान सभा में तीन के विरुद्ध सभी सदस्यों ने विधान परिषद् के उन्मूलन के पक्ष में मत दिया था,[1] किन्तु कुछ ही दिनों के बाद सदस्यों के बहुमत ने विधान परिषद् के उन्मूलन के प्रस्ताव का खण्डन किया तथा विधान परिषद् को बनाये रखने के लिए विचार व्यक्त किया था । इसी प्रकार उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्यों ने भी विधान परिषद् को कायम रखने के लिए आवाज उठाई थी । परिणामस्वरूप आज भी दोनों प्रदेशों में विधान परिषद् कायम है ।

विधान परिषद् के सम्बन्ध में उपर्युक्त सभी विचारों में अस्थायित्व तथा निष्कर्षों में अनिश्चय के कई कारण हैं । प्रथमतः विधान परिषद् द्वारा सम्पादित कार्यों का पर्यवेक्षण किये बिना केवल परम्परागत तर्कों के आधार पर विधान परिषद् का मूल्यांकन किये जाने का प्रयास किये गये हैं । द्वितीयतः, विधान परिषद् की वास्तविक स्थिति को अलग रखकर दलीय राजनीतिक स्वार्थ की पृष्ठभूमि में उपर्युक्त निर्णय लिये गये हैं । तृतीयतः उपर्युक्त निर्णय उस समय किये गये थे जब उन प्रदेशों का राजनीतिक जीवन संक्रमण काल में था । अतएव असाधारण स्थिति अथवा संक्रमणकालीन निर्णय सामान्य स्थिति के लिए सही नहीं हो सकते ।

राजनीति शास्त्र के सामाजिक विज्ञान होने के कारण राज्य और सरकार की प्रकृति तथा उसके रूप परिवर्तन के अनुरूप ही निष्कर्ष भी बदलते रहते हैं यदि राज्य और सरकार की प्रकृति एवं उसके रूप का परिवर्तन सामान्य स्थिति में स्वभावतः हुआ होता है, तो उसके आधार पर प्रतिपादित निष्कर्ष किसी

---

१. दि सर्चलाइट, अंग्रेजी दैनिक, पटना, ४ अप्रैल १९७०, सम्पादकीय टिप्पणी, पृ० ४

भी संवैधानिक समस्या के निकालने में सहायक हो सकता है, अन्यथा संक्रमण काल या दलीय भावावेश में लिया गया निर्णय समस्या को और भी जटिल एवं विवादास्पद बना सकता है ।

अत: भारतीय संघ के राज्यों में विधान परिषद् की स्थापना के प्रश्न पर किसी निश्चित तथा सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक है कि किसी एक राज्य के विधान परिषद् को आधार बनाकर सामान्य स्थिति में उसके द्वारा सम्पादित कार्यों का शोधात्मक अध्ययन किया जाय । उत्तर प्रदेश जनसंख्या के दृष्टिकोण से भारतीय संघ की सबसे बड़ी इकाई है तथा इसके विधान परिषद् भी अन्य राज्यों की अपेक्षा सबसे बड़ा द्वितीय सदन है । उत्तर प्रदेश की राजनीतिक,प्रशासनिक तथा संवैधानिक समस्याएं अन्य राज्यों से मिलती जुलती हैं । अत: उत्तर प्रदेश विधान परिषद् को ही शोध कार्य के लिए उपयुक्त विषय समझा गया ।

शोध प्रबन्ध के कार्यकाल को १६५२ से १६६२ तक सीमित किये जाने का कारण :-

गणतंत्र भारत में संविधान के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की रचना ५ मई १६५२ को हुई थी । ५ मई १६५२ को निर्मित विधान परिषद् संगठन, स्वभाव तथा कार्य क्षेत्राधिकार में पुरानी विधान परिषद् से भिन्न है । अतएव उ०प्र० विधान परिषद् की सार्थकता तथा उपयोगिता जानने के लिए नवीन विधान परिषद् का अध्ययन आवश्यक है । इस उद्देश्य से उ०प्र० विधान परिषद् पर शोध कार्य ५ मई १६५२ से ही प्रारम्भ किया गया है ।

वस्तुत: शोध प्रबन्ध के लिए विधान परिषद् के दस वर्षों के कार्यों का अध्ययन पर्याप्त है । १० वर्ष के कार्यों के आधार पर विधान परिषद् की सार्थकता अथवा उसके सम्बन्ध में किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है । १६५२ से १६६२ के बीच प्रदेश की राजनीति में स्थायित्व था । असाधारण स्थिति अथवा संक्रमण काल में किसी विषय के प्रयोग के आधार पर

निकाला गया निष्कर्ष सामान्य परिस्थिति के लिए सही नहीं हो सकता। अतएव १९५२ से १९६२ के बीच प्रदेश की सामान्य स्थिति में कार्य करती हुई विधान परिषद् के अध्ययन के आधार पर स्थायी एवं निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए शोध प्रबन्ध के कार्यकाल को १९६२ तक ही सीमित रखा गया है। परिषद् की उत्तर प्रदेश विधान सभा से तुलना तथा शोध कार्य की सुविधा के दृष्टिकोण से भी शोध प्रबन्ध के कार्यकाल को दो विधान सभाओं के कार्यकाल (१९५२ से १९६२) तक सीमित रखा गया है।

द्वितीय सदन पर विदेशी तथा भारतीय लेखकों के कृत्य अथवा शोध प्रबन्ध :--

द्वितीय सदन पर विदेशी लेखकों के अनेक कृत्य हैं। इनमें से कुछ पुस्तकें देश विशेष से संबंधित द्वितीय सदन के ऊपर लिखी गई हैं तथा कुछ पुस्तकों में सामान्य रूप से द्वितीय सदन की विवेचना हुई है। उदाहरणार्थ जे०एच० मोर्गेन[१] एल०ओ० पाईक[२] और सी०बी० रॉबर्ट्स[३] ने अपनी पुस्तकों में लार्ड सभा के कार्यों का बृहद् वर्णन किया है। अमेरिकी सिनेट पर भी कई पुस्तकें लिखी गई हैं। जी०एच० हेन्स ने अमेरिकी सिनेट का इतिहास तथा उसके कार्यों के आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका में सिनेट के स्थान का निरूपण किया है।[४] द्वितीय सदन के सम्बन्ध में डब्ल्यू०बी०टेम्परले, एच०बी०ली-स्मीथ तथा जे०ए०आर० मैरियट की पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। टेम्परले की पुस्तक में बीसवीं सदी के प्रथम दशक में संसार के प्राय: सभी सिनेटों तथा उच्च सदनों की प्रकृति तथा उसके कार्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।[५] ली-स्मीथ की

---

१. मोर्गेन, जे०एच०, दि हाउस ऑफ लार्ड्स एण्ड कंस्टिच्यूशन, लंदन, प्रथम सं०
२. पाईक,एल०ओ०, ए पौलिटिकल हिस्ट्री ऑफ हाउस ऑफ लार्ड्स, लंदन, प्रथम संस्करण
३. रौबर्ट्स,सी०बी० फंकशन्स ऑफ दि हाउस ऑफ लार्ड्स, आक्सफोर्ड(१९२६)
४. हेन्स,जी०एच० दि सिनेट एन्ड दि युनाइटेड स्टेट्स,बोस्टन (१९२८)
५. टेम्परले, डब्ल्यू०बी०, सिनेट्स एण्ड अपर चैम्बर, लंदन (१९१०)

पुस्तक का प्रकाशन १६२३ ई० में हुआ है ।[१] लेखक ने इस पुस्तक में तत्कालीन द्वितीय सदनों की प्रकृति तथा कार्यों के अध्ययन के आधार पर द्वितीय सदन के सिद्धान्त का निरूपण किया है । जे०ए०आर० मैरियट ने अपनी पुस्तक में बीसवीं सदी के प्रथम दशक में संसार में विद्यमान द्वितीय सदनों पर प्रकाश डाला है ।[२]

यद्यपि उपर्युक्त सभी पुस्तकों में द्वितीय सदनों के संगठन तथा कार्यों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर द्वितीय सदन का समर्थन किया गया है, किन्तु यहां यह उल्लेखनीय है कि प्राय: वे सभी पुस्तकें ५०-६० वर्ष पहले लिखी जा चुकी हैं । विश्व का वर्तमान द्वितीय सदन ५०-६० वर्ष पूर्व के द्वितीय सदन से संगठन, स्वभाव, शक्तियों तथा अन्य अनेक मामलों में भिन्न हैं । अत: उपर्युक्त पुस्तकों मेंप्रतिपादित मत तथा सिद्धान्त वर्तमान द्वितीय सदनों के लिए पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है । पुन: प्रत्येक देश की भौगोलिक रचना अलग-अलग है तथा उसके सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन एवं समस्यायें भी एक दूसरे से भिन्न हैं । इस भिन्नता के कारण एक देश का द्वितीय सदन दूसरे देश के द्वितीय सदन से प्रकृति तथा संगठन मे भिन्न है तथा उनके कार्य क्षेत्राधिकार में भी अन्तर है । अत: ब्रिटिश लार्ड सभा अथवा अमेरिकी सिनेट पर लिखी गई उपर्युक्त पुस्तकों में प्रतिपादित मत तथा सिद्धान्त भारत के संघीय द्वितीय सदन अथवा इकाइयों के द्वितीय सदनों के लिए पूर्णत: लागू नहीं होते ।

भारतीय लेखकों में के०सी०मारकन्दन ने अपनी पुस्तक में मद्रास विधान परिषद् का १८६१ से १६०६ तक के ऐतिहासिक विकास का समीक्षात्मक अध्ययन किया है ।[३] श्री किदवई ने भी भारत तथा उत्तर प्रदेश के द्वितीय सदन की

---

१. ली स्मीथ, एच०बी०, सैकेन्ड चैम्बर्स इन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस,१६२३

२. मैरियट, जे०ए०आर०,सैकेन्ड चैम्बर्स एण्ड औक्सफोर्ड (१६१०)

३. मारकन्दन,के०सी०, मद्रास लेजिस्लेटिव कौंसिल, एस० चन्द० एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण

समस्याओं पर शोध प्रबन्ध तैयार किया है,[१] किन्तु यह शोध प्रबन्ध १९४२ के पूर्व ही लिखा जा चुका है । अत: इस शोध प्रबन्ध में प्रतिपादित मत संविधान के अन्तर्गत गठित नवीन द्वितीय सदनों अथवा उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के लिए लागू नहीं होते । एक अन्य पुस्तक एम० जहीर तथा जगदेव गुप्त द्वारा लिखी गई है जो १९७० में प्रकाशित हुई है ।[२] इस पुस्तक में उत्तर प्रदेश सरकार के तीनों अवयवों का संक्षिप्त विवरण के अतिरिक्त राज्य के प्रशासनिक संगठन तथा उसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण विशेष रूप से किया गया है ।

वर्तमान शोध प्रबन्ध की विशेषताएं :-

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उपर्युक्त सभी पुस्तकों तथा शोध प्रबन्धों से भिन्न है । जैसा कि शोध प्रबन्ध के शीर्षक से ज्ञात होता है, शोध प्रबन्ध का केन्द्र बिन्दु उ०प्र० विधान परिषद् का ५ मई १९५२ से १९६२ तक के कार्यों का अध्ययन है । किन्तु इसके पूर्व प्रथम दो अध्यायों में क्रमश: द्वितीय सदन के सिद्धान्त (महत्व, उपयोगिता तथा कार्य) एवं व्यवहार तथा भारत में द्वितीय सदनों के विकास पर प्रकाश डाला गया है । तृतीय अध्याय में विधान परिषद् के संगठन तथा उसकी कार्यप्रक्रियाओं के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पहलुओं की विवेचना करते हुए उसमें निहित त्रुटियों को निर्देशित किया है । चतुर्थ तथा पंचम अध्याय में विधान परिषद् का सभापति तथा परिषद् की समितियों की समीक्षा की गई है । छठे अध्याय में विधान परिषद् द्वारा सम्पादित विधायिनी कार्य-~~पद्धति~~ तथा विधायन में उसके योगदान का उल्लेख किया गया है । सरकारी तथा गैर सरकारी विधेयकों के अतिरिक्त सरकारी तथा गैर सरकारी संकल्पों पर भी परिषद् के योगदान का उल्लेख किया गया है । विधेयक पर परिषद् सदस्यों के दृष्टिकोण के अतिरिक्त दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्ध की भी विवेचना की गई है । सातवें अध्याय में

---

१. किदवई, 'प्रोब्लेम औफ सेकन्ड चैम्बर्स इन इंडिया विद स्पेशल रिफरेन्स टू यू०पी० (१९४२), थीसिस (लखनऊ विश्वविद्यालय)

२. जहीर,एम०एण्ड गुप्त,जगदेव- दि ऑरगैनाइजेशन औफ दि गवर्नमेंन्ट औफ

परिषद् और मंत्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध तथा परिषद् का मंत्रिमण्डल पर प्रभाव दर्शाया गया है। आठवें अध्याय में परिषद् में राजनीतिक दल का विकास तथा महत्त्व एवं जनमत और प्रेस का परिषद् पर प्रभाव की चर्चा की गई है। अन्त में, विधान परिषद् किस सीमा तक द्वितीय सदन के रूप में सफल रही है, उसकी त्रुटियां तथा समस्याएं क्या हैं, क्या उन त्रुटियों का निदान संभव है तथा क्या उसे निरस्त किया जाना चाहिए आदि प्रश्नों पर विचार प्रकट किये गये हैं।

उपर्युक्त अध्यायों के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के विभिन्न सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पहलुओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर परिषद् को परिशोधक तथा विचारोत्तेजक सदन के रूप में पाया गया है। परिषद् में विधेयकों पर विचार विनिमय के समय भिन्न-भिन्न वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व हुआ है। विधान सभा की अपेक्षा विधान परिषद् में बहस अधिक स्वतंत्र रूप से हुई है तथा इसके वाद-विवाद का स्तर भी सभा से ऊंचा रहा है। परिषद् ने सभा के विधायन के भार को हल्का किया है और बहुत अंशों में द्वितीय सदन के लक्ष्य को पूरा किया है। विधान परिषद् की त्रुटियों तथा उसकी समस्याओं के परिणामस्वरूप विधान परिषद् का उन्मूलन करनालाभ प्रद नहीं है, अपितु उनके निदान के द्वारा इसको द्वितीय सदन के शालीन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सक्रिय बनाना ही उपयुक्त है।

अन्त में मैं श्रद्धेय गुरुदेव प्रो० मोहनलाल जी का आजीवन ऋणी हूं जिनके पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन में तथा जिनकी कृपा से ही यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत हो सका है। आदरणीय गुरुवर प्रो० अम्बादत्त पंत(अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग)की अनुकम्पा मुझपर प्रारम्भ से हीरही है, जिसके लिए मैं मन,वचन और कर्म से सदा उनका आभारी रहूंगा। मैं अपने पूर्व निर्देशक डा० आशाराम जी के प्रति भी आभार प्रकट करना भूल नहीं सकता। श्री मेवालाल मिश्र के प्रति भी मैं आभारी हूं जिन्होंने टंकण का कार्य संपन्न किया है।

इन्द्रदेव मिश्र

(इन्द्रदेव मिश्र)

राजनीति विज्ञान विभाग,इलाहाबाद वि०वि०

विषय-सूची

अध्याय - १ पृष्ठ १ से ८

द्वितीय सदन के सिद्धान्त ,महत्व, उपयोगिता और कार्य

अध्याय २ पृष्ठ ९ से ४७

भारत तथा उत्तर प्रदेश के द्वितीय सदन के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(क) उत्तर प्रदेश विधान मण्डल का इतिहास १८६१ से १९३५ तक

(ख) द्विसदनीय विधान मण्डल की स्थापना के विचार का प्रारम्भ

मैन्टेगू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट और द्वितीय सदन-~~स्वस्न्ज सं०~~ भारतसरकार अधिनियम,१९१९ और द्वितीय सदन-स्वराज्य संविधान और द्वितीय सदन,नेहरू रिपोर्ट और द्वितीय सदन--भारतीय सांविधिक आयोग (साइमन कमीशन) और द्वितीय सदन, गोलमेज अधिवेशन और द्वितीय सदन, श्वेत पत्र और द्वितीय सदन, भारत सरकार अधिनियम १९३५ और द्वितीय सदन- भारतीय संविधान सभा और द्वितीय सदन- (अ) केन्द्रीय द्वितीय सदन का प्रश्न (आ) प्रान्तीय द्वितीय सदन का प्रश्न

अध्याय --३ पृ० ४८ से १३२

(क) उत्तर प्रदेश विधान परिषद् का संगठन

१९५८ में विधान परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि किये जाने के कारण--विधान परिषद् के संगठन की प्रणाली : सदस्यता के प्रकार एवं लक्षण--निर्वाचित सदस्य-निर्वाचन क्षेत्र- सदस्यों का कार्यकाल, सदस्यता के लिए योग्यतायें - द्विवर्षीय चुनाव और परिषद् में परिवर्तन, सदस्यों का वर्ग एवं व्यवसाय- सदस्यों की शैक्षणिक योग्यतायें - सदस्यों के व्यवहार अथवा संसदीय आचरण - सदस्यों की भाषा - वैतन, भत्ते एवं अन्य सुविधायें ।

(ख) विशेषाधिकार - विशेषाधिकार के आधार, विशेषाधिकार के प्रकार तथा उस पर प्रतिबंध - सदन की मानहानि और विशेषाधिकार की अवहेलना, विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न को उठाने एवं दण्ड देने की प्रक्रिया-विधान परिषद् में उपस्थित किये गये विशेषाधिकार के प्रश्न।

(ग) विधान परिषद् कार्य संचालन प्रक्रिया एवं विधायिनी प्रक्रिया

परिषद् की बैठक-प्रश्नोत्तर-प्रश्नों के प्रकार, अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्न, प्रश्नों के उत्तर, प्रश्नों के उत्तरों से उत्पन्न किसी सार्वजनिक हित के विषय पर चर्चा - विशेषाधिकार एवं कार्य स्थगन प्रस्ताव - राज्यपाल का अभिभाषण- आय व्यय की प्रक्रिया, विधायिनी प्रक्रिया - विधेयक के प्रकार - विधेयकों का पुर:स्थापन-पुर:स्थापन के उपरान्त प्रस्ताव-विधेयक पर विचार-विधेयक के खण्डों में संशोधन-पारण के प्रस्ताव।

अध्याय - ४ पृष्ठ १३३ से १५४

विधान परिषद् का सभापति और उपसभापति :-

निर्वाचन- सभापति और उसका निर्वाचन क्षेत्र -सभापति और राजनीतिक दल-सभापति और उसकी निष्पक्षता- सभापति के कार्य-अधिकार एवं उसकी स्थिति - सभापति द्वारा दिये गए महत्वपूर्ण निर्णय -निष्कर्ष।

अध्याय - ५ पृष्ठ १५५ से १९६

विधान परिषद् की समितियाँ

समितियों के प्रकार, परिषद् की वार्षिक समितियाँ, आश्वासन समिति, विशेषाधिकार समिति- कार्यपरामर्शदात्री समितियाँ, याचिका समिति, नियम पुनरीक्षण समिति। स्थायी समितियाँ, प्रवर समिति, संयुक्त प्रवर समिति, संयुक्त समिति, परिषद् की समितियों का मूल्यांकन।

अध्याय - ६ पृष्ठ १६६ से २५८

विधान परिषद्

(क) संविधान के अन्तर्गत विधान परिषद् का विधायिनी क्षेत्राधिकार

(ख) विधान परिषद् और पुनरीक्षण सम्बन्धी कार्य- विधान परिषद् द्वारा किये गये संशोधन

(ग) विधान परिषद् विचारोत्तेजक सदन के रूप में,

(घ) विधान परिषद् का दृष्टिकोण तथा उसके वाद-विवाद का स्तर शिक्षा सम्बन्धी विधेयक - स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी विधेयक, जमीन सम्बन्धी विधेयक ,

(ङ0) गैर सरकारी विधेयक ,

(च) निष्कर्ष ।

अध्याय - ७ पृष्ठ २५६ से २८८

विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल

(क) विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल के सम्बन्ध के स्रोत

(ग) विधान परिषद् का मंत्रिमण्डल पर प्रभाव

अध्याय - ८ पृष्ठ २८९ से ३१४

(क) राजनीतिक दल औरदबाव गुट

विधान परिषद् में दल का विकास तथा उसका गठन-विरोधी दल: प्रगतिशील संसदीय गुट, संयुक्त प्रगतिशील गुट, राष्ट्रवादी गुट, परिषद् में विरोधीदल का प्रभाव, सदन के बाहर के दल का सदन पर प्रभाव - निष्कर्ष ।

(ख) विधान परिषद् में जनता तथा जनहित का प्रतिनिधित्व

अध्याय - ६ पृष्ठ ३१५ से ३२५

विधान परिषद् का मूल्यांकन तथा निष्कर्ष

विधान परिषद् किस अंश तक द्वितीय सदन के रूप में सफल रही - परिशोधक सदन के रूप में परिषद् का योगदान, विचारोत्तेजक सदन के रूप में परिषद् का योगदान, विधान परिषद् में विधेयकों का पुर:स्थापन, विधान सभा के उतावले विधायन पर अवरोध, विधान परिषद् के वाद-विवाद का स्तर

विधान परिषद् की समस्यायें :-

सदस्य संख्या का प्रश्न, प्रतिनिधित्व की समस्या तथा मनोनयन की समस्या - सुझाव ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची - पृष्ठ १ से ७

अध्याय – १

द्वितीय सदन के सिद्धान्त : महत्व, उपयोगिता और कार्य

सरकार के तीन अंग हैं — व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। व्यवस्थापिका सरकार का विधि निर्मात्री अवयव है। इसलिए इस अवयव को सामान्यत: विधानमण्डल कहते हैं।

विधान मण्डल के दो रूप हैं — एक सदनीय विधान मण्डल और द्विसदनीय विधान मण्डल। द्विसदनीय विधान मण्डल के एक सदन को प्रथम सदन या निम्न सदन तथा दूसरे सदन को द्वितीय अथवा उच्च सदन कहते हैं। प्रथम सदन का संगठन प्रत्यक्ष एवं वयस्क मताधिकार पर होता है तथा दूसरे सदन का गठन समाज में व्याप्त विभिन्न हितों और मतों को यथोचित अभिव्यक्ति देने के लिए किया जाता है। जिन विभिन्न हितों और मतों की अभिव्यक्ति तथा उनकी रक्षा के लिए अक्सर द्वितीय सदन का गठन किया जाता है, वे हैं — सम्पत्ति, वर्ग, व्यवसाय, ज्ञान, विज्ञान, अल्पसंख्यक तथा संघीय इकाइयों के हित तथा प्रतिनिधित्व।

विधान मण्डल के उपर्युक्त दोनों रूपों की उपयोगिता पर विद्वानों में मतभेद है। प्रो० लास्की, डिटोक्यूवाइल आदि एक सदनीय व्यवस्था के समर्थक हैं। दूसरी ओर मैरियट, ली स्मीथ, टैम्परले, बार्कर, सी०एफ० स्ट्रॉन्ग, विल्सन आदि द्विसदनीय विधान-मण्डल के पक्षपाती हैं। इन दो प्रकार के विचारकों से भिन्न हरमन फाइनर उस कोटि के विचारक हैं जो विधान मण्डल के दोनों रूपों को उपयोगी मानते हैं। उनके अनुसार एकसदनीय अथवा द्विसदनीय विधान-मण्डल की आवश्यकता का निर्णय किसी देश की भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं के आधार पर किया जा सकता है।

अतएव, द्वितीय सदन के पक्ष तथा विपक्ष के तर्क जालों में फंसने की अपेक्षा फाइनर द्वारा प्रस्तुत उस प्रश्नावली का उल्लेख करना उपयोगी होगा जिसकी

सहायता से एक देश (अथवा संघीय इकाई) आसानी से एक सदनीय अथवा द्विसदनीय विधानमण्डल की स्थापना के सम्बन्ध में निर्णय ले सकता है[१] :-

(१) क्या प्रतिनिधि विवेक सम्पन्न हैं ?

(२) क्या दल अपने कार्यक्रम पर्याप्तरूप से सोच विचारकर निश्चित करता है, क्या वह अपने लक्ष्य के प्रति वफादार तथा जागरूक है ?

(३). क्या राजनीतिक जीवन में ऐसा संसदीय न्याय तथा सहिष्णुता का भाव विद्यमान है जिससे अत्याचार न हो ?

(४) प्रथम सदन किस अंश तक अनुभवी विशेषज्ञों से सहायता प्राप्त करता है तथा लोकसेवकों की अज्ञात गलतियों से उत्पन्न संकटों से बच पाता है ?

(५) किस अंश तक प्रथम सदन संघीय इकाईयों के सम्बन्ध में तथा देश के भीतरी तथा विदेशी मामलों में सूचना रखता है तथा उनके समुचित स्रोतों पर अधिकार रखता है ?[२]

(६) प्रथम सदन किस अंश तक समुचित चिन्तन तथा विचार विनिमय के द्वारा विधि निर्माण की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखता है तथा आन्तरिक विधायिनी विरोधाभास अथवा गलत विधायिनी मनोभाव को दूर करता है ?

यदि एक देश (अथवा संघीय इकाई) इन प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे तो शायद ही उसके पास इन प्रश्नों के यथेष्ट तथा संतोषजनक उत्तर हों । भारत तथा भारतीय संघ की इकाइयों के पास तो, निश्चित रूप से, इन प्रश्नों के यथेष्ट तथा संतोषजनक उत्तर नहीं हैं । भारतीय संसद के निम्न सदन अथवा राज्य विधानमण्डलों के प्रथम सदन की वर्तमान स्थिति से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे

---

१. फाइनर, एच, दि थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मॉडर्न गवर्नमेंट, लंदन (1961) पृष्ठ 433

२. संघीय इकाई के सम्बन्ध में इकाई के प्रथम सदन किस अंश तक प्रदेश के आन्तरिक तथा केन्द्रीय मामलों के सम्बन्ध में सूचना रखते हैं तथा उनके समुचित स्रोतों पर अधिकार रखते हैं ।

अकेले मात्र उपर्युक्त प्रश्नावली में निर्देशित कार्यों का सम्पादन तथा लक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति समुचित रूप से कर सकेंगे । अतः उपर्युक्त इन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तरों के अभाव में द्वितीय सदन की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है ।

द्वितीय सदन की उपयोगिता : ऐतिहासिक दृष्टिकोण से :-

वर्तमान स्थिति में द्वितीय सदन की उपयोगिता तथा उसके कार्यों पर प्रकाश डालना आवश्यक है । ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा विधायिनी सभी दृष्टिकोणों से द्वितीय सदन की अनिवार्यता सिद्ध है । इतिहास इस बात का प्रमाण है कि विश्व के सभी विकसित राष्ट्रों ने द्वितीय सदन की अनिवार्यता को स्वीकार किया है । मैरियट के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मन इम्पायर, आस्ट्रेलियन कौमनवेल्थ, कनाडा तथा स्विट्जरलैण्ड बीसवीं शताब्दी में इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।[१] वस्तुतः ब्रिटेन, फ्रांस, भारत तथा सोवियत संघ ने भी द्वितीय सदन को स्वीकार किया है । यद्यपि इंगलैण्ड , फ्रान्स तथा संयुक्त-राज्य में कुछ समय के लिए एक सदनीय व्यवस्था का प्रयोग किया गया था, किन्तु इंगलैण्ड में उसका प्रयोग असाधारण स्थिति में, फ्रांस में संवैधानिक विस्थापन के समय तथा अमेरिका में संक्रमण काल में हुआ था ।[२] अतः इन राज्यों में उपर्युक्त असामान्य स्थिति में एक सदनीय व्यवस्था के अल्पावधि प्रयोग को महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

सामाजिक दृष्टिकोण से :-

समाज में व्याप्त विभिन्न हितों के प्रतिनिधित्व तथा उनकी रक्षा के लिए द्वितीय सदन आवश्यक है । द्वितीय सदन में विभिन्न अल्पसंख्यक वर्ग तथा

---

१. मैरियट, जे ए आर, सेकेण्ड चेम्बर्स, ऑक्सफोर्ड (1910) पृष्ठ 115

२. वही

व्यवसायों के हितों के प्रतिनिधित्व द्वारा विधान मण्डल को संतुलित बनाया जा सकता है । उदाहरणार्थ निम्नसदन द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को कम करने के अत्यधिक प्रयास से उत्पन्न दुष्प्रभाव को धनी वर्गों के प्रतिनिधित्व के द्वारा रोका जा सकता है । इसी प्रकार अन्य अल्प संख्यक वर्गों के प्रतिनिधित्व के द्वारा प्रथम सदन के आवेगी तथा उनके हितों पर कुठाराघात करने वाले विधेयकों को पारित होने से अवरोधित किया जा सकता है । वस्तुत: भारत जैसे वृहद राष्ट्र में तथा उत्तर प्रदेश जैसे वृहद संघीय इकाई में जहां विभिन्न हितों, व्यवसायों तथा अल्प-संख्यकों का अस्तित्व बना हुआ है, उनके प्रतिनिधित्व के लिए द्वितीय सदन आवश्यकहै । फाइनर के अनुसार भी भिन्न-भिन्न हित यदि बहुमत के चंगुल से बचाव चाहते हों तो उसके लिए द्वितीय सदन की आवश्यकता होगी ।[१]

राजनीतिक दृष्टिकोण से :-

राजनीतिक दृष्टिकोण से भी द्वितीय सदन आवश्यक है । संघीय शासन की सफलता के लिए केन्द्र और संघीय इकाइयों के बीच संतुलन बनाये रखना अनिवार्य है । यह संतुलन संघीय इकाइयों के हितों का प्रतिपालन तथा रक्षण द्वारा ही संभव है । अत: उनके हितों के संरक्षण तथा प्रतिपालन के लिए उनका प्रतिनिधित्व आवश्यक है जिसकी पूर्ति द्वितीय सदन द्वारा ही संभव है । पुन: देश अथवा राज्य के प्रबुद्ध, योग्य, अनुभवी तथा विशेषज्ञ जो प्रथम सदन के आम चुनाव में निर्वाचन लड़ना नहीं चाहते अथवा इन चुनावों में अपने समय का अपव्यय नहीं करना चाहते, उनकी योग्यता तथा अनुभव से देश अथवा राज्य को लाभान्वित करने के लिए उन्हें विधान मण्डल में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है । द्वितीय सदन में इन प्रबुद्ध तथा अनुभवी लोगों को स्थान देकर इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है ।

आर्थिक दृष्टिकोण से :-

संसदीय प्रजातंत्र की सफलता के लिए स्वतंत्र रूप से आर्थिक विधायन (Economic Legislation) का तर्क प्रस्तुत किया जाता है । आर्थिक विधायन

---

१. फाइनर, द थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट पृष्ठ ४३२

के लिए कार्यकारिणी से अलग आर्थिक संसद के निर्माण का सुझाव दिया जाता है।[१] इस सम्बन्ध में तीन प्रकार के विकल्प प्रस्तुत किये गये हैं :--(१) स्वतंत्र रूप से आर्थिक परिषद् का निर्माण, (२) प्रथम सदन को आर्थिक सदन के रूप में परिणत करना, तथा (३) द्वितीय सदन को ही आर्थिक विधायन का कार्य-भार सौंपना।

स्वतंत्र रूप से आर्थिक परिषद् के निर्माण का सुझाव अधिक उपयोगी नहीं दीखता। आर्थिक परिषद् अथवा आर्थिक संसद के निर्माण से सरकार पर व्यय का भार बढ़ जायेगा, जबकि वर्तमान समय में द्वितीय सदन के उन्मूलन के लिए आर्थिक व्यय के भार को ही आधार बनाया जाता है। आर्थिक विधायन के सम्बन्ध में दूसरा विकल्प भी उपयुक्त नहीं है।[२] बार्कर के शब्दों में, राजनीतिक प्रथम सदन का लोप तथा आर्थिक सदन के स्थानापन्न का अर्थ प्रजातंत्र का स्पष्टतः लोप है।[३]

वस्तुतः आर्थिक सदन की आवश्यकता है या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है, किन्तु आर्थिक विधायन की आवश्यकता यदि उचित समझी जाती हो तो प्रथम सदन और द्वितीय सदन की तुलना में द्वितीय सदन को ही यह कार्य सौंपना उपयुक्त है। इससे दो लाभ होंगे। प्रथमतः प्रथम सदन की राजनीतिक तथा जन-तांत्रिक प्रकृति नष्ट नहीं होगी, द्वितीयतः द्वितीय सदन के अनुभवी तथा विशेषज्ञों से आर्थिक विधायन के कार्य में सहायता मिलेगी।

---

१. बार्कर - रिफ्लेक्शन्स ऑन गवर्नमेंट, आक्सफोर्ड प्रथम संस्करण, पुनः मुद्रित (१९५८) पृष्ठ पृ. २५१-२५२

२. वही.

३. वही - "The disappearance of the Political first chamber, and the substit-ution of an economic chamber is obviously the disappearance of democrac

विधायिनी दृष्टिकोण से :-

विधायिनी दृष्टिकोण से भी द्वितीय सदन आवश्यक है। इस संदर्भ में एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। टॉमस जैफरसन फ्रांस से लौटने के बाद द्विसदनीय विधान मण्डल की स्थापना के प्रश्न पर वाशिंगटन का विरोध कर रहे थे। घटना जलपान लेते समय घटी और वाशिंगटन ने पूछा, "आपने (जैफरसन) कॉफी को अपने तश्तरी (Saucer) में क्यों डाला?" जैफरसन ने उत्तर दिया, "ठंडा करने के लिए।" वाशिंगटन ने कहा, "इसीतरह हम लोग विधायन को ठंडा करने के लिए उसे सिनेट रूपी तश्तरी में डालते हैं।"[१]

वस्तुत: द्वितीय सदन प्रथम सदन द्वारा पारित विधेयकों में प्रवाहित आवेग तथा उत्तेजना को शान्त करने में सहायता पहुँचाता है। यह विधेयक के पुर:स्थापन तथा अन्तिम पारण के बीच विलम्ब द्वारा महत्वपूर्ण विधेयकों पर जनमत जानने के लिए अवसर प्रदान करता है तथा प्रथम सदन के उतावले विधायन पर अवरोध लगाता है। यह प्रथम सदन द्वारा पारित विधेयकों की त्रुटियों को दूर करता है तथा यह विश्वास दिलाता है कि विधेयकों को छानबीन तथा विचार करने के बाद पारित किया गया है।

द्वितीय सदन के कार्य :-

द्वितीय सदन की उपयोगिता को देखते हुए उसके कार्यों का उल्लेख करना भी आवश्यक है। मैरियट, ली स्मीथ तथा फाइनर द्वारा प्रतिपादित द्वितीय सदनों के कार्यों एवं विश्व के प्रमुख देशों के द्वितीय सदनों द्वारा सम्पादित कार्यों के आधार पर, इसके कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :-

(१) निम्न सदन द्वारा पारित विधेयकों की जांच एवं पुनरीक्षण करना,

(२) उन विधेयकों का आरम्भ करना जो विवाद रहित हों तथा निम्न सदन द्वारा आसानी से पारित हो जांय। इस प्रकार के विधेयकों पर निम्न सदन

१- राव, बी. एन. दि इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन इन मेकिंग से उद्धृत ओरियंट लौंगमेन (१९६०) पृष्ट २५५

में भेजने के पूर्व द्वितीय सदन में समुचित रूप में विचार हो जावे ।

(३) विधेयक को कानून बनाने तक की प्रक्रिया में उस मात्रा तक विलम्ब करना, जिससे विधेयक पर जनमत पूर्णरूपेण जाना जा सके । यह उन विधेयकों के सम्बन्ध में आवश्यक है जो संविधान के मौलिक तत्वों को प्रभावित करते हैं अथवा विधि निर्माण में नये सिद्धान्तों को पुर:स्थापित करते हैं या उन प्रश्नों के मामले पर जिस पर देश का मत प्राय: बराबर-बराबर विभाजित मालूम पड़ता हो ।

(४) व्यापक और महत्वपूर्ण प्रश्नों पर समुचित एवं स्वतंत्र रूप से विचार विनिमय करना । उदाहरणार्थ पर-राष्ट्र नीति अथवा अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर उस समय विवाद करना जिस समय निम्नसदन कार्यभार से दबा हुआ हो तथा उन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर समुचित रूप से विचार करने के लिए उसके पास समय का अभाव रहा हो । द्वितीय सदन में महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचारविनिमय अधिक लाभदायक होते हैं । इसके दो कारण हैं । प्रथमत: द्वितीय सदन के सदस्य अनुभवी तथा प्रबुद्ध होते हैं । विचार प्राय: निर्दलीय तथा स्वतंत्र रूप से होता है । द्वितीयत: व्यापक तथा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर द्वितीय सदन के विचार विनिमय तथा मत-विभाजन से कार्यकारिणी अथवा मंत्रिमण्डल के अस्तित्व पर कोई खतरा नहीं पहुंचता है । अत: इस प्रकार के प्रश्नों पर इस सदन में गहराई एवं गम्भीरता से तथा स्वतंत्र रूप से वाद-विवाद होता है ।

उपर्युक्त कार्यों के सन्तोषजनक सम्पादन के लिए द्वितीय सदन को न्यायिक स्वभाव का होना तथा उसमें दलीय पक्षपात से ऊपर उठकर कार्य करने की क्षमता का होना अनिवार्य है । इसके अतिरिक्त विधेयक पर उसके विचार तथा सुझाव इस योग्य हों जिस पर प्रथम सदन पुनर्विचार करने के लिए बाध्य हो सके, किन्तु विधेयक की मौलिक नीतियों का समर्थन करने की आदत उसमें न हो अन्यथा द्वितीय सदन के उच्चस्तरीय विचार विनिमय के लक्षण नष्ट हो जायेंगे । उसमें विधेयक को समाप्त करने की शक्ति भी न हो ।

द्वितीय सदन का संगठन :-

द्वितीय सदन के उपर्युक्त कार्यों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य है, किन्तु उसके संगठन के सम्बन्ध में मतभेद है। आलोचकोंके अनुसार द्वितीय सदन के संगठन के संतोषजनक उपाय निकालना कठिन है। वस्तुत: द्वितीय सदन पूर्णत: मनोनीत हो या पूर्णत: निर्वाचित अथवा आंशिक मनोनीत और आंशिक निर्वाचित हो, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। प्रो० लास्की के अनुसार सरकार मनोनीत द्वितीय सदन से अवांछनीय लाभ उठा सकती है। वह केवल अपने दल के लोगों को द्वितीय सदन में मनोनयन के द्वारा भर सकती है।[१] दूसरी ओर यदि इसका संगठन प्रथम सदन के समान किया जाता है, तो इसे प्रथम सदन का प्रतिरूप कहा जाता है और यदि संगठन अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होता है तो निहित स्वार्थों के प्रतिनिधियों का अनुपात बढ़ जाने का संदेह प्रकट किया जाता है।

द्वितीय सदन के संगठन की समस्या का हल निकालने के लिए विश्व के द्वितीय सदनों के संगठन पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश द्वितीय सदन निर्वाचित हैं। अत: निर्वाचित द्वितीय सदन को श्रेष्ठता दी जा सकती है। किन्तु देश की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तथा संवैधानिक समस्याओं को ध्यान में रखकर द्वितीय सदन के संगठन के सम्बन्ध में निर्णय करना श्रेयस्कर होगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसके संगठन की प्रणाली इस भाँति हो जिससे राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू एवं विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व संभव हो सके।

---

१. लास्की, एच०जे०, ए ग्रामर ऑफ पौलिटिक्स, चतुर्थ संस्करण, पुन: मुद्रित, १९५० ई, पृ० ३२९

अध्याय-२

भारत तथा उत्तर प्रदेश के द्वितीय सदन के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :-

द्वितीय सदन की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की उपेक्षा करना वांछनीय नहीं है। भारत के वर्तमान द्वितीय सदनों के पक्ष अथवा विपक्ष में राय कायम करने के दृष्टिकोण से भी उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना आवश्यक है, किन्तु द्वितीय सदन का प्रश्न जिस प्रकार विभिन्न आयोग, समितियों तथा सम्मेलनों द्वारा विचारार्थ लिया गया है तथा उनके द्वारा उस पर विचार व्यक्त किये गए हैं, उसका सम्यक् वर्णन किसी एक स्थान पर नहीं मिलता।

अतएव इस अध्याय में भारत में द्वितीय सदनों के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करने के पूर्व उत्तर प्रदेश विधानमण्डल के विकास का उल्लेख किया गया है जिसे १८६१ से १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के कार्यान्वयन होने के पूर्व तक सीमित रखा गया है, दूसरे शीर्षक के अन्तर्गत भारत तथा उत्तर प्रदेश के द्वितीय सदन के विकास का उल्लेख किया गया है।

भारतीय परिषद् अधिनियम १८६१ के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश का विधान मण्डल :-

सर्वप्रथम १८६१ के भारतीय परिषद् अधिनियम के अन्तर्गत महाराज्यपाल को बंगाल, पश्चिमोत्तर प्रान्त और पंजाब के लिए विधान परिषद् की स्थापना करने का अधिकार दिया गया था किन्तु पश्चिमोत्तर प्रान्त और अवध के लिए विधान परिषद् की स्थापना पचीसवर्ष बाद १८८६ में की गई थी।

पश्चिमोत्तर प्रान्त और अवध की विधान परिषद् में ६ सदस्य थे। इसमें तीन नामजद सदस्य सरकारी थे। परिषद् का सभापति लैफ्टिनेंट गवर्नर

परिषद् का दसवां पदेन सदस्य था ।

परिषद् की बैठक मुख्यतया इलाहाबाद, लखनऊ और बरेली में हुआ करती थी । १८८६ से १८६२ तक ६ वर्ष के कार्यकाल में इसकी कुल १५ बैठकें हुई थीं । परिषद् की पहली बैठक ८ जनवरी १८८७ को हुई थी । १४ नवम्बर १८८७ से १६ फरवरी १८६१ तक इसकी एक भी बैठक नहीं हुई ।

छ: वर्ष की अवधि में परिषद् ने केवल पांच विधेयकों को पारित किया था । पहला विधेयक १८८७ का "नार्थ वैस्टर्न प्रोविन्स और अवध क्लॉजेज बिल" था । शेष चार विधेयक नगरपालिका तथा स्थानीय विषयों से सम्बन्धित थे ।

विधान परिषद् की इतनी कम बैठकें तथा इसके द्वारा इतनी कम संख्या में विधेयक पारित होने का कारण इसकी सीमित शक्ति थी । इसका क्षेत्राधिकार कुछ स्थानीय विषयों तक ही सीमित था । अधिकांश दीवानी तथा फौजदारी कानून केन्द्रीय विधान मण्डल द्वारा ही बनाये गये थे । अत: इस सीमित क्षेत्राधिकार के कारण परिषद् से किसी प्रभावशाली कार्य की आशा नहीं की जा सकती थी ।

यद्यपि अधिकार इसका सीमित था, किन्तु यह अपने विधायिनी क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत प्रान्त से सम्बन्धित केन्द्रीय कानून को भी संशोधित कर सकती थी । वस्तुत: समवर्ती विधायिनी क्षेत्राधिकार उस दिन से प्रचलित है जिस दिन प्रथमवार केन्द्रीय तथा स्थानीय विधान मण्डल का प्रादुर्भाव हुआ । किन्तु नियमित तथा सुव्यवस्थित समवर्ती विधायिनी सूची का आविर्भाव १६३५

१, पश्चिमोत्तर प्रान्त का निर्माण १८३५ में हुआ था जो वर्तमान उत्तर प्रदेश का एक भाग था । इसका विधान मण्डल कलकत्ता में रखा गया था । दूसरा भाग अवध(oudh) था जो १८५८ के पहले तक स्वतंत्र इकाई के रूप में था । अवध पर कलकत्ता विधान मण्डल के कानून लागू नहीं होते थे ।

के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत ही हुआ है ।

भारतीय परिषद् अधिनियम, १८६२ के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश का विधान मण्डल :-

भारतीय परिषद् अधिनियम, १८६२ के द्वारा पश्चिमोत्तर प्रान्त और अवध के विधान परिषद् की संख्या ६ से बढ़ाकर १५ कर दी गई । इनमें से ६ सदस्य नामजद होते थे, किन्तु सरकारी नामजद सदस्य ७ से अधिक नहीं हो सकते थे । शेष ६ सदस्यों का निर्वाचन निम्नप्रकार से होता था :-

दो सदस्यों का निर्वाचन नगरपालिकाओं के दो समूहों द्वारा, दो सदस्यों का प्रान्त के जिला परिषदों के दो समूहों द्वारा, एक सदस्य का इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा तथा एक सदस्य का निर्वाचन अपर इण्डिया चैम्बर्स आफ कामर्स द्वारा होता था ।

१८६२ के भारतीय परिषद् अधिनियम के अन्तर्गत गठित विधान परिषद् की प्रथम बैठक ६ दिसम्बर १८६३ को लखनऊ में हुई थी । १६ वर्ष की अवधि में (१८६२ से १९०६ तक) इसकी कुल ४६ बैठकें हुई । परिषद् की कार्यवाही नियमित रूप से नहीं चलती थी । १८६६ में इसकी एक भी बैठक नहीं हुई । परिषद् की सबसे अधिक बैठकें १८६६ में हुई । इस वर्ष बैठकों की कुल संख्या ६ थी ।

१८६२ के अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित विधान परिषद् वार्षिक वित्तीय व्यौरे पर विवाद कर सकती थी तथा एक निश्चित सीमा तक प्रश्न भी पूछ सकती थी, परन्तु यह न तो वार्षिक वित्तीय व्यौरे के किसी विषय पर मत विभाजन ही कर सकती थी और न स्वतंत्र रूप से प्रस्ताव ही उपस्थित कर सकती थी । इसे पूरक प्रश्न पूछने का भी अधिकार नहीं था । सदस्यों के पूरक प्रश्न पूछने के अधिकार के अभाव के कारण ही शासन की ओर से उत्तर स्पष्ट तथा विस्तृत हुआ करते थे । परिषद् में बजट पर हुए भाषण के सारांश से विदित होता है कि सदस्यों ने वित्तीय विषयों पर पर्याप्त रुचि

रुचि दिखलायी है ।

निष्कर्ष यह कि परिषद् के सदस्यों के अधिकारों में पहले की अपेक्षा कुछ वृद्धि हुई थी । इसके अतिरिक्त प्रथमवार परिषद् के कुछ स्थानों पर निर्वाचन की भी व्यवस्था की गई थी ।

भारतीय परिषद् अधिनियम १९०९ के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश का विधान मण्डल :-

भारतीय परिषद् अधिनियम १९०९ के अन्तर्गत संयुक्तप्रान्त आगरा और अवध के परिषद् की सदस्य संख्या ४८ कर दी गई थी । इनमें से २६ सदस्य नामजद[१] तथा २ विशेषज्ञ नामजद सदस्य सरकारी अथवा गैर सरकारी होते थे । इसके अतिरिक्त ४ सदस्य बड़ी नगरपालिकाओं द्वारा, ८ सदस्य जिला परिषदों और छोटी नगर पालिकाओं द्वारा, १ सदस्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा २ सदस्य भूमिधरों द्वारा, ४ सदस्य मुसलमानों द्वारा और १ सदस्य अपर इण्डिया चैम्बर आफ कामर्स द्वारा निर्वाचित होते थे । जिला परिषदों और नगरपालिकाओं द्वारा निर्वाचन क्रमावर्तन से होता था ।

१९०९ अधिनियम के अन्तर्गत परिषद् की पहली बैठक ५ जनवरी १९१० को हुई । ११ वर्ष की अवधि में इसकी कुल बैठकें ९८ बार हुईं । कोई भी वर्ष परिषद् की बैठक के बिना खाली नहीं रहा । सबसे अधिक बैठकें १९१५ में हुईं । इस वर्ष बैठकों की संख्या १५ थीं । १९११, १९१४ और १९१७ में प्रत्येक वर्ष परिषद् की केवल सात बैठकें हुईं जो सबसे कम थीं ।

परिषद् वार्षिक वित्तीय ब्यौरे पर एक दिन से अधिक वाद-विवाद कर सकती थी तथा संकल्प प्रस्तावित कर उस पर विचार विनिमय तथा मत विभा-

---

१. नामजद सरकारी कर्मचारी की संख्या २० से अधिक नहीं हो सकती थी ।

जन भी कर सकती थी । सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्न पर विचार विनिमय तथा मत विभाजन के प्रयोजन से परिषद् संस्तुति के रूप में प्रस्ताव भी प्रस्तावित कर सकती थी । इसके अतिरिक्त मूल प्रश्नकर्ता पूरक प्रश्न भी पूछ सकता था । १८९२ अधिनियम के अन्तर्गत परिषद् को ये अधिकार प्राप्त नहीं थे ।

इस प्रकार परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि की गई थी । नामजद सदस्यों का अनुपात पूर्व के दो अधिनियमों के अन्तर्गत गठित विधान परिषद् के नामजद सदस्यों से कम कर दिया गया था, तथापि उनकी संख्या निर्वाचित सदस्यों की संख्या से अधिक थी । नाजद सदस्यों का बहुमत होने के कारण निर्वाचित सदस्यों का महत्त्व गौण था ।

भारत सरकार अधिनियम १९१९ के अन्तर्गत उ०प्र० का विधान परिषद् :-

१९१९ का भारत सरकार अधिनियम विधानमण्डल के विकास के सन्दर्भ में विशेष रूप से स्मरणीय है । इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय विधान मण्डल तथा प्रशासन के सम्बन्ध में अनेक नवीन प्रयोग किये गए,[१] उदाहरणार्थ, १९१९ अधिनियम के अन्तर्गत ही सर्वप्रथम केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच विधायिनी तथा प्रशासकीय विषयों का विभाजन किया गया । वर्तमान संविधान की अनुसूची७ के प्रथम और द्वितीय सूची के समान ही १९१९ अधिनियम के अन्तर्गत भी केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सूची का उल्लेख किया गया था, किन्तु समवर्ती सूची का उल्लेख नहीं था । केन्द्रीय सूची के अन्तर्गत ४७ विषय थे तथा

---

१. द्वैध शासन १९१९ अधिनियम के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक प्रयोग था । द्वैध शासन का अर्थ था दो प्रकार की शासन प्रणाली । विषयों को दो भागों में बाँटा गया था - हस्तांतरित विषय और संरक्षित विषय ।' हस्तांरित विषय वे थे जिनका प्रशासन राज्यपाल विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमण्डल के परामर्श से करता था । संरक्षित विषय का प्रशासन राज्यपाल विभागीय सचिवालय की सहायता से करता था ।

प्रान्तीय सूची में ५२ विषय । प्रान्तीय सूची में वर्णित अनेक विषयों पर केन्द्रीय विधान मण्डल को कानून बनाने का अधिकार था । कोई विषय प्रान्तीय सूची के अन्तर्गत है अथवा केन्द्रीय सूची के अन्तर्गत इसका निर्णय महा-राज्यपाल करता था ।

भारत सरकार अधिनियम १९१९ के अन्तर्गत संयुक्त प्रान्त के विधान परिषद् की महत्तम सदस्य संख्या ११८ निश्चित कर दी गई जिसे कानून के द्वारा और भी बढ़ाया जा सकता था । नियम के अनुसार, निर्वाचित सदस्यों की संख्या ७० प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए था । दूसरी ओर नामजद सदस्यों की संख्या २० प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी, किन्तु राज्यपाल परिषद् में किसी विधेयक पर विचार के समय विधेयक के विषय में ज्ञान तथा अनुभव रखने वाले दो अतिरिक्त व्यक्तियों को नामजद कर सकता था ।

अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित नियम के द्वारा विधान परिषद् के उपर्युक्त निर्धारित सदस्य संख्या में वृद्धि की गई थी । फलत: विधान परिषद् में १०० निर्वाचित सदस्य[१] तथा २३ नामजद सदस्य थे ।[२]

---

१. निर्वाचित सदस्य विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों से निम्नलिखित संख्या में निर्वाचित होते थे :-

गैर मुस्लिम शहरी निर्वाचन क्षेत्र से ८, देहाती निर्वाचनक्षेत्र से ५
मुस्लिम शहरी निर्वाचन क्षेत्रसे ४ तथा देहाती मुस्लिम निर्वाचनक्षेत्र से २५,
अवध के ताल्लुकदारों द्वारा ४,
आगरा प्रान्त के भूधरों द्वारा २
अपर इंडिया चैम्बर ऑफ कॉमर्स द्वारा १, तथा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा १ ।

२. नामजद सदस्यों में --१६ सरकारी कर्मचारी होते थे, कम से कम तीन सदस्य आंग्ल भारतीय, भारतीय ईसाई तथा पिछड़ी जाति के प्रतिनिधित्व के लिए नाम निर्देशित किये जाते थे । शेष वैसे व्यक्तियों को राज्यपाल नामजद किया करते थे जिन्हें वह ठीक समझते थे ।

मतदाताओं की योग्यता में काफी अन्तर रखा गया था। गैर मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं की योग्यताएं मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं की योग्यताओं से उच्च रखी गई थीं। फलस्वरूप गैर मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र में बहुत कम लोगों को मताधिकार प्राप्त था। महिलाओं को मताधिकार से वंचित रखा गया था, किन्तु १ फरवरी १९२३ को परिषद् के एक संकल्प द्वारा महिलाओं को भी मताधिकार प्रदान किया गया।

परिषद् का कार्यकाल ३ वर्ष था। राज्यपाल अधिसूचना द्वारा तीन वर्ष के कार्यकाल को बढ़ा सकता था।

नियमन के अन्तर्गत परिषद् की बैठकों का सभापतित्व करने का अधिकार राज्यपाल से ले लिया गया था, तथापि उसे परिषद् का सत्रारम्भ, स्थगन तथा उसे भंग करने का एवं परिषद् को सम्बोधित करने का अधिकार था।

विधान परिषद् के प्रथम सभापति की नियुक्ति ४ वर्ष के लिए राज्यपाल द्वारा की जाने की व्यवस्था की गई थी। राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये गये प्रथम सभापति के लिए परिषद् की सदस्यता अनिवार्य नहीं थी। दूसरे तथा अन्य उत्तराधिकारी सभापति का निर्वाचन परिषद् के सदस्यों में से किये जाने की व्यवस्था की गई थी। उप सभापति भी परिषद् के सदस्यों में से ही निर्वाचित हो सकता था।

परिषद् के कार्य संचालन हेतु राज्यपाल स्थायी आदेश निकालने के लिए अधिकृत था। परिषद् इन आदेशों को राज्यपाल की स्वीकृति से संशोधित कर सकती थी। गणपूर्ति का निर्धारण, प्रश्न तथा अन्य विषयों पर वाद-विवाद के विनियमन के लिए भी राज्यपाल नियम बना सकता था।

अधिनियम के अन्तर्गत सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार भी प्रदान किये गए थे। पहलीबार सदस्यों को भाषण सम्बन्धी विशेषाधिकार प्राप्त हुआ। सदस्यों को गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का अधिकार भी दिया गया। यह विशेषा-

धिकार सदस्यों को केवल उसी समय प्राप्त थे जब वे विधायक के रूप में कार्य करते थे ।

परिषद् के कार्यक्षेत्राधिकार में भी वृद्धि की गई थी । बजट तथा राजस्व प्राक्कलित व्यौरे को परिषद् में उपस्थित किया जाना अनिवार्य था । परिषद् इनमें से किसी भी अनुदान को कम कर सकती थी । वह बजट तथा वार्षिक राजस्व प्राक्कलित व्यौरे को अस्वीकार भी कर सकती थी ।

१६०६ अधिनियम के अन्तर्गत परिषद् को इतने व्यापक अधिकार प्राप्त नहीं थे । यद्यपि १६१६ अधिनियम के अन्तर्गत परिषद् के अधिकार व्यापक थे, किन्तु वे प्रभावशाली नहीं थे । राज्यपाल को परिषद् द्वारा अस्वीकृत अनुदान को पुनर्जीवित तथा स्वीकृत करने का अधिकार प्राप्त था । वह गैर सरकारी विधेयकों को उपस्थित करने के लिए दिन का निर्धारण भी कर सकता था ।

सदस्यों को आवश्यक लोक महत्व के प्रश्न पर कार्य स्थगन प्रस्ताव को प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं था, किन्तु सभी सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार था । १६०६ अधिनियम के अन्तर्गत केवल मूल प्रश्नकर्ता को ही पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया था । १६१६ अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रतिबन्ध को हटा दिया गया तथा सभी सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया ।

प्रश्नों को तारांकित तथा अतारांकित करने की प्रथा को भी अपनाया गया । तारांकित प्रश्नों के उत्तर की प्रतिलिपि परिषद् की बैठक प्रारम्भ होने के पूर्व सदस्यों को वितरित कर दी जाती थी ।

नियमन तथा स्थायी आदेश के अन्तर्गत परिषद् की वित्त तथा लोकलेखा समिति के निर्माण की भी व्यवस्था की गई थी । वित्त समिति का निर्माण यू०पी० के लैफ्टिनैन्ट गवर्नर द्वारा किया गया था । वित्त समिति का कार्य

व्यय के सभी नवीन प्रस्तावों की जांच करना था । यद्यपि समिति की सभी संस्तुतियों को सम्बन्धित विभाग ने स्वीकार किया था, किन्तु उनका ज्ञान परिषद् को नहीं कराया गया था ।

लोक लेखा समिति के दो तिहाई सदस्यों का निर्वाचन परिषद् के गैर सरकारी सदस्यों द्वारा होता था तथा एक तिहाई सदस्यों को राज्यपाल नामजद करता था । लोक लेखा समिति का कार्य वर्तमान लोक लेखा समिति के कार्य के समान ही था ।

इस प्रकार १६२१ में गठित संयुक्त प्रान्त की विधान परिषद् १६३७ में प्रदेश में द्विसदनीय व्यवस्था को कार्यान्वित किये जाने के पूर्वतक १६१६ अधिनियम तथा उसके अन्तर्गत निर्मित नियमन के अनुसार समय-समय पर संगठित होती रही तथा कार्य करती रही ।

निष्कर्ष यह कि १६३५ के भारत सरकार अधिनियम द्वारा यू०पी० विधान मण्डल के एक सदनीय व्यवस्था का इतिहास समाप्त होता है, किन्तु १६३५ अधिनियम के अन्तर्गत प्रदेश के लिए की गई द्विसदनीय व्यवस्था की व्याख्या के पूर्व उन विचारधाराओं को लिपिबद्ध करना अनिवार्य है जो केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधानमण्डल को द्विसदनीय बनाये जाने से सम्बन्धित थीं तथा जिनका प्रारम्भ १६१६ के भारतसरकार अधिनियम के पूर्व से ही हो चुका था ।

द्विसदनीय विधान मण्डल की स्थापना के विचार का आरम्भ :-

यद्यपि भारत सरकार अधिनियम १६३५ के पहले तक अन्य प्रान्तों की तरह संयुक्त प्रान्त में भी एक सदनीय व्यवस्था थी, परन्तु १६१६ अधिनियम के ठीक कुछ वर्ष पूर्व केन्द्र तथा प्रान्त में द्वितीय सदन की स्थापना के लिए विचार किया जा रहा था ।

मौन्टैगू चैम्स फोर्ड रिपोर्ट और द्वितीय सदन :-

मौन्टैगू चैम्स फोर्ड प्रतिवेदन[१] ने महाराज्यपाल के विधान परिषद के स्थान पर केन्द्र में एक विधान सभा तथा एक राज्य सभा की स्थापना के लिए संस्तुति की थी ।[२] मौन्टैगू और चैम्सफोर्ड का उद्देश्य राज्य सभा को अपीलीय सदन बनाना था । इस उद्देश्य से प्रतिवेदन ने निम्न सदन द्वारा अस्वीकृत विधेयक को सपरिषद् महाराज्यपाल की सिफारिश पर राज्यसभा द्वारा पारित किये जाने के लिए संस्तुति की थी ।

प्रान्तीय द्विसदनीय व्यवस्था के सम्बन्ध में मौन्टैगू और चैम्सफोर्ड इसकी शीघ्र स्थापना के पक्ष में नहीं थे । इसका कारण यह था कि बहुत से प्रान्तों ने दोनों सदनों के गठन के लिए प्रान्तों में पर्याप्त योग्य सदस्यों का अभाव बताया था तथा यह सन्देह प्रकट किया था कि द्वितीय सदन धनी-वर्गों के हितों पर आघात पहुंचाने वाले विधेयकों को पारित होने में अवरोध डाल सकता है । साथ ही यह तर्क दिया गया कि द्वितीय सदन के धनी सदस्यों द्वारा निर्वाचन के समय उम्मीदवार एवं मतदाताओं को हतोत्साहित किये जाने का प्रयास किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त द्विसदनीय विधानमण्डल द्वारा विधि निर्माण की प्रक्रिया में अनावश्यक रूप से विलम्ब होने के परिणामस्वरूप प्रान्तीय विधायन कार्य के अधिक बोझिल होने की संभावना भी व्यक्त की गई । इन्हीं विचारों के परिणामस्वरूप मौन्टैगू चैम्स फोर्ड प्रतिवेदन ने प्रान्तों में द्वितीय सदन की शीघ्र स्थापना के लिए संस्तुति नहीं की थी ।

---

१. मौन्टैगू चैम्सफोर्ड प्रतिवेदन की अभिघोषणा २० अगस्त १९१७ को हुई थी । मौन्टैगू १८ अक्टूबर १९१७ को लंदन से रवाना हुए थे और भारत में साढ़े पांच महीने रुके थे । प्रतिवेदन का प्रकाशन १९१८ में हुआ था ।

२. मौन्टैगू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट, पैरा - २७३

नोट :- द्वितीय सदन का नाम कौंसिल आफ दि स्टेट' था । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से कौंसिल आफ दि स्टेट' के स्थान पर 'राज्य सभा' का प्रयोग किया गया है ।

द्वितीय सदन के विपक्ष में कुछ प्रान्तों द्वारा दिये गये उपर्युक्त तर्कों के बावजूद मौन्टेगू चैम्सफोर्ड समिति के सदस्य द्वितीय सदन की उपयोगिता से अनभिज्ञ नहीं थे । समिति के सदस्यों की राय में ज्यों-ज्यों प्रान्तीय विधान परिषद् का रूप संसदीय होता जायगा, उसी क्रम एवं अनुपात से प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना की आवश्यकता महसूस होने लगेगी । इसी दृष्टि-कोण से समिति ने प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर विचार करने का भार सामयिक आयोग[1] को सौंपा था ।[2]

भारत सरकार अधिनियम, १६१६ और द्वितीय सदन :-

भारत सरकार अधिनियम १६१६ ने मौन्टेगू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के सारांश के प्रस्तावना के रूप में स्वीकार किया जिसके परिणामस्वरूप १६१६ अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान मण्डल में द्वितीय सदन का जन्म हुआ । यह उल्लेखनीय है कि जब १६११ के संसदीय अधिनियम द्वारा ब्रिटेन की लॉर्ड सभा के कार्यक्षेत्रा-धिकार को सीमित किया गया था, वहाँ १६१६ के भारतसरकार अधिनियम द्वारा भारत में प्रथमवार द्विसदनीय व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ था, किन्तु यह व्यवस्था केन्द्रीय विधानमण्डल के लिए ही की गई थी । प्रान्तीय विधान मण्डल को पूर्ववत् एक सदनीय ही रखा गया था ।

अधिनियम के अनुभाग ६३ में यह व्यवस्था थी कि केन्द्रीय विधान मण्डल महाराज्यपाल और दो सदनों से गठित होगा - राज्यसभा और विधान सभा ।[3]

---

१. रिपोर्ट के अन्तर्गत सामयिक आयोग (पैरियोडिक कमीशन) का निर्माण भविष्य में प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर विचार करने के लिए किया जाना था ।

२. इंडियन स्टैच्युटी कमीशन, वौल्यूम २, पार्ट २, चैप्टर ४, पृ० ६६

३. भारत सरकार अधिनियम, १६१६, सैक्शन ६३

इसी के परिणामस्वरूप केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना हुई। राज्यसभा की महत्तम सदस्य संख्या ६० नियत की गई जिसमें ३४ स्थान निर्वाचित सदस्यों के लिए तथा शेष २६ स्थान नामजद सदस्यों[१] के लिए निर्धारित किये गये। इन स्थानों का वितरण विभिन्न प्रान्तों में निम्नलिखित प्रकार से हुआ था :—

प्रान्त	नामजद		निर्वाचित					
	सरकारी	गैर सर०	गैर मुस्लिम	मुस्लिम	सिक्ख	गैरसाम्प्रदायिक) अन्य	यूरोपियन वाणिज्य	योग
भारत सरकार	११	-	-	-	-	-	-	११
मद्रास	१	१	४	१	-	-	-	७
बम्बई	१	१	३	२	-	-	१	८
बंगाल	१	१	३	२	-	-	१	८
संयुक्तप्रान्त	१	१	३	२	-	-	-	७
पंजाब	१	३	१	२	१	-	-	८
बिहार और उड़ीसा	१	-	२	१	-	-	-	४
मध्यप्रान्त और बरार	-	२	-	-	-	१	-	३
आसाम	-	-	-	१	-	-	-	१
बर्मा	-	-	-	-	-	१	१	२
उत्तरपश्चिमी सीमाप्रान्त	-	१	-	-	-	-	-	१
योग	१७	१०	१६	११	१	२	३	६०

उपर्युक्त तालिका से यह विदित है कि मुस्लिम तथा सिक्ख निर्वाचन

१. नामजद सदस्यों में २० सदस्य सरकारी होते थे।

मंडल की भी व्यवस्था की गई थी । इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण साम्प्रदायिकता के आधार पर भी किया गया था ।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मतदाताओं की योग्यताएं भिन्न रखी गई थीं । सामान्यत: मताधिकार केवल उन लोगों को प्रदान किया गया जिनकी आय एक निश्चित रकम से ऊपर थी तथा जो आयकर देते थे ।[१] इसके अतिरिक्त नगरपालिकाओं, जिला परिषदों और सहकारी बैंक के अध्यक्षों तथा उपाध्यक्षों, विश्वविद्यालय की शिक्षावृत्ति पाने वाले उच्चकोटि के विद्वानों तथा विशिष्ट साहित्यिकों को भी मताधिकार दिया गया था ।

राज्य सभा का कार्यकाल ५ वर्ष निश्चित किया गया । इसका कार्यक्षेत्राधिकार विधान सभा के समकक्ष रखा गया, किन्तु यह विधान सभा की तरह अनुदान पर मतदान नहीं कर सकती थी । यद्यपि इसे अनुदान पर मतदान का अधिकार नहीं था, फिर भी यह प्रथम सदन द्वारा पारित वित्त विधेयक को अस्वीकार अथवा उसमें संशोधन कर सकती थी । इस अधिकार के सम्बन्ध में यह आलोचना की गयी कि राज्यसभा को वित्तविधेयक के सम्बन्ध में संशोधन तथा उसे अस्वीकृत करने का अधिकार द्वितीय सदन को सामान्यतया दिये जाने वाले अधिकारों से अधिक है ।

विधान सभा और सरकार के बीच मतभेद उत्पन्न होने पर राज्यसभा का स्वभाव सरकार का समर्थन करना था । राज्यसभा की इस प्रकृति के कारण राष्ट्रवादी इसे श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखते थे । उदाहरणार्थ विधान सभा द्वारा अस्वीकृत 'प्रिन्सेज प्रोटेक्शन बिल' और १६२४ के बजट में प्रस्तावित नमक-कर-वृद्धि के प्रस्ताव को सरकार की संस्तुति के आधार पर

---

१. जिनकी आमदनी १० हजार रुपये से अधिक थी तथा जो ७५० रुपया राजस्व आयकर चुकाते थे, उन्हें ही मताधिकार दिया गया था ।

राज्यसभा ने पारित कर दिया था । इस दृष्टिकोण से राज्य सभा रूढ़िवादियों के बचाव के लिए आड़ थी । यह निहित स्वार्थों की रक्षा तथा सरकार के उद्देश्य को पूरा करने के लिए साधन मात्र थी । इसलिए यह देश के प्रगतिवादी तत्वों द्वारा आलोचना का विषय बनी रही ।

अधिनियम के दूसरे अनुभाग में प्रान्तीय विधान मण्डल के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई थी :-

" प्रत्येक राज्यपाल के प्रान्त में एक विधान परिषद् होगी जो कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों और इस अधिनियम के अन्तर्गत की गई व्यवस्था के अनुकूल नामजद तथा निर्वाचित सदस्यों से गठित होगी ।"[१] इस प्रावधान के अनुसार संयुक्त प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में एक सदनीय विधान मण्डल ही रखा गया ।

निष्कर्ष यह कि १९१९ अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान मण्डल को पाश्चात्य देशों के समान द्विसदनीय बनाया गया, किन्तु प्रान्तों में एक सदनीय व्यवस्था ही रखी गयी ।

स्वराज संविधान और द्वितीय सदन :-

स्वराज संविधान का निर्माण लार्ड बर्कनहेड[२] द्वारा भारतीयों को दी गई चुनौती के परिणामस्वरूप हुआ था । बर्कन हैड को यह विश्वास था कि भारतीय नेता एकमत होकर संविधान का प्रारूप तैयार नहीं कर सकते । उसकी इस चुनौती को स्वीकार करते हुए १९२७ के मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने

---

१. भारत सरकार अधिनियम, १९१९, सैक्शन ७२ (ए)

२. लार्ड बर्कन हैड, उस समय "सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया" थे ।

अपनी कार्यकारिणी समिति को विभिन्न संगठनों[1] के सहयोग से स्वराज संविधान तैयार करने के लिए अधिकृत किया था ।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति उपर्युक्त निर्देशित कार्य के सम्पादन के प्रसंग में २७ मई १९२७ की बैठक में द्वितीय सदन की आवश्यकता पर विचार विमर्श किया था जिसके परिणामस्वरूप स्वराज्य संविधान के अन्तर्गत केन्द्र में द्विसदनीय व्यवस्था को स्थान दिया गया/प्रथम सदन का नाम विधान सभा तथा द्वितीय सदन का नाम सिनेट रखा गया ।[2]

सिनेट का गठन प्रान्तों के निर्वाचकों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के एकल संक्रमण पद्धति अथवा सूची प्रणाली द्वारा किये जाने की व्यवस्था की गई, किन्तु प्रथम सिनेट का प्रथम निर्वाचन महाराज्यपाल की परिषद् के निर्णयानुसार कराये जाने का विकल्प भी रखा गया । प्रथम निर्वाचन के पश्चात् सिनेट के निर्णयानुसार निर्वाचन कराया जा सकता था ।

सिनेट का अधिकार, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियों को निर्धारित करने का अधिकार संसद को दिया गया , किन्तु जब तक संसद इस सम्बन्ध में निर्णय न ले ले, तब तक वे ब्रिटेन की कॉमन्स सभा के अधिकार, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियों के समान रखे गये ।

सिनेट का कार्यक्षेत्राधिकार ~~तथा उन्मुक्ति~~ धन विधेयक को छोड़कर अन्य विषयों में सभा के समान था । धन विधेयक के सम्बन्ध में इसे केवल १४ दिनों तक विलम्ब करने का अधिकार दिया गया । संविधान के अन्तर्गत विवादास्पद विधेयक को महाराज्यपाल की अध्यक्षता में दोनों सदनों की संयुक्त

---

१. राजनीतिक श्रमिक, वाणिज्य तथा सम्प्रदायिक संगठन—राव, बी०शिवा 'दि फ्रेमिंग औफ इंडियन कंस्टीच्युशन, (१९६८), पृ० १२ ।

२. स्वराज संविधान के धारा ३२ के अनुसार " भारत के राष्ट्रमंडल की विधायिनी शक्ति भारतीय संसद में निहित होगी जिसमें राजा, सिनेट और विधान सभा होंगे ।"

समिति को निर्दिष्ट किये जाने की व्यवस्था की गई ।[१]

निष्कर्ष यह कि स्वराज संविधान में केन्द्रीय विधान मंडल को द्विसदनीय बनाने का प्रावधान था । केन्द्रीय द्वितीय सदन का नाम अमेरिकी 'सिनेट' की तरह 'सिनेट' रखा गया था , परन्तु उसके निर्वाचन की प्रणाली तथा कार्यक्षेत्राधिकार अमेरिकी सिनेट से भिन्न थे । अधिकार और शक्तियों की दृष्टि से यह ब्रिटेन की लार्ड सभा के समान थी ।

नेहरू रिपोर्ट और द्वितीय सदन :-

१८ मई १९२८ के बम्बई के सर्वदलीय सम्मेलन में पं० मोतीलाल की अध्यक्षता में संविधान का प्रारूप तैयार करने के उद्देश्य से एक समिति नियुक्त की गई जिसमें अनुदार, हिन्दू महासभा, ब्राह्मण, सिक्ख लीग तथा मजदूरों के भी प्रतिनिधि सम्मिलित किए गए ।[२] तीन महीने के कठिन परिश्रम के बाद १४ अगस्त १९२८ को समिति का प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ तथा २८ अगस्त (१९२८) को लखनऊ के सर्वदलीय सम्मेलन में प्रतिवेदन पर विचार किया गया ।

नेहरू रिपोर्ट ने संघीय बनावट पर विचार विमर्श के समय द्वितीय सदन की आवश्यकता पर भी विचार किया था । इसने दो आधारों पर केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना के लिए संस्तुति की थी (१) प्रथम सदन में शान्त वातावरण का अभाव रहने के कारण विधेयकों पर समुचित रूप से विचार नहीं हो पाता, (२) प्रथम सदन में विधि निर्माण के समय सम्प्रदायिक भावनाएं विधेयक को अत्यधिक प्रभावित करती हैं जिसके परिणामस्वरूप

---

१. धन विधेयक को छोड़कर शेष सभी विवादास्पद विधेयकों के सम्बन्ध में ।

२. मुन्शी, के०एम०, इंडियन कंस्टिट्यूशनल डॉक्युमेन्ट्स, वॉल्यू० १, बम्बई प्रथम संस्करण १९६७, पृ० २४

विधेयक पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो जाता है। अतः नेहरू रिपोर्ट की दृष्टि में उपर्युक्त दोनों परिस्थितियों में विधेयक पर पुनर्विचार करने के लिए द्वितीय सदन आवश्यक है।

नेहरू रिपोर्ट में द्वितीय सदन के संगठन के सम्बन्ध में भी विचार व्यक्त किया गया। प्रान्तों के आकार, जनसंख्या तथा उसके विकास में महान अन्तर होने के कारण यह राज्यों के समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर द्वितीय सदन की स्थापना के पक्ष में नहीं थी। फलत: छोटे और बड़े राज्यों के बीच असंतुलित सम्बन्ध के भय को दूर करने के उद्देश्य से इसने द्वितीय सदन में छोटे राज्यों से अधिक अनुपात में सदस्य निर्वाचित किये जाने के लिए संस्तुति की थी।

द्वितीय सदन का निर्वाचन प्रान्तीय विधान मण्डल द्वारा कराये जाने के लिए सिफारिश की गई थी। नेहरू रिपोर्ट की राय में इस प्रकार के निर्वाचन प्रणाली से प्रान्तों में यह भावना होगी कि उन्हें केन्द्र में भी स्थान दिया जा रहा है।[१]

निष्कर्ष यह कि नेहरू रिपोर्ट ने केन्द्र में द्वितीय सदन की आवश्यकता का अनुभव किया था। इसने जिन तर्कों के आधार पर केन्द्र में इसकी स्थापना के लिए संस्तुति की थी, उसके आधार पर तत्कालीन प्रान्तों में तथा आज भी राज्यों में द्वितीय सदन की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। प्रान्तीय विधान मण्डल के प्रथम सदन में भी शान्तवातावरण का अभाव तथा सम्प्रदायिक तत्वों का भाव रहता है। अत: विधेयक पर शान्त वातावरण में पुनर्विचार करने के लिए द्वितीय सदन की आवश्यकता स्वत: हो जाती है।

---

१. नेहरू रिपोर्ट, पृ० ६४

भारतीय सांविधक आयोग और द्वितीय सदन :-

यद्यपि केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना का प्रश्न अब भी विवादास्पद बना हुआ था । अतएव भारतीय सांविधिक आयोग[१] द्वारा पुन: इस प्रश्न को विचारार्थ लिया गया । इस आयोग के समक्ष विचारणीय विषयों में एक यह भी प्रश्न था कि "स्थानीय विधान मंडल में द्वितीय सदन की स्थापना वांछनीय है या नहीं ।"

आयोग ने इस प्रश्न पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार किया, किन्तु आयोग के सदस्य द्वितीय सदन के पक्ष अथवा विपक्ष पर एक मत नहीं थे । इस मत भिन्नता के कारण ही प्रान्तीय सरकार से उनके राज्यों में द्वितीय सदन की स्थापना के पक्ष या विपक्ष में विचार मांगे गये थे । पांच राज्यों के प्रान्तीय सरकारों ने द्वितीय सदन का विरोध किया था । उनका तर्क यह था कि द्वितीय सदन की स्थापना के लिए उनके प्रान्तों में आवश्यक तत्त्वों का अभाव है । इसके विपरीत यू०पी० की सरकार का विचार यह था कि प्रान्त के विशिष्ट रूढ़िवादी तत्त्वों को द्वितीय सदन में स्थान देकर उनकी विशिष्ट योग्यता से प्रान्त को लाभान्वित कराया जा सकता है । इस कारण उसने द्वितीय सदन के पक्ष में मत दिया था । बम्बई की सरकार ने भी परिशोधक सदन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए द्वितीय सदन को अनावश्यक बताया था । बम्बई सरकार की दृष्टि से परिशोधक सदन की आवश्यकता ने द्वितीय सदन के संगठन के लिए आवश्यक सामग्री की कठिनाई और निम्न सदन

---

१. भारतीय सांविधिक आयोग (इण्डियन स्टैच्युटरी कमीशन) की स्थापना भारत सरकार अधिनियम, १९१९ के सैक्शन ८४ के अन्तर्गत होना था । इस खंड के अनुसार १९१९ अधिनियम के पारित होने के १० वर्ष बाद, १९२९ में इस आयोग का निर्माण होना था, किन्तु इसके पूर्व ही भारतीयों द्वारा संविधान संशोधन की मांग तथा साम्प्रदायिक दंगों के कारण विधि आयोग की नियुक्ति दो वर्ष पूर्व १९२० में ही की गई थी । आयोग के अध्यक्ष साइमन थे । इसलिए इसे साइमन आयोग भी कहते हैं ।

को कमजोर बनाने के भय को दबादिया है । बंगाल की सरकार ने भी द्वितीय सदन की स्थापना के पक्ष में राय दी थी ।

प्रान्तीय समितियों में मद्रास और बंगाल समितियों के एक-एक सदस्य को छोड़कर सभी सदस्यों ने तथा यू०पी० समिति के सभी सदस्यों ने एकमत होकर द्वितीय सदन के पक्ष में मत दिया था । इन प्रान्तीय समितियों द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि द्वितीय सदन राज्यपाल और विधान मण्डल के बीच उत्पन्न मतभेद को दूर करने में सहायक हो सकता है । आसाम की प्रान्तीय समिति भी परिशोधक सदन के पक्ष में थी, परन्तु इसने विधेयक के पुनरीक्षण सम्बन्धी कार्य को द्वितीय सदन से भिन्न एक प्रकार के असाधारण परिषद् को सौंपने के लिए संस्तुति की थी ।

अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्य भी द्वितीय सदन के पक्ष में थे ।

उपर्युक्त प्रान्तीय समितियों के विचारों तथा सुझावों पर भारतीय केन्द्रीय समिति ने पुनर्विचार किया, किन्तु समिति के सदस्यों में मतैक्य नहीं था । इस समिति के दो सदस्यों ने किसी भी प्रकार के द्वितीय सदन की स्थापना के लिए सुझाव नहीं दिया, एक सदस्य ने सभी प्रान्तों में उसकी स्थापना के लिए विचार व्यक्त किया तथा ६ सदस्यों ने १० वर्ष के लिए केवल यू०पी० में द्वितीय सदन के प्रयोग किये जाने का सुझाव दिया ।

द्वितीय सदन के पक्ष या विपक्ष में प्रान्तीय समितियों द्वारा जिस प्रकार के विचार भी दिये गए हों, परन्तु भारतीय सांविधिक आयोग के सभी सदस्य विधायन के पुनरीक्षण अथवा परिशोधन की आवश्यकता के विचार से सहमत थे । आयोग की राय में विधेयक के प्रतिवेदन तथा तृतीय वाचन के

---

१. प्रान्तीय समितियां सांविधिक आयोग से संलग्न थीं ।

बीच एक छोटे दक्ष निकाय का निर्माण किया जा सकता है । इसका कार्य संकल्पों तथा विधेयकों के अन्तिम प्रारूप को प्रतिवेदित करना तथा विधायिनी अथवा प्रशासकीय तार्किक द्वन्द्वों को निर्देशित करना है ।[१]

निष्कर्ष यह कि सांविधिक आयोग के अन्तर्गत निर्मित केन्द्रीय समिति ने परिशोधक सदन की आवश्यकता का अनुभव किया था । अधिकांश प्रान्तीय समितियों की दृष्टि में भी द्वितीय सदन आवश्यक था । यू०पी० की प्रान्तीय समिति के सदस्यों ने सर्वसम्मति से द्वितीय सदन का समर्थन किया था । यू०पी० सरकार द्वारा रूढ़िवादी तत्वों के द्वितीय सदन में प्रतिनिधित्व से लाभान्वित होने की आशा व्यक्त की गई थी । इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं । प्रथमत: प्रदेश में रूढ़िवादी तत्व विद्यमान था । द्वितीयत:, सरकार रूढ़िवादी तत्वों का समर्थन करती थी तथा रूढ़िवादी भी सरकार के समर्थक थे ।

<u>गोलमेज अधिवेशन और द्वितीय सदन</u> :-

गोलमेज अधिवेशन ने दो वैसे संघीय सदनों की स्थापना के लिए संस्तुति की थी जिसके द्वारा केन्द्र में जनमत का प्रतिनिधित्व संभव हो सकता है । प्रथम सदन को सभा तथा दूसरे सदन को सिनेट के नाम से पुकारा गया ।

---

१. रिपोर्ट आफ दि इंडियन स्टैच्युट्री कमीशन, वो० २, रिकोमैन्डेशन्स, कलकत्ता, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, सैन्ट्रल पब्लिकेशन्स ब्रान्च (१९३०) चैप्टर ४, पृ० १०० । " A small expert body might be constituted between the report and the Third reading stage. This body would be required to report on the final drafting of measures and to call attention to any point of conflict with existing administrative or legislative argument".

२. द्वितीय गोलमेज अधिवेशन(सैकन्ड राउण्ड टैबुल कान्फ्रेन्श), प्रारम्भ ७ सितम्बर १९३१ को हुआ था ।

मताधिकार समिति[1] ने सिनेट में विभिन्न प्रान्तों के लिए स्थान का निर्धारण निम्नलिखित अनुपात में किया था ।[2] बंगाल, मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बिहार और उड़ीसा प्रत्येक के लिए १७ स्थान, मध्यप्रान्त के लिए ७, आसाम और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के लिए पांच-पांच तथा दिल्ली, अजमेर, मारवाड़, बलुचिस्तान और कूर्ग प्रत्येक के लिए एक-एक स्थान निर्धारित किया गया था । इस प्रकार इन प्रान्तों के १२४ स्थान सिनेट की पूर्ण सदस्य संख्या का ७० प्रतिशत था तथा शेष ४० प्रतिशत स्थान समति द्वारा शासकीय देशी राज्यों के आरक्षण के लिए प्रस्तावित किया गया था । राजाओं ने सिनेट में ५० प्रतिशत स्थान के लिए मांग की थी तथा सिनेट की न्यूनतम सदस्य संख्या १५० निश्चित करने के लिए सुझाव दिया था जिससे प्रत्येक शासकीय देशी राज्य का प्रतिनिधित्व सिनेट में संभव हो सके ।[3]

तृतीय गोलमेज अधिवेशन में पुन: उपर्युक्त सुझावों पर विचार किया गया था । इस अधिवेशन में सामान्य मत यह था कि राजाओं को सिनेट में ४० प्रतिशत स्थान ही दिये जांय, यथपि इस पर भी सभी एकमत नहीं थे ।

सिनेट के सदस्यों का निर्वाचन प्रान्तीय विधान मण्डल द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से किये जाने का निश्चय किया गया था । अधिवेशन के इस प्रस्ताव से मताधिकार समति ने भी सहमति प्रकट की थी । मताधिकार समिति ने संस्तुति की थी कि सिनेट में प्रान्तीय परिषद् के सम्पूर्ण मतदाताओं का प्रतिनिधित्व होना चाहिए ।[4]

---

१. मताधिकार समति (फ्रेन्चाइज कमिटी) लोथियन के सभापतित्व में द्वितीय गोलमेज अधिवेशन के समय संवैधानिक समस्याओं के अध्ययन के लिए निर्मित की गई थी ।
२. वरम्हा आर० दि मेकिंग आफ दि न्यू कंस्टीट्यूशन फोर इं०,१६३४, चैप्टर४ पृ० १३-१४
३. वही, पृ० १४०

गोलमेज अधिवेशन की संघीय उपसमिति ने नेहरू रिपोर्ट के समान ही संघीय द्वितीय सदन में संघीय इकाई के समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का विरोध किया था ।

सिनेट की सदस्यता के उम्मीदवार के लिए निम्नतम उम्र ३० वर्ष निर्धारित की गई थी, किन्तु यह निम्नतम उम्र देशी राज्यों के प्रशासक उम्मीदवारों के लिए लागू नहीं होती थी ।

गोलमेज अधिवेशन में प्रान्तीय विधानमण्डल को द्विसदनीय बनाये जाने के प्रश्न पर विवाद था । परिणामस्वरूप द्वितीय गोलमेज अधिवेशन के बाद जब मताधिकार समिति लोथियन के सभापतित्व में भारत आयी थी, उस समय तक भी प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर अन्तिम निर्णय नहीं हो पाया था, यद्यपि इसकी स्थापना के लिए जमींदारों तथा रूढ़िवादियों द्वारा मांग की जा रही थी । द्वितीय सदन के समर्थकों ने प्रान्तों में द्वितीय सदन की आवश्यकता की पुष्टि के लिए दूसरे देशों के संघीय इकाइयों के द्विसदनीय विधानमण्डल का उदाहरण प्रस्तुत किया था तथा यह आशा व्यक्त की थी कि यह प्रथम सदन के उतावले विधायन पर अवरोध लगा सकता है एवं विधायन की त्रुटियों को सुधार सकता है । इसके विपरीत उग्रवादियों ने उच्च सदन में रूढ़िवादियों के स्थायी बहुमत से लोकप्रिय सदन के प्रगतिशील कार्य पर बाधा पहुंचने की संभावना व्यक्त की थी । पक्ष तथा विपक्ष में इन उग्र विचारों के फलस्वरूप लोथियन समिति प्रान्तीय द्वितीय सदन के प्रश्न पर किसी भी प्रकार का निश्चित सुझाव देने में असमर्थ रही ।

श्वेत-पत्र और द्वितीय सदन :--

तृतीय गोलमेज [१] अधिवेशन में प्रकट किये गए विचार तथा उसके निर्णय के आधार पर प्रकाशित श्वेत-पत्र ने उपर्युक्त समस्या के निदान हेतु

---

१. मार्च १९३३ में ब्रिटेन की सरकार ने तृतीय गोलमेज अधिवेशन में प्रकट किये गए विचार तथा निर्णय के आधार पर श्वेत-पत्र (व्हाइट पेपर) का ड्राफ्ट (कृपया अगले पृष्ठ पर देखें)

बंगाल, संयुक्त प्रान्त और बिहार में द्वितीय सदन के लिए तथा शेष प्रान्तों में एक सदनीय विधान मण्डल की स्थापना के लिए सुझाव दिया था । उपर्युक्त तीनों प्रान्त द्विसदनीय व्यवस्था की स्थापना के १० वर्ष बाद स्वविवेक से विधानमण्डल के कानून द्वारा एक सदनीय व्यवस्था को अपना सकते थे । इसके विपरीत एक सदनीय विधान मण्डल वाले प्रान्तों को द्विसदनीय व्यवस्था की स्थापना के लिए ब्रिटेन की सरकार से स्वीकृति लेना आवश्यक था ।

द्विसदनीय विधान मण्डल के प्रथम सदन का नाम विधान सभा तथा द्वितीय सदन का नाम विधान परिषद् रखा गया । विधानसभा का कार्यकाल ५ वर्ष तथा विधान परिषद् का कार्यकाल ७ वर्ष निर्धारित किया गया ।[१]

<u>भारतसरकार अधिनियम १९३५ और द्वितीय सदन :-</u>

१९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र में राज्य परिषद् पूर्ववत् बनी रही । इसके २६० स्थानों में १५६ स्थान ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के लिए तथा १०४ स्थान भारतीय राज्यों के लिए निर्धारित थे । ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के लिए निर्धारित १५६ स्थानों में ६ स्थान महाराज्यपाल द्वारा नामजदगी के लिए आरक्षित थे तथा शेष १५० स्थानों पर निर्वाचन होता था ।

१९३५ के भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रान्तीय विधान मण्डल

पिछले पृष्ठ का शेष -
बनाकर प्रकाशित किया था । इस पत्र में भारत के लिए नवीन संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए कुछ निर्देशन दिया गया था । श्वेत-पत्र में कुछ वैसे विषय का भी उल्लेख किया गया था जिनका निर्णय गोलमेज अधिवेशन में नहीं हो सका था । -- अग्रवाल,आर०एन०,नैशनल मूवमैन्ट एं०कंस्टिच्युशनल डेप०,पृ०१७१

---

१. बम्हर्स, आर० दी मैकिंग आफ दी न्यू कन्स्टीट्यूशन, पृ० ५७

के इतिहास में एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ । प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर वर्षों से चले आ रहे विवाद की मध्यस्थता १९३५ के अधिनियम द्वारा की गयी । फलत: मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्तप्रान्त बिहार और आसाम में द्वितीय सदन की स्थापना की गई तथा शेष प्रान्तों में एक सदनीय विधानमण्डल ही रखा गया ।

अधिनियम में द्वितीय सदन की स्थापना के लिए कोई तर्क अथवा कारण प्रस्तुत नहीं किया गया था, तथापि यह आशा प्रकट की गई थी कि द्वितीय सदन द्वारा अतिरिक्त अवरोध, संतुलित विधायन तथा अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा संभव हो सकेगा ।

संयुक्त प्रान्त में सर्वप्रथम द्वितीय सदन की स्थापना १९३७ में हुई थी । इस वर्ष एक सदनीय विधान परिषद् को द्वितीय सदन में परिणत कर दिया गया था ।

संयुक्त प्रान्त के विधान मण्डल के विधान सभा की महत्तम सदस्य संख्या २२८ निश्चित की गई तथा विधान परिषद् की ६० । विधान परिषद् की निम्नतम सदस्य संख्या ५८ निर्धारित की गई थी । विधान परिषद् के इन ६० स्थानों में ३४ स्थान सामान्य थे, १४ स्थान मुस्लिम के लिए तथा १ स्थान यूरोप निवासी के लिए निश्चित था । राज्यपाल द्वारा नामजद सदस्यों के लिए भी स्थान निर्धारित था । वह अधिक से अधिक ८ सदस्यों को नामजद कर सकता था तथा कम से कम ६ ।

शेष प्रान्तों के विधान परिषदों की रचना[१] इस प्रकार हुई थी :-

---

१. १९३५ के भारत सरकार अधिनियम से संगृहीत ।

प्रान्तों का नाम	कुलस्थान	सामान्य	मुस्लिम	यूरोपियन	भारतीयक्रिश्चियन	विधानसभा द्वारा	राज्यपाल द्वारा नामजद
१. मद्रास	न्यूनतम ५४ उच्चतम ५६	३५	७	१	३	-	न्यूनतम ८ उच्चतम १०
२. बम्बई	न्यूनतम २६ उच्चतम ३०	२०	५	१	-	-	न्यूनतम ३ उच्चतम ४
३. बंगाल	न्यूनतम ६३ उच्चतम ६५	१०	१७	३	-	२७	न्यूनतम ६ उच्चतम ८
४. यू०पी०	न्यूनतम ५८ उच्चतम ६०	३४	१७	१	-	-	न्यूनतम ६ उच्चतम ८
५. बिहार	न्यूनतम२६ उच्चतम ३०	६	४	१	-	१२	न्यूनतम ३ उच्चतम ४
६. आसाम	न्यूनतम २१ उच्चतम २२	१०	६	२	-	-	न्यूनतम ३ उच्चतम ४

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि सबसे अधिक सदस्य संख्या बंगाल विधान परिषद की थी और सबसे कम आसाम विधान परिषद् की । सदस्य संख्या के आधार पर संयुक्त प्रान्त विधान परिषद् का दूसरा स्थान था ।जनसंख्या के दृष्टिकोण से संयुक्त प्रान्त सबसे बड़ा प्रान्त होते हुए भी, उसके विधान परिषद की सदस्य संख्या बंगाल विधान परिषद् से भी कम थी । मद्रास विधान परिषद् का तीसरा तथा बम्बई और बिहार के विधान परिषदों का चौथा स्थान था । अन्तिम दोनों प्रान्तों के विधान परिषदों की सदस्य संख्या समान रखीगयी थी ।

विधान परिषद्के सदस्यों का निर्वाचन कई प्रकार के निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा होता था। इन विभिन्न प्रकार के निर्वाचन क्षेत्रों में सामान्य, मुस्लिम, यूरोपियन, भारतीय ईसाई तथा विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र थे। इनमें से प्रथम तीन निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था प्रत्येक विधान परिषद् के लिए की गई थी किन्तु शेष दो निर्वाचन क्षेत्र कुछ प्रान्तों के लिए रखा गया था।

उपर्युक्त निर्वाचन क्षेत्रों में स्थानों का वितरण भी अनुपातिक ढंग से नहीं किया गया था। सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से सबसे अधिक स्थान मद्रास विधान परिषद् के लिए निर्धारित किये गए थे तथा सबसे कम बिहार विधान परिषद् के लिए। मद्रास विधान परिषद् के सामान्य निर्वाचन क्षेत्र मे ३५ स्थान थे तथा बिहार विधान परिषद् के इस निर्वाचन क्षेत्र में केवल ६ स्थान थे। संयुक्तप्रान्त के विधान परिषद् का दूसरा स्थान था। इस प्रान्त के विधान परिषद् के सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में ३४ स्थान रखे गए थे। बम्बई विधान परिषद् के सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में २० तथा बंगाल और आसाम के विधान परिषदों के सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में दस-दस स्थान थे।

मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से बंगाल और संयुक्त प्रान्त के विधान परिषदों में १७-१७ स्थान, मद्रास में ७, आसाम में ६, बम्बई में ५ तथा बिहार में ४ स्थान रखे गये थे।

यूरोपियन निर्वाचन क्षेत्र से बंगाल में ३, आसाम में २ तथा शेष चार प्रान्तों में एक-एक स्थान निर्धारित था।

भारतीय ईसाइयों के लिए केवल मद्रास विधान परिषद् में तीन स्थान रखा गया था।

विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था केवल बंगाल और बिहार विधान परिषद् के लिए की गई थी। इस निर्वाचन क्षेत्र से बंगाल में २७ स्थानों पर तथा बिहार विधान परिषद् में १२ स्थानों पर निर्वाचि किया जाता था।

विधान परिषद् में नामजद सदस्यों के लिए भी स्थान निर्धारित था। नामजद सदस्यों की सबसे अधिक संख्या मद्रास विधान परिषद् में थी। इसके बाद संयुक्त प्रान्त और बंगाल के विधान परिषदों में मनोनयन के लिए स्थान निर्धारित था। शेष प्रान्तों में नामजद सदस्यों के लिए निम्नतम तीन तथा महत्तम चार स्थान रखे गये थे।

१६३५ अधिनियम के अन्तर्गत विधान परिषद् के निर्वाचन क्षेत्रों में असमानुपातिक ढंग से स्थानों का वितरण सरकारी बहुमत बनाये रखने के लिये किया गया था। इसी उद्देश्य से निर्वाचन क्षेत्रों की रचना भी सम्प्रदायिकता के आधार पर की गई थी। सम्प्रदायिकता के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण हिन्दू और मुसलमानों के बीच मतभेद कायम रखने के प्रयोजन से भी किया गया था।

अधिनियम के अन्तर्गत मतदाताओं के लिए भी योग्यताएं निर्धारित की गई थीं। मतदाता को उस राज्य का निवासी होना आवश्यक था जिस राज्य के विधान परिषद् के निर्वाचन में उसे मताधिकार प्राप्त था। मताधिकार सम्पत्ति तथा कर चुकाने की क्षमता के आधार पर प्रदान किया गया था।

विधान सभा का कार्यकाल ५ वर्ष रखा गया तथा विधान परिषद् का ६ वर्ष। विधान परिषद् स्थायी सदन था। अत: इसके एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन प्रत्येक तीसरे वर्ष किये जाने की व्यवस्था की गई थी।

१६३५ अधिनियम के अन्तर्गत गठित विधानमण्डल अधिक दिनों तक कार्य नहीं कर सका था। कारण ३ नवम्बर १६३६ को अधिनियम के अनुसार अनुभाग ६३ के अन्तर्गत प्रान्तीय विधान मण्डल को स्थगित कर दिया गया था। यह स्थगन १ अप्रैल १६४६ के पूर्व तक जारी रहा।

निष्कर्ष यह कि १६३५ के भारत सरकार अधिनियम द्वारा ६ प्रान्तों के विधानमण्डल को द्विसदनीय बनाया गया। द्विसदनीय व्यवस्था को अपनाने वाले विधान मण्डलों में यू०पी० का विधान मंडल भी था, किन्तु अधिनियम पारित होने के दो वर्ष बाद १६३७ में इस प्रदेश में द्वितीय सदन की स्थापना हुई थी। विधान परिषद् केवल तीन वर्ष तक ही कार्य कर सकी तथा ३ नवम्बर १६३६ से ३० मार्च १६४६ तक स्थगित रही।

भारतीय संविधान सभा तथा द्वितीय सदन :

संविधान सभा में द्वितीय सदन के प्रश्न पर विचार बी०एन० राव द्वारा प्रसारित प्रश्नावली के आधार पर हुआ था। जिन आधारों पर द्वितीय सदन के पक्ष में तर्क दिये गये थे, वे सामान्यतया चार प्रकार के थे - परम्परा के आधार पर, निम्नसदन द्वारा पारित आवेगी विधेयक पर द्वितीय सदन द्वारा अवरोध तथा सुधार लाने की आवश्यकता के आधार पर, जिन हितों का प्रतिनिधित्व निम्नसदन में असंभव था, उनका द्वितीय सदन में प्रतिनिधित्व दिये जाने के आधार पर तथा धनीवर्ग और अल्पसंख्यक हितों के बहुमत से सुरक्षा के आधार पर।

द्वितीय सदन के विपक्ष में दिये गए तर्कों के अनुसार इसे अप्रजातांत्रिक कहा गया तथा यह आलोचना की गई कि यह अनावश्यक रूप से प्रजातांत्रिक विकास की गति को धीमा करता है।

इस दृष्टि से द्वितीय सदन के प्रश्न पर विचार करने का भार संघीय संविधान समिति तथा प्रान्तीय संविधान समिति को सौंपा गया। जून १६४७ की बैठक में दोनों समितियों ने इस प्रश्न पर विचार किया। इस प्रश्न पर विचार के समय दोनों समितियों में वाद-विवाद का केन्द्र विन्दु 'प्रजातन्त्र में द्वितीय सदन का स्थान' था।

---

१. विधानमंडल से सम्बन्धित प्रश्नावली जिसे बी०एन० राव ने तैयार किया था, १७ मार्च १६४७ को प्रसारित किया गया।

कैन्द्रीय द्वितीय सदन का प्रश्न :-

संघीय संविधान समिति कैन्द्र मैं द्वितीय सदन की स्थापना के विचार से सहमत थी तथा उसका निर्वाचन प्रान्तीय विधान मण्डल के निम्न सदन द्वारा कराये जाने के लिए संस्तुति की थी, किन्तु द्वितीय सदन मैं राज्यों के समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त से असहमत थी । इस असहमति का कोई कारण नहीं दिया गया । आस्टिन के अनुसार यह अनुमान लगाया जा सकता है कि समिति के सदस्य नैहरू रिपोर्ट और गोलमेज अधिवेशन मैं प्रकट किये गए विचार से सहमत थे । उन लोगों को यह भी भय था कि यदि समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अपनाया गया तो प्रान्त देशी प्रशासकीय राज्यों के बहाव मैं आ सकता है ।[१]

१९४७ के जुलाई-अगस्त मैं संविधान सभा ने दोनों समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार किया । विचार का मुख्य विषय" द्वितीय सदन का महत्त्व तथा कार्य " था ।"संघीय विधान मण्डल मैं द्वितीय सदन का स्थान" के प्रश्न पर एक ही बार विचार विमर्श हुआ था । संविधान सभा मैं इस प्रश्न पर विचार विनिमय के समय श्री एन०गोपालस्वामी आयंगर ने कहा था" जहां कहीं भी किसी प्रकार के संघ हैं, वहां द्वितीय सदन की आवश्यकता महसूस की गई है...."[२] किन्तु आयंगर ने

---

१. आस्टिन, ग्रैनविल- दि इंडियन कंस्टिच्यूशन" आक्सफोर्ड(१९३६) ,चैप्टर ६, पृ०१५८ Rao in a note in his Memorandum on the Union Constitution of 30th May 1947, Rao's India's Constitution, P 75- of the U.C.C. members answering Rao's questionnaire, only Panikkar favoured equal representation for the units on the American model. All four members favoured an upper house in the federal Legislature and believed its member should be elected by the Lower Houses.

२. भारतीय संविधान सभा डिबेट, अध्याय ४, पृ० ८७६

राज्य सभा के अस्तित्व के औचित्य को किसी संघीय सिद्धान्त के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयास नहीं किया । आयंगर के अनुसार द्वितीय सदन का कार्य महत्वपूर्ण विषयों पर मर्यादित वाद-विवाद करना तथा उतावले आवेगी विधायन पर अवरोध लगाना है ।[१]

संविधान सभा ने केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न के सम्बन्ध में संघीय संविधान समिति की संस्तुति को स्वीकार किया था तथा यह निर्णय लिया था कि केन्द्र में द्विसदनीय व्यवस्था होनी चाहिए ।

केन्द्रीय द्वितीय सदन के संगठन का प्रश्न भी विवादास्पद था । सर्वप्रथम बी०एन० राव द्वारा प्रसारित स्मृति-पत्र में द्वितीय सदन का नाम सिनेट रखा गया था ।[२] सिनेट की सदस्य संख्या २८० निर्धारित की गई थी जिनमें १६८ स्थान प्रान्तों के लिए तथा ११२ स्थान प्रशासकीय राज्यों के लिए निश्चित किया गया था । स्मृति पत्र में सिनेट को स्थायी सदन बनाने के लिए तथा प्रत्येक तीसरे वर्ष इसके एक तिहाई सदस्य द्वारा स्थान रिक्त किये जाने एवं उन स्थानों पर निर्वाचन के लिए प्रस्ताव किया गया था ।[३]

सिनेट के संगठन सम्बन्धी उपर्युक्त प्रस्ताव में एन० गोपालस्वामी आयंगर और कृष्णास्वामी अय्यर ने निम्नलिखित संशोधन रखे[४] । उनके संशोधनों को भी स्मृतिपत्र में निहित कर लिया गया । इन सुझावों के अनुसार यह संस्तुति की गई थी कि (१) सिनेट की पूर्ण सदस्य संख्या प्रतिनिधि सदन की सदस्य संख्या

---

१. भारतीय संविधान सभा, डिबेट, वौल्यू० ४, चैप्टर ५, पृ० ६७६

२. राव, बी०शिव – दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कंस्टिच्यूशन, बम्बई १९६८, पृ०४२०

३. वही

४. वही, पृ० ४२१

का आधा हो ।[1] इकाइयों के बीच स्थानों का वितरण उनकी जनसंख्या के अनुपात में हो । (३) सिनेट स्थायी सदन हो तथा इसके एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन प्रत्येक वर्ष प्रान्तीय विधानमण्डल द्वारा हो ।

६ जून १९४७ की बैठक में संघीय संविधान समिति उपर्युक्त प्रस्तावों पर विचार करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँची ।[2]

१. प्रथम तथा द्वितीय सदन का नाम क्रमश: लोकसभा तथा राज्यसभा हो,
२. राज्य सभा की सदस्य संख्या २५० हो,
३. भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सदस्य तथा सभापति हो,
४. राज्यसभा स्थायी सदन हो तथा इसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष पद त्याग करें ।

राज्यसभा में इकाइयों का प्रतिनिधित्व किस प्रकार तथा किस अनुपात में हो, इस पर विचार करने का भार चार-सदस्यीय उप-समिति[3] को सौंपा गया । उपर्युक्त प्रस्तावों को अक्टूबर १९४७ के ड्राफ्ट संविधान में स्थान दिया गया । ड्राफ्ट संविधान के अन्तर्गत आयरलैंड की तरह विभिन्न व्यवसायिक हितों के प्रतिनिधित्व के लिए राज्य सभा के २५ सदस्यों का निर्वाचन व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के आधार पर किये जाने का प्रावधान था तथा शेष सदस्यों का प्रान्तीय विधान

---

१. वही, पृ० ४२१
२. वही, पृ० ४२२
३. उपसमिति के सदस्य अम्बेदकर, गोपालस्वामी आयंगर, के०एम० मुन्शी और के०एम० पान्निक्कर थे । उप समिति ने १० जून की बैठक में राज्यसभा में इकाइयों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिया था : --

"In this house the units should have representation on the basis of one member for every whole million of the population upto five million, plus one member for every two additional million, subject to a total maximum of twenty for a unit.

मण्डल के निम्नसदन द्वारा ।[१] आयरलैंड में व्यवसायिक प्रतिनिधित्व कीअसफलता[२] के आधार पर ड्राफ्ट संविधान से व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को हटा-कर राष्ट्रपति द्वारा १२ सदस्यों की नियुक्ति[३] किये जाने का प्रस्ताव रखा गया ।

अन्त में अम्बेदकर ने एक संशोधन प्रस्ताव रखा । इसमें उन्होंने प्रस्ताव किया कि राज्य सभा में स्थानों का वितरण संविधान की एक अलग अनुसूची में होना चाहिए । संविधान सभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की ।[४] साथ ही महावीर त्यागी और महबूब अली बेग द्वारा प्रस्तावित निर्वाचन की आनु-पातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को संविधान सभा ने स्वीकार कर लिया ।[५] श्रीमती दुर्गावती ने ड्राफ्ट संविधान में राज्यसभा के सदस्यों के लिए निर्धारित ३५ वर्ष के न्यूनतम उम्र को घटाकर ३० वर्ष किये जाने का संशोधन प्रस्ताव रखा जिसे भी संविधान सभा ने मंजूर कर लिया ।[६]

वर्तमान संविधान के अनुच्छेद ८० में राज्य सभा के संगठन की व्यवस्था है जिसके अनुसार राष्ट्रपति १२ ऐसे सदस्यों को नियुक्त करता है जिन्हें साहित्य विज्ञान, कला और समाजसेवा में विशिष्ट ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव प्राप्त है

---

१. राव, बी०शिवा, सैलैक्टडौक्यूमैन्ट्स, वौल्यूम ३(१), पृ० २१-३६

२. बी०एन० राव जो संवैधानिक सलाहकार थे, ब्रिटेन, अमेरिका तथा आयरलैंड के संविधान के अध्ययन के लिए गए थे । आयरलैण्ड के तत्कालीन राष्ट्रपति डि वलेरा से राव का साक्षात्कार होने पर वलेरा ने आयरलैण्ड में व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की व्यवहारिक कठिनाइयाँ तथा उसकी असफलता को व्यक्त किया था जिसके परिणामस्वरूप राव ने ड्राफ्ट संविधान से व्यवसायिक प्रतिनिधित्व को हटाने का प्रस्ताव रखा था ।

३. पहले १५ सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाने का प्रस्ताव रखा गया था , जिसे घटाकर १२ कर दिया गया ।

४. राव,बी०शिवा, दि फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कंस्टिट्यूशन, पृ० ४३३

५. भारतीय संविधान सभा डिबेट वौल्यूम ७, पृ० १२१६- १२२३

६. राव,बी०शिवा, दि फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कंस्टिच्यूशन, पृ० ४३६

तथा २३८ सदस्यों का निर्वाचन राज्यों और संघीय क्षेत्रों के निम्न सदन के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के एकल संक्रमणा पद्धति से होता है। राज्यसभा में इकाइयों तथा संघीय क्षेत्रों के बीच स्थानों का वितरण अलग से संविधान की चौथी अनुसूची में किया गया है।

प्रान्तीय द्वितीय सदन का प्रश्न :-

प्रान्तीय संविधान समिति में प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना का प्रश्न विवादास्पद बना रहा। श्री बी०एन० राव के प्रश्नावली सूची के[१] ६ उत्तरों में ५ उत्तरों ने एक सदनीय विधान मण्डल का समर्थन किया था। केवल कैलाशनाथ काटजू द्वि सदनीय विधान मण्डल के पक्ष में थे। १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत बम्बई में द्विसदनीय व्यवस्था थी, किन्तु बी०जी०खेर[२] संविधान सभा में द्विसदनीय व्यवस्था के विपक्ष में थे।

यद्यपि प्रान्तीय संविधान समिति सामान्यरूप से प्रान्तों में एक सदनीय विधानमण्डल की स्थापना के लिए निश्चय किया था, किन्तु जिन प्रान्तों में विशेष परिस्थितियां हैं, वहां वह द्वितीय सदन की स्थापना किये जाने से सहमत थी।[३] वस्तुत: प्रान्तीय संविधान समिति के प्रतिवेदन के अनुसार प्रान्तीय संविधान समिति ने प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के पक्ष अथवा विपक्ष में निर्णय करने का भार प्रान्तीय प्रतिनिधि मण्डल पर रख दिया था। इसके अतिरिक्त द्वितीय सदन के पक्ष में विचार रखने वाले सदस्य को उसके संगठन के सम्बन्ध में भी सुझाव और प्रस्ताव देने के लिए निर्देशन दिया गया।

---

१. प्रश्नावली सूची प्रान्तीय संविधान से संबंधित थी।

२. बी०जी० खेर उस समय बम्बई के प्रधानमंत्री थे।

३. राव, बी०शिवा, सैलैक्ट डौक्यूमैंट्स २, १२, पृ० ६४७

संविधान सभा में संघीय तथा प्रान्तीय संविधान समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार विमर्श के समय केन्द्रीय द्वितीय सदन की अपेक्षा प्रान्तीय द्वितीय सदन की तीव्र आलोचना हुई थी । एच०वी० कामथ केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना किये जाने से सहमत थे, किन्तु प्रान्तीय द्वितीय सदन के विपक्ष में थे । ...के०सनधनम के मतानुसार उतावले विधायन से बचने के लिए द्वितीय सदन आवश्यक नहीं है। उनका कहना था कि विधेयक पर वांछित विलम्ब की आवश्यकता की पूर्ति वर्तमान विधायिनी प्रक्रिया से स्वत: हो जाती है।[1] के०टी० शाह ने भी द्वितीय सदन द्वारा व्यय तथा विधेयक को अनावश्यक रूप से विलम्ब किये जाने के तर्क के आधार पर इस सदन का विरोध किया था, किन्तु द्वितीय सदन के प्रश्न पर अधिक मतभेद होने के कारण के०टी०शाह ने संसद को इसकी स्थापना तथा उन्मूलन का अधिकार देने के लिए संशोधन प्रस्ताव रखा था ।[2] आसाम के कुलधर चालिहा ने द्वितीय सदन से प्रगतिशील विधायन पर रुकावट आने की संभावना व्यक्त की थी ।[3] इसके विपरीत लक्ष्मीनारायण साहू उड़ीसा में द्वितीय सदन की स्थापना चाहते थे तथा एल० कृष्णा स्वामी भारतीय सभी प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के पक्ष में थे ।[4]

प्रमुख प्रतिनिधियों के विरोध के बावजूद अधिकांश प्रान्तों के प्रतिनिधि मंडल ने द्वितीय सदन के पक्ष में मत दिया था । जुलाई १६४७ में बी०जी० खेर के विरोध के बावजूद बम्बई में द्विसदनीय व्यवस्था का उदाहरण स्थापित किया था[5]।

---

१. संविधान सभा डिबेट, वो०७, पृ० १३०५
२. संविधान सभा डिबेट, वो० ७, पृ० १३०५
३. राव, बी०शिवा, दि फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कंस्टिट्यूशन, पृ० ४५२
४. संविधान सभा डिबेट, वोल्यू० ७, पृ० १३०५
५. बम्बई में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर मतदान २० जुलाई १६४७ को हुआ था —प्रसाद पेपर्स फाइल ७-आर।४८

नवम्बर १९४८ में अन्य प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने अपने प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर संविधान सभा में मतदान किया ।[१] मद्रास प्रतिनिधिमण्डल के एम०ए० आयंगर , टी०टी० कृष्णामाचारी और के० सनथनम द्वितीय सदन के विपक्ष में मत दिये किन्तु बहुमत प्रतिनिधियों ने इसके पक्ष में मत दिया । बिहार प्रतिनिधि-मंडल के १६ सदस्य द्वितीय सदन के पक्ष में तथा ७ विपक्ष में, पंजाब प्रतिनिधि-मंडल के १० सदस्य पक्ष में तथा एक विपक्ष में, उड़ीसा प्रतिनिधि मंडल के ६ सदस्य पक्ष में तथा एक विपक्ष में तथा यू०पी० प्रतिनिधि मंडल के बहुमत सदस्य द्वितीय सदन के पक्ष में थे ।[२]

पश्चिमी बंगाल प्रतिनिधि-मंडल के सदस्य २४ नवम्बर १९४८ की प्रथम बैठक में द्वितीय सदन के पक्ष तथा विपक्ष के प्रश्न पर बराबर-बराबर विभाजित थे । इस स्थिति ने एक संकट पैदा कर दिया था । दूसरे दिन १२ सदस्यों ने द्वितीय सदन के पक्ष में मत दिये तथा तीन सदस्यों ने विपक्ष में । आसाम के तीन प्रतिनिधियों ने तथा मध्यप्रदेश के ९ प्रतिनिधियों ने एकमत होकर द्वितीय सदन के विपक्ष में मत दिया था ।[३]

मई १९४९ में प्रान्तों में द्वितीय सदन के प्रश्न को पुन: उठाया गया । मद्रास , बम्बई और यू०पी० जिनके प्रतिनिधि-मंडल ने ६ महीने पहले द्वितीय सदन के पक्ष में मत दिया था, उसी के प्रतिनिधियों ने संविधान सभा में द्वितीय सदन के प्रश्न को पुनर्जीवित करने की मांग की ।[४] इसके परिणामस्वरूप डा० अम्बेदकर ने जुलाई अगस्त में विधान परिषद की शक्ति में कटौती का संशोधन प्रस्ताव रखा

---

१. औस्टिन, ग्रैन विल- दि इंडियन कंस्टिट्यूशन, पृ० १६०

२. वही

३. वही

४. वही, पृ० १६१

जो संविधान सभा द्वारा मंजूर कर लिया गया ।[१] संशोधन प्रस्ताव द्वारा विधान सभा को इसकी पूर्ण सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतविभाजन के समय दो तिहाई सदस्यों के समर्थन से विधान परिषद् के उन्मूलन हेतु प्रस्ताव पारित करने का अधिकार दिया गया । द्वितीयतः, संशोधन प्रस्ताव द्वारा विधान परिषद् का कार्यक्षेत्राधिकार भी सीमित कर दिया गया । ड्राफ्ट संविधान सभ के अन्तर्गत वित्त विधेयक के सम्बन्ध में उच्च सदन को ३० दिन तक विलम्ब करने का अधिकार था जिसे संशोधन द्वारा घटाकर १४ दिन कर दिया गया । विवादास्पद विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की व्यवस्था को समाप्त कर दी गई । जुलाई १६४६ में ड्राफ्टिंग कमिटी की बैठक में पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने विवादास्पद विषयों पर ड्राफ्ट संविधान में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की व्यवस्था का विरोध किया था तथा निम्नसदन के निर्णय को ही अन्तिम माने जाने के लिए विचार प्रकट किया था ।[२] पंत के इस सुझाव के परिणामस्वरूप डा० अम्बेदकर ने १ अगस्त १६४६ को ड्राफ्ट संविधान से विवादास्पद विधेयकों पर संयुक्त बैठक की व्यवस्था को हटाने का प्रस्ताव रखा, जिसे संविधान सभा ने मान लिया ।[३]

वस्तुतः संविधान निर्माताओं का उद्देश्य विधान परिषद को परिशोधक सदन बनाना था।वे विधान परिषद् को विधान सभा का प्रतिद्वन्द्वी सदन नहीं बनाना चाहते थे । अतः उसके कार्य क्षेत्राधिकार को सीमित करना स्वाभाविक था । राजनीतिक एकता के मार्ग से बाधाओं को हटाने के उद्देश्य से भी,[४] परि-

---

१. संविधान सभा डिबेट ६,१, पृ० १३

२. माइन्यूट्स ऑफ दि मिटिंग ऑफ ड्राफ्टिंग कमिटी विद प्रेमियर्स- जुलाई २२, १६४६ —सैलेक्ट डोक्यूमेंट्स, बाई बी० शिवा राव, ४,१५(३),पृ० ६६४

३. भारतीय संविधान सभा डिबेट, वौल्यू० ६, पृ० ४३

४. औस्टिन, ग्रैनविल- दि इंडियन कंस्टिच्यूशन, पृ० १६३

षद् के कार्यक्षेत्राधिकार तथा उसकी शक्ति को सीमित किया गया था ।

विधान परिषद् के संगठन के सम्बन्ध में विचार करने का भार ५ सदस्यीय उपसमिति [१] को सौंपा गया । उपसमिति ने विधान परिषद की महत्तम सदस्य संख्या विधान सभा की सदस्य संख्या का एक चौथाई तथा आयरलैण्ड के संविधान की तरह व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का सुझाव दिया था । उपसमिति की संस्तुति के अनुसार विधान परिषद् के आधे सदस्य आयरलैण्ड की तरह व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्वाचित हों, एक तिहाई सदस्य राज्य के विधान सभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर निर्वाचित हों, तथा पूर्ण सदस्य संख्या का छठांश मंत्रियों के परामर्श पर राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये जांय ।[२]

अम्बेदकर ने ड्राफ्ट संविधान में विधान परिषद् के लिए की गई व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को हटाने का संशोधन प्रस्तावित किया जो संविधान सभा द्वारा स्वीकृत कर लिया गया । १६ अगस्त १६४६ को अम्बेदकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के अनुसार विधानपरिषद् की महत्तम सदस्य संख्या विधान सभा [illegible] की सदस्य संख्या का चतुर्थांश तथा निम्नतम ४० निश्चित की गई । संशोधन प्रस्ताव में[3] विधान परिषद् के एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं द्वारा निर्मित निर्वाचक-मंडल द्वारा, बारहवां भाग कम से कम तीन साल पुराने स्नातकों द्वारा, बारहवां भाग सैकेन्डरी स्कूल के अध्यापकों द्वारा, एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन विधान सभा के सदस्यों द्वारा एवम् शेष सदस्यों का साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन तथा समाज

---

१. उपसमिति के सदस्य, बी०जी० खेर, पट्टाभि सितारमय्या, पी० सुब्बरायन और कैलाशनाथ काटजू थे ।

२. राव, बी०, शिवा - दि फ्रेमिंग औफ दि इंडियाज कंस्टिच्यूशन प्रथम संस्करण, पृ० ४४७

३. वही, पृ० ४५३

सेवा में विशिष्ट ज्ञान या व्यवहारिक अनुभव के आधार पर राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये जाने का प्रावधान था। संसद के अधिनियम द्वारा इसकी संगठन की प्रणाली को बदलने का अधिकार संसद को दिया गया।[१]

भारतीय संविधान के अन्तर्गत आन्ध्रप्रदेश, बिहार, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में द्वितीय सदन की स्थापना की गई। १९५६ के राज्य पुनर्संगठन अधिनियम द्वारा मध्यप्रदेश के लिए भी द्वितीय सदन की व्यवस्था की गई, किन्तु अभी तक वहां द्वितीय सदन की स्थापना नहीं हुई है। १९६० ई० के बम्बई पुनर्गठन अधिनियम ने गुजरात के लिए द्वितीय सदन की व्यवस्था नहीं की है। इसी प्रकार पंजाब पुनर्गठन अधिनियम द्वारा हरियाना के लिए भी द्वितीय सदन की व्यवस्था नहीं हुई है।

निष्कर्ष :- स्पष्ट है कि प्रान्तीय और केन्द्रीय स्तर पर जनता का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व (विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व) स्थापित करने के लिए १९१९ से १९४८ तक जितने प्रयास रहे हैं, उनमें अधिकांश प्रयासों ने द्वितीय सदन को आवश्यक माना है। द्वितीय सदन की इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए १९१९ अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र में राज्य सभा की स्थापना की गई थी।

१९१९ अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र में स्थापित राज्यसभा १९३५ अधिनियम के अन्तर्गत भी बनी रही। १९१९ और १९३५ के बीच विभिन्न आयोग, अधिवेशनों तथा प्रतिवेदनों ने भी केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर सहमति प्रदान की थी, किन्तु द्वितीय सदन के नामकरण एवं संगठन के सम्बन्ध में उन आयोग, अधिवेशनों तथा प्रतिवेदनों के विचार में भिन्नता पाई जाती है। भारतीय संविधान सभा में केन्द्र में द्वितीय सदन के प्रश्न पर काफी वाद-विवाद हुआ था। अन्तत: संविधान सभा ने भी केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर सहमति प्रदान की थी। संविधान सभा के निर्णय के आधार पर ही केन्द्रीय संसद में राज्यसभा को

---

१. राव, बी० शिवा- दि फ्रेमिंग ऑफ दि इंडियाज कंस्टिच्यूशन, प्रथम संस्करण, पृ० ४५४

स्थान दिया गया ।

केन्द्रीय द्वितीय सदन की अपेक्षा प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना का प्रश्न प्रारम्भ से ही अधिक विवादास्पद था । मान्टेगू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट ने प्रान्तों में द्वितीय सदन की उपयोगिता के प्रश्न पर विचार करने का भार सामयिक आयोग को सौंपा था । भारतीय सांविधिक आयोग के समक्ष ५ प्रान्तों ने द्वितीय सदन का विरोध किया था तथा शेष प्रान्तों ने द्वितीय सदन का समर्थन किया था । यू०पी० की सरकार तथा यू०पी० की समिति ने द्वितीय सदन की स्थापना का समर्थन किया था । नेहरू रिपोर्ट और स्वराज्य संविधान के अन्तर्गत प्रान्तों में द्वितीय सदन की स्थापना के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी । गोलमेज अधिवेशन में भी प्रान्तीय द्वितीय सदन के प्रश्न को विचारार्थ लिया गया था, किन्तु विषय अत्यधिक विवादास्पद हो जाने के कारण अधिवेशन द्वारा द्वितीय सदन की स्थापना के प्रश्न पर निश्चित निर्णय नहीं लिया जा सका । तृतीय गोलमेज अधिवेशन के समय यू०पी० में द्वितीय सदन की स्थापना के लिए जमींदारों द्वारा मांग की जा रही थी ।

प्रान्तीय द्वितीय सदन का प्रश्न अत्यधिक विवादास्पद होने के कारण ही १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के पूर्व तक भारत के किसी भी प्रान्त में द्वितीय सदन की स्थापना नहीं की जा सकी थी । १९३५ अधिनियम के अन्तर्गत केवल उन्हीं राज्यों में द्वितीय सदन की स्थापना की गई जिन राज्यों ने द्वितीय सदन की स्थापना के लिए इच्छा प्रकट की थी । यू०पी० में १९३७ में द्वितीय सदन की स्थापना हुई थी , यद्यपि इसकी स्थापना किये जाने की व्यवस्था १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत ही की जा चुकी थी ।

संविधान सभा में भी पर्याप्त बहस के पश्चात् आन्ध्रप्रदेश, बिहार, मद्रास, महाराष्ट्र मैसूर, पंजाब, उ०प्र० और पश्चिमी बंगाल में उन राज्यों की प्रान्तीय प्रतिनिधि मंडल के निर्णयानुसार द्वितीय सदन की स्थापना के लिए व्यवस्था की गई ।

अध्याय - ३

उत्तरप्रदेश विधान परिषद् का संगठन :-

भारतीय संघ की इकाइयों में विधान परिषद् के संगठन का आधार संविधान का अनुच्छेद १७१ है। विधान परिषद् की महत्तम सदस्य संख्या मूलत: संविधान द्वारा उस राज्य के विधान सभा की सम्पूर्ण सदस्य संख्या की एक चौथाई थी और न्यूनतम चालीस। संविधान के सप्तम संशोधन द्वारा महत्तम सदस्य संख्या को बढ़ाकर विधान सभा की सदस्य संख्या का एक तिहाई कर दिया गया है किन्तु न्यूनतम सदस्य संख्या पहले की तरह चालीस ही है।

जनसंख्या के दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश भारतीय संघ की सबसे बड़ी इकाई होने के कारण, उत्तर प्रदेश विधान मण्डल के दोनों सदनों की सदस्य संख्या भी अन्य राज्यों के विधान मण्डल की सदस्य संख्या से अधिक है।

भारतीय गणतंत्र के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में प्रथमबार विधान परिषद् का संगठन ५ मई १९५५ में हुआ। उस समय इसकी सदस्य संख्या ७२ थी और राज्य पुनर्गठन अधिनियम १९५६[१] द्वारा यह संख्या बढ़ाकर १०८ निश्चित की गई। इस

---

१. राज्य पुनर्गठन अधिनियम १९५६ द्वारा अन्य राज्यों के विधान परिषदों के लिए सदस्य संख्या इस प्रकार निश्चित की गयी थी :-

बिहार विधान परिषद् ९६	मद्रास विधान परिषद् ६३
आन्ध्रप्रदेश विधान परि० ९०	मैसूर विधान परिषद् ६३
पश्चिमी बंगाल विधान परि० ७५	पंजाब विधान परिषद् ४०
महाराष्ट्र विधान परिषद् ७२	मध्यप्रदेश विधान परिषद् ९०

(जब कभी विधान परिषद् की स्थापना मध्यप्रदेश में की जायेगी तो उसकी सदस्य संख्या ९० होगी)

बढ़ाई गई सदस्य संख्या का मूर्तरूप १९५८ में उत्तर प्रदेश विधान मण्डल के कानून द्वारा दिया गया । १९५८ में विधान परिषद् का द्विवर्षीय चुनाव के साथ विधान परिषद् की बढ़ाई गई जगहों पर भी निर्वाचन हुआ और ५ मई १९५८ से इस प्रदेश के विधान परिषद् की सदस्य संख्या १०८ हो गई ।

विधान परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि किये जाने के कारण :-

परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि किये जाने के अनेक कारण थे । प्रथमत:, संविधान के सप्तम संशोधन के अनुसार परिषद् की महत्तम सदस्य संख्या एक चौथाई से बढ़ाकर एक तिहाई कर दी गई थी । परन्तु ७२- सदस्यीय विधान-परिषद् राज्य की विधान सभा की सदस्य संख्या के एक चौथाई से भी कम थी । सप्तम संशोधन के उपरान्त सरकार इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि कर सकती थी । फलत: सप्तम संशोधन से प्रेरित होकर[१] प्रदेश की सरकार ने परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि की ।

द्वितीयत:, राज्य पुनर्गठन अधिनियम द्वारा इस प्रदेश के विधान परिषद् की सदस्य संख्या १०८ निर्धारित की गई थी । इसका अर्थ यह था कि जब कभी परिषद् की सदस्य संख्या बढ़ाई जाती तो उसे १०८ सदस्यीय सदन ही बनाया जाता । इस दृष्टिकोण से राज्य पुनर्गठन अधिनियम द्वारा निर्धारित यह सदस्य संख्या परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि के प्रस्ताव के लिए पूर्व निर्धारित योजना थी ।

तृतीयत: उत्तर प्रदेश इतने बड़े राज्य में ७२ - सदस्यीय परिषद् की छोटी संख्या बड़े-बड़े निर्वाचन क्षेत्रों का पूर्ण एवं संतोषप्रद प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती थी ।[२] कुछ निर्वाचन क्षेत्र तो इतने बड़े थे जो कई जिलों को मिलाकर

---

१. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की कार्यवाही, खं० ५१, पृ० ४९३
२. वही, पृ० ४९५

निर्मित होते थे । अध्यापक एवं स्नातक निर्वाचन क्षेत्रों में तो कुछ निर्वाचन क्षेत्र पच्चीस या इससे भी अधिक जिलों को मिलाकर निर्मित होते थे और कोई भी स्थानीय स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र ऐसा नहीं था जो नौ जिलों से कम से निर्मित हुआ हो । अत: मतदाताओं की संख्या में वृद्धि के कारण बड़े निर्वाचन क्षेत्रों के पूर्ण एवं उचित प्रतिनिधित्व के लिए परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि आवश्यक थी ।

चतुर्थत:, निर्वाचन के दृष्टिकोण से बड़े-बड़े निर्वाचन क्षेत्र असुविधाजनक थे । परिषद् की सदस्यता के उम्मीदवार के लिए पूरे निर्वाचन क्षेत्र का भ्रमण करना मुश्किल कार्य था ।[१] इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में अन्य राज्यों की तुलना में लगभग दुगुनी जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि चुना जाता था जो अपर्याप्त था ।[२] अत: इस प्रदेश की विधान परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि करने की आवश्यकता थी ।

विधान परिषद् के संगठन की प्रणाली : सदस्यता के प्रकार एवं लक्षण :-

विधान परिषद् में राज्य सभा की तरह दो प्रकार के सदस्य हैं -- नामजद एवं निर्वाचित । मनोनयन राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर उन व्यक्तियों का होता है जिनका विशेष ज्ञान अथवा विशेष अनुभव साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन और समाज सेवा में से किसी एक विषय में

---

१. " जब इलेक्शन होता है तब उन उम्मीदवारों के सामने बड़ी कठिनाई पैदा होती है जो इन निर्वाचन क्षेत्रों से खड़े होते हैं, २५ जिले हों, १२ जिले हों, ६ जिले हों, गालिबन ६ जिले होते हैं लोकल बॉडीज में" , उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, सं० ५१, पृ० ४६४

२. पश्चिमी बंगाल में यह अनुपात ५।२, बिहार में ५।३, बम्बई में ६।७, आसाम में ६।२ और उ०प्र० में ११।४ था । --उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०सं०५१,पृ० ४

हो[१]। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य मनोनयन के द्वारा उन विशिष्ट हितों के प्रतिनिधित्व से था जिनका प्रतिनिधित्व समुचित रूप से निर्वाचन के द्वारा विधान मण्डल में नहीं हो सका हो।[२]

१९५२ से १९५६ तक परिषद् के बारह मनोनीत सदस्यों में ६ साहित्य से, तथा संगीत, चिकित्सा, खेल, समाजसेवा, इंजीनियरिंग आदि से एक-एक प्रतिनिधि मनोनीत हुए थे। १९६० और १९६२ में साहित्य से मनोनीत सदस्यों की संख्या में कमी हुई थी तथापि अन्य विषयों की तुलना में साहित्य के आधार पर मनोनीत सदस्यों की अधिकता थी।

साहित्य से मनोनीत सदस्यों का अनुपात अधिक होने के कारण अन्य विषयों का मनोनयन के द्वारा समुचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया है। यद्यपि संविधान में इसका उल्लेख नहीं किया गया है कि उपर्युक्त सभी विषयों से समानुपात में सदस्यों का मनोनयन हो, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से विभिन्न हितों के बीच संतुलन बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उपर्युक्त सभी विषयों से बराबर-बराबर अनुपात में सदस्य मनोनीत किये जांय।

मनोनीत सदस्य अपने विशेष ज्ञान तथा अनुभव से यदि परिषद्, सरकार तथा प्रदेश को लाभान्वित करने की अपेक्षा केवल सरकार का समर्थन करते हैं, तो उनकी नामजदगी से मनोनयन के सिद्धान्त तथा उसके लक्ष्य पर आघात पहुंचता है। १९५२ से १९६२ के बीच अधिकांश मनोनीत सदस्य कांग्रेस दल के थे। १९५२

---

१. अनुच्छेद १७१ का खंड (३) का उपखंड(५) तथा उसी अनुच्छेद का खंड(५)

२. राव, बी० शिवा- दि फ्रेमिंग आफ इंडियाज कंस्टिट्यूशन, प्रथम संस्करण, (न्यू देलही), पृ० ३३२

और १९५४ में ८, १९५६ में ७[१] तथा अन्य द्विवर्षीय चुनाव के बाद भी कांग्रेस दल से मनोनीत सदस्यों की संख्या ७ से कम नहीं थी । मनोनीत सदस्यों का पूर्ण समर्थन सरकार को प्राप्त था । सरकारी विधेयकों पर विचार विमर्श के समय वे सदस्य विधेयक के सिद्धान्तों एवं सरकार की नीतियों का समर्थन करते थे ।

वस्तुत: मनोनयन उन व्यक्तियों का होना चाहिए जो अपनी योग्यता के लिए प्रसिद्ध हैं, किन्तु चुनाव नहीं लड़ना चाहते हैं । यदि विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्ति भी ~~के लिए प्रसिद्ध हैं,~~ किन्तु चुनाव के द्वारा सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं, तो वैसे व्यक्तियों का मनोनयन नहीं किया जाना चाहिए । परन्तु परिषद् में कुछ वैसे व्यक्तियों की भी नामजदगी हुई है जो पहले परिषद् के निर्वाचित सदस्य थे ।[२]

वास्तव में सरकार ने मनोनयन व्यवस्था का प्रयोग अपनी दलीय स्थिति को पुष्ट करने तथा मनोनीत सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने के लिए किया है ।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना वांछनीय है कि मई १९५८ के पहले और इसके बाद भी जब कि परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि की गई थी, मनोनीत सदस्यों की संख्या बारह थी, जो ७२-सदस्यीय विधान परिषद् का छठा भाग और १०८-सदस्यीय विधान परिषद् का नवां भाग था । वृद्धि सिर्फ निर्वाचित सदस्यों की संख्या में की गई थी, मनोनीत सदस्यों की संख्या में नहीं । १९५४ में नामजद किये गए चार सदस्यों में तीन पुराने मनोनीत सदस्य

---

१. १९५६ में एक मनोनीत सदस्य का स्थान रिक्त था ।

२. श्री राजाराम शास्त्री, १९५२ में परिषद् के निर्वाचित सदस्य थे, किन्तु १९६२ में उनका मनोनयन किया गया ।

थे तथा एक नवीन सदस्य मनोनीत हुआ था । १९५६ में भी केवल एक नवीन सदस्य मनोनीत हुआ था, शेष तीन पुराने सदस्य मनोनीत हुए थे । १९५८ में भी सिर्फ एक नवीन मनोनीत सदस्य था और तीन पुनर्मनोनीत हुए थे तथा १९६० में नामजद सदस्यों में दो नवीन और दो पुनर्मनोनीत सदस्य थे । १९६२ में नामजद सदस्यों में सभी नवीन थे ।

निर्वाचित सदस्य

संविधान में परिषद् की संपूर्ण सदस्य संख्या का लगभग एक तिहाई सदस्य स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र से, लगभग एक तिहाई विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से, लगभग बारहवाँ भाग स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से तथा लगभग बारहवाँ भाग अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित किये जाने की व्यवस्था है ।[१]

बहत्तर-सदस्यीय विधान परिषद् में स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र , प्रत्येक से २४ सदस्य तथा स्नातक निर्वाचन क्षेत्र और अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र से ६-६ सदस्य निर्वाचित हुए थे ।

१०८- सदस्यीय विधान परिषद् में स्थानीय और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र, प्रत्येक से, ३९ सदस्य निर्वाचित हुए थे । प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों की यह संख्या एक तिहाई से भी अधिक थी । स्नातक और शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से ९-९ सदस्य निर्वाचित हुए थे जो प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से पूर्ण सदस्य संख्या का बारहवाँ भाग था ।

प्रश्न है कि विधान सभा और स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्रों के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में एक तिहाई से भी अधिक स्थान तथा स्नातक एवं अध्यापक निर्वाचन क्षेत्रों के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में केवल बारहवाँ भाग

---

१. अनुच्छेद १७१ का खंड (३) उपखण्ड (ए) ,बी,सी, और (डी)

स्थान ही क्यों निर्धारित किये गए ? विधान सभा में कांग्रेस का बहुमत था तथा स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर सत्तारूढ़ कांग्रेस का प्रत्यक्ष प्रभाव था । अत: इन दोनों निर्वाचन क्षेत्रों से कांग्रेस दल को अधिक स्थान प्राप्त होने की आशा थी । इसके विपरीत स्नातक तथा अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र से दो-एक अपवादों को छोड़ कर प्राय: सभी निर्दलीय सदस्य ही निर्वाचित होते थे ।

संवैधानिक दृष्टिकोण से स्थानों का उपर्युक्त ढंग से असमानुपातिक वितरण युक्ति संगत नहीं है । संविधान में प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए "लगभग" शब्द का प्रयोग हुआ है । अत: यदि स्थानीय स्वायत्त संस्था और विधान सभा प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक तिहाई से अधिक सदस्य निर्वाचित होते हैं, तो स्नातक और शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से भी बारहवां भाग से अधिक सदस्य निर्वाचित होना चाहिए ।

<u>निर्वाचन क्षेत्र</u>[१] :-

उपर्युक्त चारों निर्वाचन क्षेत्रों को निर्वाचन की सुविधा के लिए कई उपनिर्वाचन क्षेत्रों में बांटा गया है । स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र[२] को १०८ सदस्यीय विधान परिषद् में २६ उपनिर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित

---

१. निर्वाचन क्षेत्र के आकार तथा संख्या में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं । उपर्युक्त निर्वाचन क्षेत्रों का विभाजन १०८-सदस्यीय विधान परिषद के निर्वाचन क्षेत्रों का है । निर्वाचन क्षेत्रों की उपर्युक्त संख्या तथा आकार को आवश्यकतानुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है । द्विसदस्यीय तथा तीन सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र को एक सदस्यीय में अथवा एक सदस्यीय और द्विसदस्यीय को क्रमश: द्विसदस्यीय या त्रिसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में परिवर्तित किया जा सकता है । ७२ सदस्यीय विधान परिषद् के निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या उपर्युक्त संख्या से कम थी ।

२. स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र उ०प्र० के नगरपालिकाओं, जिला परिषदों (अन्तरिम जिला परिषद् भी सम्मिलित हैं), कैन्टोनमेंट्स बोर्ड, टाउन एरिया कमिटी, नोटिफाइड एरिया कमिटी तथा क्षेत्रसमिति से निर्मित होतेहैं

किया गया था । इनमें से २० निर्वाचन क्षेत्रों से एक-एक प्रतिनिधि, ८ निर्वाचन क्षेत्र से दो-दो प्रतिनिधि तथा केवल एक निर्वाचन क्षेत्र से तीन प्रतिनिधि निर्वाचित होते थे । इसी प्रकार स्नातक निर्वाचन क्षेत्र के ७ उपनिर्वाचन क्षेत्रों में ५ उपनिर्वाचन क्षेत्र से एक-एक और दो निर्वाचन क्षेत्रों से दो-दो सदस्य निर्वाचित होते थे । अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र के ६ उपनिर्वाचन क्षेत्रों के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक-एक सदस्य निर्वाचित होते थे ।

परिषद के उप निर्वाचन क्षेत्रों की तीन श्रेणियां हैं - एक सदस्यीय, द्विसदस्यीय तथा तीन सदस्यीय । स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र में इन तीनों श्रेणियों का प्रयोग हुआ है, स्नातक निर्वाचन क्षेत्र में प्रथम दो श्रेणियों का तथा अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र में मात्र एक सदस्यीय उपनिर्वाचन क्षेत्र का प्रयोग हुआ है । तीन सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र के केवल एक उदाहरण हैं ।

सदस्यों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के एकल संक्रमणीय पद्धति से होता है । इस निर्वाचन प्रणाली के परिणामस्वरूप विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से भिन्न-भिन्न दल को विधान सभा में उसकी सदस्य संख्या के अनुपात में स्थान मिलता है । फलतः विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से सर्वाधिक स्थान परिषद् में सभा के बहुमत दल को प्राप्त होता है । उ०प्र० विधान परिषद् के सभा निर्वाचन क्षेत्र से यह लाभ कांग्रेस दल को मिला था । विधान-परिषद् के १९५२ के निर्वाचन में विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के २४ स्थानों में कांग्रेस दल को २२ स्थान प्राप्त हुआ था, १९५४ के द्विवर्षीय चुनाव में विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के ८ स्थानों में ८ और इसी प्रकार १९५६ के द्विवर्षीय चुनाव में इस निर्वाचन क्षेत्र के ८ स्थानों में सभी स्थान कांग्रेस दल को ही प्राप्त हुआ । १९५८ और १९६२ के प्रत्येक द्विवर्षीय चुनाव में विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से ६ स्थान कांग्रेस को मिले । इसी प्रकार आकस्मिक रिक्त स्थान भी कांग्रेस दल को ही मिले हैं, किन्तु स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र, स्नातक निर्वाचन क्षेत्र तथा अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र के आकस्मिक रिक्त स्थान कांग्रेस दल को नहीं मिले थे ।

कार्य काल :-

विधान परिषद् एक स्थायी सदन है। इसके एक तिहाई सदस्य का निर्वाचन प्रत्येक दूसरे वर्ष होता है। यद्यपि परिषद् के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल ६ वर्ष है, परन्तु १९५२ में सदस्यों के कार्यकाल को तीन भागों में बांटा गया था। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित एवं मनोनीत सदस्यों में एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन दो वर्ष के लिए, एक तिहाई का चार वर्ष के लिए और एक तिहाई का ६ वर्षों के लिए हुआ था। स्थानीय स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से दो वर्ष के कार्यकाल के लिए निर्वाचित सदस्यों की संख्या प्रत्येक से आठ थी। स्थानीय निर्वाचन क्षेत्र और अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र प्रत्येक से दो सदस्यों का तथा चार नामजद सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष था। इसी अनुपात में एक तिहाई सदस्य चार वर्ष के लिए और शेष एक तिहाई ६ वर्ष के लिए निर्वाचित तथा मनोनीत हुए थे। १९५८ में विधान परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि किये जाने पर भी स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र में बढ़ायी गयी जगहों में प्रत्येक से पांच सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष और स्नातक निर्वाचन क्षेत्र तथा अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र (बढ़ायी गयी जगहों पर) प्रत्येक से एक सदस्य का कार्यकाल दो वर्ष था। इसी अनुपात में उपर्युक्त सभी निर्वाचन क्षेत्रों में बढ़ायी गयी जगहों पर एक तिहायी सदस्य ~~का कार्य काल~~ चार वर्ष के लिए और एक तिहाई सदस्य छः वर्ष के लिए निर्वाचित हुए थे।

परिषद् की सदस्यता के लिए योग्यताएं :-

संविधान के अनुच्छेद १७३ खंड (सी) के अनुसार परिषद् की सदस्यता के उम्मीदवार के लिए भारत का नागरिक होना आवश्यक है। इसी अनुच्छेद के खंड (बी) के अनुसार सदस्यता के लिए निम्नतम उम्र ३० वर्ष है। उपर्युक्त

खंड (सी) के अनुसार संविधान की तीसरी अनुसूची में निर्धारित प्रपत्र के अनुसार प्रत्येक उम्मीदवार को निर्वाचन आयोग के समक्ष अथवा आयोग द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान के प्रति निष्ठा, उसका पालन तथा भारतीय सम्प्रभुता एवं एकता को बनाये रखने की सपथ लेनी पड़ती है। विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता यदि विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से उम्मीदवार है तो उसे निर्वाचित होने के उपरान्त सभा या परिषद् में से किसी एक की सदस्यता त्यागनी पड़ती है।[१] फलत: इस निर्वाचन क्षेत्र से गैर मतदाता ही उम्मीदवार होते हैं।

उपर्युक्त अर्हताओं के अतिरिक्त पागल, दिवालिया या संसद द्वारा निर्मित किसी कानून के अन्तर्गत यदि कोई अयोग्य हो तो वह परिषद् की सदस्यता के लिए उम्मीदवार नहीं हो सकता है। केन्द्र या प्रथम अनुसूची में उल्लिखित राज्य सरकार के अन्तर्गत किसी लाभ पद पर कार्य करता हुआ व्यक्ति भी परिषद् का सदस्य नहीं हो सकता है,[२] परन्तु केन्द्र या राज्य सरकार के किसी मंत्री पद पर कार्य करता हुआ व्यक्ति उपर्युक्त अनर्हता से मुक्त समझा जायगा।[३]

उपर्युक्त लाभप्रद के अतिरिक्त निम्नलिखित लाभ के पद विधान परिषद् की सदस्यता के लिए अनर्हता नहीं समझे जायेंगे :--

१. संसद के उपमुख्य सचेतक का कार्यालय,

२. सहायक वायुसेना की सदस्यता अथवा आरक्षण और सहायक वायुसेना अधिनियम, १९५२ के अन्तर्गत वायुसुरक्षा आरक्षण की सदस्यता[४]।

---

१. अनुच्छेद १९० (१)

२. अनुच्छेद १९१ (१) ए

३. अनुच्छेद १९१, खंड (२)

४. उत्तर प्रदेश राज्य विधान मंडल सदस्यों का (अनर्हता निवारण) (पूरक) अधिनियम १९५६ (उ०प्र०,१९५७ का तीसरा अधिनियम)

(३) जीवन बीमा (संकटकालीन प्रावधान) अधिनियम १६५६ के अन्तर्गत जीवन बीमा कर्त्ता के अधीन वे लाभ के पद जिसके नियंत्रित व्यापार का प्रबंध केन्द्र सरकार में निहित हो ।[१]

(४) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम १६४८ के अन्तर्गत किसी कार्यालय का कोई सदस्य या इसके अन्तर्गत निर्मित किसी बोर्ड, समिति या परिषद् का सदस्य ।[२]

(५) टैरिटोरियल आर्मी एक्ट, १६४८ के अन्तर्गत टैरिटोरियल आर्मी में प्रविष्ट व्यक्ति या नैशनल कैडेट कोर एक्ट, १६४८ के अन्तर्गत नैशनल कोर में प्रविष्ट व्यक्ति।[३]

(६) भारत सरकार अथवा उत्तर प्रदेश सरकार के अन्तर्गत वैसे एजेन्ट या व्यक्ति जो राष्ट्रीय योजना प्रमाण पत्र को बेचने के लिए या ग्राहक बनने के लिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त आयोग अथवा बिना आयोग के कार्य करने वाले एजेन्ट या व्यक्ति का कार्यालय,[४]

(७) राज्य सरकार को सलाह देने के लिए या किसी विशेष कार्य को पूरा करने के लिए अवैतनिक कार्यालय, अथवा केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा

---

१. उत्तर प्रदेश राज्य विधान मंडल सदस्यों का (जीवन बीमा) (अनर्हता निवारण) अधिनियम,१६५६ (उ०प्र० १६५६ का ३५ वां अधिनियम) ।

२. उ०प्र० राज्य विधान मंडल सदस्यों का अनर्हता निवारण अधिनियम (उ०प्र० का १६५५ का १० वां अधिनियम) ।

३. उ०प्र० राज्य विधान मंडल सदस्यों का अनर्हता निवारण (पूरक) अधिनियम, १६५३ (उ०प्र० १६५५ का २० वां अधिनियम) ।

४. उत्तर प्रदेश राज्य विधान मंडल सदस्यों का राष्ट्रीय योजना उधार (अनर्हता निवारण) अधिनियम (उ०प्र० १६५४ का २३ वां अधिनियम ।

नियुक्त किसी समिति का अध्यक्ष या सदस्य जो सिर्फ क्षतिपूर्ति भत्ता पाते हों,[१] लाभ के पद नहीं समझे जायेंगे ।

सदस्यों के आर्हताओं के अतिरिक्त मतदाताओं के लिए भी आर्हताएं संविधान में निरूपित हैं । ये आर्हताएं परिषद् के निर्वाचन क्षेत्रों के आधार पर अलग-अलग हैं । स्थानीय स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र में भाग लेने वाले मतदाताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे निर्वाचन क्षेत्र में किसी स्थानीय स्वायत्त संस्था का सदस्य हों । विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए भी विधान सभा का सदस्य होना अनिवार्य है । स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से वही मत दे सकता है जो उत्तर प्रदेश का निवासी हो तथा कानून द्वारा मान्यता प्राप्त किसी विश्व विद्यालय से स्नातक या स्नातक समकक्ष[२] योग्यता कम से कम तीन वर्ष पहले प्राप्त कर चुका हो । अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत वैसी शिक्षण संस्थाओं में कम से कम तीन वर्ष से अध्यापन का कार्य करते आ रहे हों जिसका शैक्षणिक स्तर सैकेन्डरी स्कूल से कम न हो । इन शिक्षण संस्थाओं के अध्यापकों में विश्वविद्यालय के अध्यापक, मैडिकल कॉलेज, लॉ कालेज तथा प्रशिक्षण महाविद्यालय के अध्यापक, इन्टर-मीडिएट कॉलेज, हाई स्कूल तथा नॉरमल स्कूल के अध्यापक और संस्कृत पाठशाला के अध्यापक आते हैं ।

वस्तुत: स्नातक और अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं के

---

१. उ०प्र० राज्य विधान मंडल सदस्यों का अनर्हता निवारण अधिनियम (उ०प्र० १९५१ का १४ वां अधिनियम ।

२. स्नातक समकक्ष योग्यताओं में वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, काशी विद्यापीठतथा गुरुकुल के शास्त्री या आचार्य अथवा अन्य केन्द्रीय या राज्य विधान मंडलों के कानून द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी विश्व विद्यालय या संस्था का शास्त्री, साहित्यालंकार, साहित्यरत्न, विद्यालंकार, अबुल-फ़जल आदि आते हैं ।

लिए आम चुनाव के मतदाताओं की तरह कोई न्यूनतम उम्र निर्धारित नहीं है। उपर्युक्त विद्यालयों का कोई भी अध्यापक जिसकी उम्र इक्कीस वर्ष से कम है, परन्तु यदि वह तीन वर्षों से अध्यापन का कार्य कर रहा है, अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र से मत दे सकता है।

यद्यपि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं के लिए अलग-अलग योग्यताएं निश्चित हैं तथापि यह संभव है कि एक ही मतदाता परिषद् के चारों निर्वाचन क्षेत्रों में मत दे सके। उदाहरण के लिए कोई स्नातक शिक्षक जो किसी स्थानीय स्वायत्त संस्था एवं विधान सभा का सदस्य हो, तथा तीन वर्ष पहले स्नातक की योग्यता प्राप्त कर तीन वर्ष से पढ़ाता भी आ रहा हो, विधान परिषद् के चारों निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान कर सकता है।

स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से हर पेशे के स्नातक जैसे वकील, डाक्टर, व्यापारी, अध्यापक, मत दे सकते हैं। दूसरी ओर सैकेन्डरी स्कूल से कम स्तर वाले विद्यालय के अध्यापक भी अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र से मत नहीं दे सकते चाहे उनकी शैक्षणिक योग्यता स्नातकोत्तर ही क्यों न हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र स्नातक निर्वाचन क्षेत्र की अपेक्षा संकुचित है।

द्विवर्षीय चुनाव और परिषद् में परिवर्तन :-

द्विवर्षीय चुनाव के परिणामस्वरूप परिषद् में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। प्रत्येक दूसरे वर्ष एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन होता है। १९५४, १९५६ और १९६० के द्विवर्षीय चुनाव में लगभग अधिकांश पुराने सदस्य ही पुनर्निर्वाचित हुए थे[१] और शेष आधे से कम सदस्य नव निर्वाचित थे।

---

१. नव निर्वाचित सदस्यों की तालिका, पृ०६१में दी हुई है।

द्विवर्षीय चुनाव में नव निर्वाचित सदस्यों की तालिका

	स्थानीयस्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र	विधानसभा निर्वाचनक्षेत्र	अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र	स्नातकनिर्वाचन क्षेत्र	मनोनीत	योग
१९५४	१	३	१	१	१	७
१९५६	३	२	१	१	१	८
१९५८	२०	१८	४	४	४	५०
१९६०	४	२	१	३	१	११
१९६२	७	१३	३	२	४	२९

उपर्युक्त तालिका से यह ज्ञात होता है कि १९५४, १९५६ और १९६० की अपेक्षा १९५८ और १९६२ के द्विवर्षीय चुनाव में नव निर्वाचित सदस्यों की संख्या पुन-र्निर्वाचित सदस्यों की संख्या से अधिक थी । इन नव निर्वाचिन सदस्यों की संख्या में वृद्धि के दो कारण थे :—

प्रथमत: परिषद् के कुछ सदस्यों ने आम चुनाव में विधान सभा के लिए निर्वाचित होने पर परिषद् की सदस्यता से त्याग किया था । परिणामस्वरूप परिषद् के उन रिक्त स्थानों पर नवीन सदस्य निर्वाचित हुए थे । द्वितीयत:, परिषद् का द्विवर्षीय चुनाव १९५८ में था और इसी वर्ष परिषद् की सदस्य संख्या में भी वृद्धि की गई थी । फलत: नियमानुसार एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन होना था तथा दूसरी ओर बढ़ाये गये ३६ स्थानों पर भी निर्वाचन होना था । अत: नवीन सदस्यों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक था ।

परिषद् सदस्यों का वर्ग एवं व्यवसाय :-

१९५२ से १९६२ के बीच परिषद् के सदस्यों को उनके पेशा के आधार पर मुख्यत: चार वर्गों में बांटा जा सकता है – कृषक, व्यापारी, वकील एवं अध्यापक वर्ग । यद्यपि अधिकांश सदस्यों का व्यवसाय कृषि, व्यापार, वकालत और अध्यापन है तथापि चिकित्सा, पत्रकारिता, साहित्य सेवा(लेखन) तथा समाज सेवा भी कुछ सदस्यों का व्यवसाय था ।

द्विवर्षीय चुनाव के उपरान्त निर्वाचित सदस्यों का व्यवसाय

१९५२	कृषि	व्यापार	वकालत	चिकित्सा	अध्यापन	समाजसेवा	मंत्री	पत्रकारिता	अन्य पेशा	अज्ञात	कुल संख्या
वि०स०नि० क्षेत्र	३	३	४	-	-	३	१	-	१	९	२४
स्थानीयस्वायत्त निर्वाचनक्षेत्र	३	७	८	१	-	१	१	-	-	३	२४
अध्यापक निर्वाचनक्षेत्र	-	-	-	-	५	-	-	-	-	१	६
स्नातक निर्वाचन क्षेत्र	१	१	२	-	-	१	-	-	-	१	६
१९५४	७	११	१४	१	५	५	२	-	१	१४	६०
वि०स०नि०क्षे०	[illegible]	२	५	-	१	१	-	१	१ (बीमा)	६	२४
स्था०स्वा०नि०	३	८	८	१	-	१	१(उप-मंत्री)	-	-	२	२४
अध्या०नि०क्षे०	-	-	-	-	५	-	-	-	-	१	६
स्ना०नि०क्षे०	१	१	३	-	-	१	-	-	-	-	६

१९५६	११	११	१६	१	६	३	१	१	१	६	६०
वि०स०नि० क्षेत्र	७	२	४	-	-	२	-	१	१ (वीमा)	७	२४
स्था०स्वा० नि०क्षेत्र	३	८	६	१	-	२	१(उप-मंत्री)	-	-	-	२४
अ०नि०क्षे०	-	-	-	-	४	-	-	-	-	२	६
स्ना०नि०क्षे०	-	-	४	-	-	१	-	-	-	१	६
	१०	१०	१७	१	४	५	१	१	१	१०	६०

द्विवर्षीय चुनाव के उपरान्त परिषद् के निर्वाचित सदस्यों का व्यवसाय

१९५८	कृषि	व्यापार	वकालत	चिकित्सा	अध्यापन	समाजसेवा	मंत्री	पत्रकारिता	अन्य पेशा	अज्ञात	योग
वि०स०नि०क्षेत्र	१०	३	४	१	-	८	-	[illegible]	३	१०	३६
स्था०नि०क्षेत्र	७	४	१२	१	-	३	-	१	३	८	३६
अध्यापकनि०क्षेत्र	-	-	-	-	५	-	-	-	१	३	६
स्ना०नि०क्षेत्र	१	१	४	-	-	१	-	-	-	२	६
१९६०	१८	८	२०	२	५	१२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२३	६६

१९६०	कृषि	व्यापार	वकालत	चिकित्सा	अध्यापन	समाजसेवा	मंत्री	पत्रकारिता	अन्य पेशा	अज्ञात	कुलयोग
०स०नि०क्षेत्र	१२	३	६	१	-	७	-	१	२(१बीमा) (१राज०)	७	३९
स्था०स्वा०नि०	६	५	९	१	-	४	-	-	३	११	३९
अध्या०नि०क्षेत्र	-	-	-	-	७	-	-	-	-	२	९
स्ना०नि०क्षे०	-	-	३	-	३	१	-	-	-	२	९
१९६२	१८	८	१८	२	१०	१२	-	१	५	२२	९६
स०स०नि०क्षेत्र	११	६	६	१	-	९	-	२	२(१राज०)	२	३९
स्था०नि०क्षेत्र	१५	८	४	-	१	३	३	१	-	४	३९
ध्या०नि०क्षेत्र	-	-	-	-	८	-	-	-	-	१	९
ना०नि०क्षेत्र	-	-	३	-	४	१	-	-	(१लेखन)	-	९
	२६	१४	१३	१	१३	१३	३	३	३	७	९६

उपर्युक्त तालिकाओं से यह ज्ञात होता है कि परिषद् में वकीलों की संख्या सबसे अधिक थी । उपलब्ध सूचना के आधार पर इस पेशे के सदस्यों की संख्या सर्वाधिक १९५८ में २६ तथा सबसे कम १९६२ में १३ थी । शेष वर्षों में यह संख्या १९५२ में १४, १९५४ में १६, १९५६ में १७ और १९६० में १८ थी । इससे यह विदित होता है कि १९६० के द्विवर्षीय चुनाव के बाद इस पेशे के सदस्यों का अनुपात कम हुआ है । इस व्यवसाय के प्राय: अधिकांश सदस्य स्थानीय

स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र तथा शेष सदस्य स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होकर आये थे ।

दूसरा स्थान कृषक वर्ग के सदस्यों का है । इस पेशे के सदस्यों की संख्या १९५२ में ७, १९५४ में ११, १९५६ में १०, १९५८ में १८, १९६० में १८ तथा १९६२ में २६ थी । इससे यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक द्विवर्षीय चुनाव के बाद परिषद् में कृषि पेशे के सदस्यों की संख्या बढ़ती गयी है । १९५२ और १९५४ मे स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित दो कृषि व्यवसाय के सदस्यों को छोड़कर सभी सदस्य विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र तथा स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होकर आये थे ।

संख्या के आधार पर तीसरा स्थान व्यापारी वर्ग का है । १९५२ में इस व्यवसाय के ११,१९५४ में भी ११, १९५६ में १०, १९५८ तथा १९६० में ८-८ और १९६२ में १४ सदस्य थे । कृषक वर्ग के समान ही, इस व्यवसाय के सदस्य भी दो एक सदस्यों को छोड़कर शेष सभी सदस्य विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र तथा स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित हुए थे ।

चौथा स्थान अध्यापकों का है । उपलब्ध सूचना के आधार पर १९५२ में ५, १९५४ में ६, १९५६ में ४, १९५८ में ५, १९६० में १० तथा १९६२ में १३ सदस्य अध्यापन पेशे के थे । इससे यह विदित होता है कि १९५८ से प्रत्येक द्विवर्षीय चुनाव के बाद परिषद् में अध्यापकों की संख्या बढ़ी है । यद्यपि १९५२ से १९५८ तक प्रत्येक द्विवर्षीय चुनाव में निर्वाचित अध्यापक सदस्य अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र के थे, किन्तु १९६० और १९६२ में क्रमशः ३ और ४ सदस्य स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से भी निर्वाचित हुए थे । इसके अतिरिक्त १९६२ के द्विवर्षीय चुनाव में एक अध्यापक सदस्य स्थानीय स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र से भी निर्वाचित हुआ था । शेष सदस्यों में सबसे अधिक संख्या उन सदस्यों की है जिनका पेशा समाज सेवा था । यह संख्या १९५२ में ५, १९५४ में ३ ,

१९५६ में ५, १९५८ और १९६० में १२-१२ तथा १९६२ में १३ थी । इसके अतिरिक्त दो एक सदस्यों का व्यवसाय जीवनबीमा भी था ।

शैक्षणिक स्तर :-

परिषद् के सदस्यों की शैक्षणिक योग्यताएं भी उच्च थीं । सभी निर्वाचनक्षेत्र से निर्वाचित एवं मनोनीत सदस्यों में अधिकांश की योग्यताएं स्नातक एवं स्नातकोत्तर थीं ।

उच्चतर शिक्षा प्राप्त सदस्यों की योग्यताओं में एम०ए० की योग्यता के अतिरिक्त एल०एल०बी० की योग्यता प्राप्त सदस्य भी थे । कुछ सदस्य एम०ए०, एल०एल०बी० थे तथा कुछ सदस्य बी०ए०,एल०एल०बी० । कुछ सदस्य शास्त्री, आचार्य, एम०डी० तथा एम०एस-सी० की भी शिक्षा प्राप्त थे । विधान सभा तथा स्थानीय स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र से कुछ सदस्यों की शैक्षणिक योग्यताएं सिर्फ इन्टर अथवा हाई स्कूल तक ही थीं तथा १९६२ के द्विवर्षीय चुनाव के बाद इन्हीं निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित दो- एक सदस्यों की योग्यता हाईस्कूल से भी , कम थी ।

प्राप्त सूचना के आधार पर परिषद् के सदस्यों की शैक्षणिक योग्यताएं निम्नलिखित तालिका में दर्शायी गयी हैं ।

सदस्यों की शैक्षणिक योग्यताएं १९५२ से १९५६ तक

१९५२	एम०ए० एल०एल० बी०	बी०ए० एल०एल०बी०	बी०ए०या बी०एस-सी	शास्त्री आचार्य वैद्यविशा०	इन्टर हाई स्कूल	हाईस्कूल से कम	अशिक्षित	अज्ञात	अन्य शिक्षा	कुलसंख्या
स्था०स्वा०नि०क्षेत्र	२	७	६	-	१	-	-	५	-	२४
वि०स०नि०क्षेत्र	२	७	१०	-	१	-	-	४	-	२४
स्ना०नि०क्षेत्र	४	१	१	-	-	-	-	-	-	६
अध्या०नि०क्षेत्र	४	-	१	-	-	-	-	१	-	६
मनोनीत	३	-	१	१	१	-	-	५	१	१२

१९५४	१५	१५	२२	१	३	-	-	१५	१	७२
स्था०स्वा०नि०छात्र	२	७	६	-	२	-	-	४	-	२४
वि०स०नि०छात्र	४	८	४	-	४	-	-	४	-	२४
स्नातक नि०छात्र	३	२	१	-	-	-	-	-	-	६
अध्यापक नि०छात्र	४	-	१ बी०ए०	-	-	-	-	१	-	६
मनोनीत	४	-	१	१	१	-	-	४	१	१२
१९५६	१७	१७	१६	१	७	-	-	१३	१	७२
स्था०स्वा०नि०छात्र	२	८	-	-	२	-	-	१२	-	२४
वि०सभा नि०छात्र	३	६	७	-	४	-	-	४	-	२४
स्नातक नि०छात्र	३	३	-	-	-	-	-	-	-	६
अध्यापक नि०छात्र	३	-	१	-	-	-	-	२	-	६
मनोनीत	५	-	१	१	१	-	-	४	-	१२
	१६	१७	९	१	७	-	-	२२	-	७२

परिषद् के सदस्यों की शैक्षणिक योग्यताएं, प्रत्येक द्विवर्षीय चुनाव के बाद (१९५८ से १९६२ तक)

१९५८	एम०ए० एल०एल०बी	बी०ए० एल० एल०बी	बी०ए० बी० एस-सी०	शास्त्री। आचार्य	इन्टर या हाईस्कूल	हाईस्कूल से कम	अन्य शिक्षा	अशिक्षित	अज्ञात	कुलयोग
स्था०स्वा०नि०क्षेत्र	१०	११	८	१	४	-	-	-	५	३९
वि०सभा नि०क्षेत्र	८	९	१५	-	५	-	-	-	२	३९
स्ना० नि०क्षेत्र	३	४	-	-	-	-	-	-	२	९
अध्या० नि०क्षेत्र	४	-	-	-	-	-	-	-	५	९
मनोनीत	५	-	१	-	१	-	-	-	५	१ २
१९६०	३०	२४	२४	१	१०	-	-	-	१९	१०८
स्था०स्वा०नि०क्षेत्र	१२	९	७	१	४	-	-	-	६	३९
०सभा नि०क्षेत्र	९	८	१४	-	६	-	-	-	२	३९
नातक नि०क्षेत्र	६	२	-	-	-	-	-	-	१	९
ध्यापक नि०क्षेत्र	५	-	-	-	-	-	-	-	४	९
मनोनीत	५	-	१	१	१	-	-	-	४	१२
१९६२	३७	१९	२२	२	११	-	-	-	१७	१०८
थाo स्वा०नि०क्षेत्र	१२	८	१०	३	३	१	-	-	२	३९
वि०सभा नि०क्षेत्र	१०	९	१२	-	४	१	-	-	३	३९
स्नातक नि०क्षेत्र	४	२	१	-	-	-	-	-	२	९
ध्यापक नि०क्षेत्र	५	२	१	१	-	-	-	-	-	९
मनोनीत	४	१	२	-	-	-	-	-	५	१२
	३५	२२	२६	४	७	२	-	-	१२	१०८

परिषद् के उच्चतर शैक्षणिक स्तर के बावजूद अधिकांश सदस्यों की विशेष अभिरुचि अध्ययन में नहीं थी ।[१] फिर भी अध्यापक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित प्राय: सभी सदस्यों की तथा स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों और मनोनीत सदस्यों में अधिकांश की अभिरुचि अध्ययन की थी । स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र और विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित अधिकांश सदस्यों की अभिरुचि राजनीति थी तथा कुछ सदस्यों की समाज सेवा भी ।

सदस्यों का व्यवहार अथवा संसदीय आचरण :-

सदस्यों के संसदीय आचरण से तात्पर्य संसदीय नियम, परम्परा एवं उसकी मर्यादा के पालन से है । अत: प्रश्न उठता है कि परिषद् सदस्यों ने किस अंश तक सदन के नियम, उसकी परम्परा तथा मर्यादा का पालन किया है ।

सदन में प्रवेश करने के उपरान्त स्थान ग्रहण करने एवं स्थान छोड़ने के पूर्व सदस्य द्वारा सभापति की ओर झुककर अभिवादन नहीं करना, सभापति को सम्बोधन नहीं कर किसी सदस्य का नाम लेना अथवा 'आप-आप' कहना,[२] सभापति की ओर पीठकर सदन में बात करना,[३] बोलते हुए सदस्य एवं सभापति के बीच में खड़ा होकर बाधक बनना ;[४] आदि जैसे अवांछित आचरण यदा-कदा परिषद् के सदस्यों द्वारा हुए हैं ।

---

१. उ०प्र० विधानपरिषद् के सदस्यों का जीवन परिचय, पंचम संस्करण (१९६५) उ०प्र० विधान परिषद् सचिवालय द्वारा प्रकाशित, पृ० १-१३६

२. उ०प्र० वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ५८, अंक ३, जुलाई २३, १९५८, पृ०१० १४६ खंड ५८, अंक २, जुलाई २२, १९५८, पृ० ६१

३. उ०प्र०वि०परि० की कार्यवाही, खंड ५८, अंक ४, जुलाई २४, १९५८, पृ० १९२

४. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड ६०, अंक ७, सितम्बर २४, १९५८, पृ० ३९१

इसी प्रकार बैठे-बैठे कोई बात कहना,[१] सदन में बैठे हुए सदस्यों द्वारा पानी मंगाकर पीना,[२] अथवा सदन की बैठक प्रारम्भ होने के पश्चात् सदन के बीच से निकलना[३] आदि जैसे व्यवहार भी परिषद् के सदस्यों द्वारा हुए हैं। कुछ सदस्यों का विचार था कि अगर वे सदन के अन्दर नहीं आयेंगे तो भी उनकी हाजिरी ली जायगी।[४] इस प्रकार की धारणा संसदीय नियम के ज्ञानाभाव में ही हो सकती है।

वस्तुत: संसदीय नियम तथा परम्परा के ज्ञानाभाव में परिषद् के नवीन सदस्यों द्वारा हुए यदा-कदा उपर्युक्त आचरण के आधार पर परिषद् सदस्यों को अनुभवहीन अथवा असंयमित नहीं कहा जा सकता।

विधान सभा के सदस्यों द्वारा भी संसदीय नियम तथा परम्परा के ज्ञानाभाव में असंसदीय आचरण हुए हैं। उदाहरणार्थ १ अगस्त १९५७ को सार्वजनिक निर्माण विभाग के अनुदान पर विचार के समय एक सदस्य अध्यक्ष की तरफ पीठ कर बात कर रहे थे।[५] इसी प्रकार २० अगस्त १९५७ को सदन की कार्यवाही के मध्य एक सदस्य कुर्सीपर पैर रखकर बैठे हुए थे।[६] विधान परिषद् की कार्यवाही में इस प्रकार के उदाहरण नहीं हैं।

मंत्रियों और सदस्यों को मर्यादित ढंग से बैठकर दूसरों का भाषण सुनना चाहिए; लेकिन यदि वे ऐसा नहीं करते तो यह भी सदन की मर्यादा के विपरीत है। परिषद् में तो नहीं किन्तु सभा में इस प्रकार के उदाहरण

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ५८, अंक ४, जुलाई २४,१९५८, पृ० २३५
२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ६०, अंक ७, सितम्बर २९,१९५८, पृ० ५२८
३. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ५८, अंक १२, अगस्त ६, १९५८
४. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ७१, मार्च ३१,१९५८, पृ० १६८
५. उ०प्र०वि०सभा की कार्यवाही, खंड १८५, पृ० ४२
६. उ०प्र०वि०सभा की कार्यवाही, खंड १८६, पृ० ४६

मिलते हैं। ३० अगस्त १९५४ को श्री अवधेशप्रसाद सिंह, विधान सभा सदस्य ने अधिष्ठाता का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा यदि मंत्री उनकी बात को नहीं सुनना चाहते हों, तो इसके लिए वह विवश हैं। अधिष्ठाता ने निर्णय देते हुए कहा -" मैं माननीय मंत्री श्री चरणसिंह जी से कहूंगा कि भाषण हो रहा है, ध्यान से सुनें। मंत्री जी ने उत्तर देते हुए कहा कि उनकी ओर से दूसरे मंत्री जी सुन रहे हैं। इस पर अधिष्ठाता ने पुनः कहा" जिस प्रकार आप बैठे हुए थे, वह सदन की मर्यादा के विरुद्ध है।[१] परिषद् में सभापति अथवा अधिष्ठाता और मंत्री के बीच उपर्युक्त प्रकार के कथोपकथन नहीं हुए हैं।

दूसरे प्रकार के वे व्यवहार हैं जो सदस्यों द्वारा सरकार अथवा सभापति की व्यवस्था के विरोधस्वरूप प्रदर्शित हुए हैं। इन प्रदर्शित व्यवहारों में सभापति पर आक्षेप करना तथा सदस्य द्वारा सदन का त्याग करना मुख्य है। यद्यपि इस प्रकार के व्यवहार की घटनाएं विधान सभा की अपेक्षा परिषद् में कम हुई हैं, तथापि यदा-कदा की घटना से ही सदन की मर्यादा को ठेस लगी है।

१६ जनवरी १९५६ को प्रश्नोत्तर के समय विधान परिषद् में एक सदस्य द्वारा विस्तृत सूचना मांगे जाने पर सभापति की अनुमति नहीं मिलने के विरोधस्वरूप सदस्य ने सभापति के निर्णय के विरुद्ध यह कहने के बाद कि "सदस्य के अधिकार का हनन हो रहा है" सदन का त्याग किया।[२] इसी प्रकार उपसभापति द्वारा कार्यस्थगन प्रस्ताव को सदन में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दिये जाने पर सदस्य यह कहने के बाद कि "चैयरमैन की रूलिंग ठीक नहीं

---

१. वि०सभा की कार्यवाही, ३० अगस्त १९५४

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ४४, जनवरी १६, १९५६, पृ० ७

है, सदन से बाहर चले आये ।[१] इन दोनों वाक्यों से यह विदित होता है कि सदस्यों ने प्रत्यक्ष रूप से सभापति पर आक्षेप किया है और तत्पश्चात् सदन का त्याग किया है । ३१ मार्च १९६० को भी सभापति के सदन में प्रवेश करने पर विरोधी दल के कुछ सदस्यों ने सदन का त्याग किया था ।[२]

यद्यपि उपर्युक्त सारे उदाहरणों से सभापति के प्रति अनादर के भाव प्रदर्शित होते हैं तथापि परिषद् के सदस्यों ने सभापति के साथ वैसा व्यवहार नहीं किया जिस प्रकार का व्यवहार राजस्थान विधान सभा के विधायकों ने सभा भवन में अध्यक्ष के साथ किया था । २१ मई १९५४ को राजस्थान विधान सभा में विधायकों ने पहले अध्यक्ष को झकझोड़ा । तत्पश्चात् मेजों को उलटकर पैरों से कुर्सियों को ठुकरा दिया ।[३] एक प्रेस रिपोर्ट के अनुसार देश के विधायिनी इतिहास में इस प्रकार की घटना की कोई समानता नहीं है ।[४] इस प्रकार के उदाहरण की तुलना में उ०प्र० विधान परिषद् के सदस्यों के आचरण संयमित ही कहे जा सकते हैं ।

परिषद् सदस्यों द्वारा सदन का त्याग सरकार की नीति के विरोध-स्वरूप भी हुआ है । विरोध प्रकट करने के लिए सदन का त्याग करना कुछ अंश तक सही हो सकता है, किन्तु कर्तव्यपालन के दृष्टिकोण से इस प्रकार के कार्य को कर्तव्यपालन नहीं कहा जा सकता । पूरे सत्र के लिए सदस्य द्वारा सदन का त्याग करने से अथवा सदन की कार्यवाही में भाग नहीं लेने से कर्तव्यनिष्ठा पर ठेस पहुंचती है । ६ सितम्बर १९५८ को उ०प्र० विधान परिषद् के प्रजासोशलिस्ट दल के

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ५६, मार्च ४,१९५८, पृ० १०२६

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ७१, मार्च ३१,१९६०,पृ० ९६१

३. टाइम्स आफ इंडिया, जून १९५४ — "What happened on May 21 in the Rajasthan Assembly said a Press report has no parallel in the country Legislative history. Rajasthan Legislators, on that evening, shook first and scrambled insults at the Presiding Officer, toppled over the desks and kicked away the chairs".

४. वही ।

सदस्यों ने सरकार की नीति के विरोधस्वरूप पूरे सत्र के लिए सदन का त्याग किया था । ३१ मार्च १९६० को परिषद् में बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न पूछे गये थे । उन प्रश्नों के उत्तर के लिए सरकार को सैकड़ों रुपये खर्च करने पड़े थे, किन्तु उन उत्तरों को सदन में स्पष्ट करते समय विरोधीदल सदन से चल गये थे । २८ अप्रैल १९६० को भी सदन में विनियोग विधेयक पर विचार के समय विरोधी दल के सदस्य अनुपस्थित थे ।[१]

वस्तुत: विरोध प्रकट करना अनुचित नहीं । प्रजातंत्र की सफलता के लिए सरकार का विरोध करना आवश्यक भी है, किन्तु विरोध प्रकट आलोचना द्वारा तथा समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा भी हो सकता है, बनिस्बत इसके कि सदन त्याग कर विरोध प्रकट किया जाय ।

संवैधानिक दृष्टिकोण से प्रत्येक सदस्य संविधान के प्रति निष्ठा और अपने कर्त्तव्य पालन का शपथ लेता है ।[२] अत: जान बूझकर सदन की कार्यवाही में भाग नहीं लेना संविधान के प्रति निष्ठा का अभाव तथा कर्तव्य का उल्लंघन ही समझा जा सकता है ।

सदस्यों द्वारा उपर्युक्त आचरण के बावजूद अन्य राज्य विधान मंडल के निम्न सदन की तुलना में उ०प्र० विधान परिषद् में इस प्रकार की घटनाएं कम हुई हैं । दस वर्ष की अवधि में इस प्रदेश के परिषद् में अपने सदस्यों द्वारा सदन त्याग लगभग एक दर्जन हुए होंगे, जबकि मौरिस-जौन्स के अनुसार बहुत से विधान सभाओं के प्रत्येक सत्र में कम से कम एक बार सदन का त्याग करना तो

---

१ "

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ७१, मार्च ३१, १९६०, पृ० १९४
२. अनुच्छेद १८८

साधारण सी बात है ।[१]

उ०प्र०विधान परिषद् की अपेक्षाकृत विधान सभा में शांत वातावरण का अभाव रहा है । ६ सितम्बर १९५६ को विधान सभा में हुई अशांति के सिलसिले में कुछ सदस्यों को सदन से पुलिस द्वारा निकालते समय विधान-सभा का वातावरण अशांत हो गया था ।[२]

कई अवसरों पर तो पुलिस ने भी सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार किया है जिसके फलस्वरूप भी सदन में अशान्ति उत्पन्न हुई है । किसी सदस्य को सदन से बाहर निकालते समय उसको धक्का देना, मारना, कपड़े फाड़ना या उसको घसीटना अनुचित है[३] किन्तु सितम्बर १९५८ को विधान सभा के एक सदस्य को सदन से बाहर निकालते समय इस प्रकार का व्यवहार किया गया था ।[४]

इसी प्रकार २३ अगस्त १९५४ को विधान सभा की दर्शक दीर्घा में हुल्लड़बाजी के कारण सदन की कार्यवाही में बाधा पहुंची थी । इस अवसर पर नारे लगाये गये थे तथा एक व्यक्ति गैलरी से अध्यक्ष को सम्बोधित कर भाषण देने लगा था । पुलिस ने गैलरी में जाकर हुल्लड़बाजों को जबर्दस्ती वहां से निकाला । उस समय भी सरकार के विरुद्ध नारे लग रहे थे और हुल्लड़बाज गैलरी से हटना नहीं चाहते थे ।[५]

दर्शकों के अतिरिक्त सदस्यों द्वारा भी सभा भवन में नारे लगाये गए हैं । उदाहरणार्थ ४ अप्रैल १९५६ को मुख्यमंत्री (डा० सम्पूर्णानन्द) उ०प्र०

---

१. मौरिस,जोन्स, पार्लियामेंट इन इंडिया, प्रथम संस्करण,१९५९(लंदन), सदन और सदस्य—व्यवहार और दृष्टिकोण, पृ० १४२

२. उ०प्र० विधान सभा की कार्यवाही, खण्ड १६७, पृ० ७८४-८५

३. उ०प्र०विधान सभा की कार्यवाही, खण्ड १६७, पृ० ५२३

४. वही, पृ० ७१५

५. उ०प्र० विधान सभा की कार्यवाही, खंड १३८, २३ अगस्त,१९५४, पृ० ३३-३४

विक्रीकर (सं० अध्यादेश, १९५६ के अनुमोदन संकल्प पर भाषण देने के लिए खड़े हुए थे, उसी समय श्री रामनारायण त्रिपाठी, विधान सभा सदस्य ने सदन में मुख्यमंत्री इस्तीफा दें के नारे लगाया ।[१]

विधान सभा के सदस्यों ने तालियाँ बजाकर भी सभा की कार्यवाही में व्यवधान लाने का प्रयास किया है । उदाहरणार्थ १६ फरवरी १९५४ को १९५३-५४ के द्वितीय अनुपूरक अनुदानों पर सामान्य वाद-विवाद के अवसर पर विधान सभा सदस्य श्री सीताराम शुक्ल ने सरकार की नीति की आलोचना करते हुए तालियाँ बजायी थीं ।[२] इसीप्रकार ३ सितम्बर १९५८ को मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव पर श्री रूकनुधीन खाँ जब भाषण दे रहे थे, तब कुछ सदस्यों ने तालियाँ बजायीं और "मुकर्रर इरशाद" का नारा लगाया ।[३]

भाषण के मध्य में सदस्यों द्वारा बार-बार टोके जाने के परिणाम स्वरूप भी सभा की कार्यवाही में व्यवधान पहुँचा है । उदाहरण के लिए ६ अप्रैल १९५६ को विधान सभा में उ०प्र० भूमि व्यवस्था (सं०) विधेयक १९५६ पर विचार के समय जब श्री चरण सिंह भाषण दे रहे थे, अन्य सदस्य उन्हें बीच-बीच में टोक कर व्यवधान पहुँचाने का प्रयास कर रहे थे ।[४]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उ०प्र० विधान परिषद् की अपेक्षा उ०प्र० विधान सभा में शान्त वातावरण का प्राय: अभाव रहा है । परिषद् में सभा की तुलना में शान्त वातावरण विद्यमान रहने के कई कारण हैं । प्रथमत:, परिषद् के अधिकांश सदस्य उच्च शिक्षा प्राप्त हैं ,

---

१. उ०प्र०विधान सभा की कार्यवाही, खंड १७०, ४अप्रैल, १९५६, पृ० २११
२. उ०प्र०विधान सभा की कार्यवाही, खंड ५, १२६, १६ फरवरी १९५४, पृ० २६५
३. उ०प्र०वि०सभा की कार्यवाही, खंड १९७, ३सितम्बर १९५८, पृ० ५३३
४. उ०प्र०वि०सभा की कार्यवाही खंड १७०, ६ अप्रैल १९५६, पृ० ३३६

द्वितीय परिषद् की सदस्य संख्या सभा से बहुत कम है जिसके कारण परिषद् में तनाव कम रहते हैं तथा वाद-विवाद अधिक मैत्रीय होते हैं। तृतीयत: परिषद् की दर्शक दीर्घा भी सभा से छोटी है। दर्शक दीर्घा छोटी होने के कारण दर्शकों की भीड़ भी सभा की दर्शक दीर्घा से कम होती है। अत: परिषद् में शान्त वातावरण रहता है और परिषद् की कार्यवाही अधिक सुचारु रूप से चलती है। मौरिस-जौन्स के अनुसार उच्च सदन में कम समय तक कार्यवाही होने के कारण शान्तपूर्ण वातावरण रहता है,[१] किन्तु मौरिस-जौन्स का यह तर्क उ०प्र० विधान परिषद् के सम्बन्ध में पूर्णत: सत्य नहीं कहा जा सकता। परिषद् की कार्यवाही का औसतन समय ६ घंटे था और कभी कभी ८ और १० बजे रात तक भी सदन की कार्यवाही शान्तिपूर्ण वातावरण में चलती रही है।

परिषद् में सभा की अपेक्षा यद्यपि अधिक शान्तवातावरण रहा है, किन्तु यदा-कदा जब कभी भी परिषद् की शान्ति भंग हुई है तो उसका उत्तरदायित्व मुख्य रूप से विरोधी दल पर था। विधान सभा में अशान्ति के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी विरोधी दल तो था ही, सत्तारूढ़ दल के सदस्य, पुलिस तथा दर्शक दीर्घा के व्यक्ति भी इसके लिए उत्तरदायी थे।

सदस्यों के उपर्युक्त व्यवहार तथा आचरण को देखकर आचार संहिता की आवश्यकता महसूस होना स्वाभाविक है, परन्तु संहिता बनाना एक कठिन कार्य है। कई बार संसदीय तथा राज्य के विधानमंडलीय स्तर पर संहिता के निर्माण का असफल प्रयास किया गया था। २० जुलाई १९५८ को उ०प्र० विधान परिषद् में भी एक सदस्य द्वारा आचार संहिता के निर्माण के लिए विचार प्रस्तुत किया गया था, परन्तु वह मूर्त रूप नहीं ले सका।

---

१. मौरिस-जौन्स- पार्लियामेन्ट इन इंडिया, पृ० १४३

भाषा :-

विधान परिषद् में शान्त वातावरण का कारण सदस्यों द्वारा संयमित भाषा का प्रयोग भी है । संयमित भाषा से तात्पर्य संसदीय तथा मर्यादित भाषा से है । विधान परिषद् के सदस्यों द्वारा सामान्यत: आपत्तिजनक भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है । परिषद् के प्राय: सदस्यों की भाषा हिन्दी थी किन्तु कुछ सदस्यों द्वारा अंग्रेजी में भी भाषण दिये गए हैं । कुछ सदस्यों ने अपने भाषण में उर्दू के शब्द तथा उर्दू शायरों[1] का भी प्रयोग किया है । उर्दू शायरों के यत्र-तत्र प्रयोग से परिषद् की कार्यवाही में सरसता आ गयी है । सदस्यों ने कभी-कभी हास्यपूर्ण तथा व्यंगात्मक भाषा[2] का भी प्रयोग किया है ।

विधान सभा और विधान परिषद् की तुलना में विधान सभा में उर्दू शायरों, लोकोक्ति तथा मुहावरों का अधिक प्रयोग हुआ है । सदस्यों द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों तथा मुहावरों में अधिकांश तो आपत्तिजनक थे, किन्तु कुछ को अध्यक्ष ने प्रसंगानुसार संसदीय मान लिया था । उदाहरणार्थ "सिखाया पूत दरबार नहीं जाता[3], "तेरी माँ ने खसम किया, बुरा किया, करके छोड़ दिया और भी बुरा किया,[4] आदि लोकोक्तियों के प्रयोग को अध्यक्ष ने आपत्तिजनक

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही खण्ड ४४, पृ० ६६ (राज्यपाल को उनके संबोधन के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव पर विवाद के समय वित्तमंत्री का भाषण)
२. उ०प्र०विधान परिषद की कार्यवाही,खंड ३२-३३,२६ अगस्त १९५३ , पृ० ७४
३. उ०प्र०विधान सभा की कार्यवाही, खंड १६७,पृ० ३०९(८ मार्च १९५६ को अनुसूचित और पिछड़ी हुई जातियों के सुधार और उत्थान पर तुलाराम के भाषण की आलोचना उपर्युक्त कथन द्वारा श्री त्रिलोकी सिंह,वि०सभा सदस्य द्वारा शब्द प्रयोग किया गया था ।
४. उ०प्र०वि०सभा,खंड १८७, पृ० ३०६

बताया । इसके अतिरिक्त अनेक अशोभनीय लोकोक्तियों का प्रयोग भी विधान सभा के सदस्यों ने किया है, किन्तु प्रसंगानुसार अध्यक्ष ने उनके प्रयोग पर आपत्ति प्रकट नहीं की । उदाहरणार्थ कहीं का ईंट कहीं का पत्थर भानमती ने कुनबा जोड़ा ,[१] मनुष्य बनाने चले लेकिन बनाये गए बन्दर[२] ,'जलेबियों की रखवाली कुतिया[३], के प्रयोग पर आपत्ति प्रकट की गई थी, किन्तु अध्यक्ष ने प्रसंगानुसार लोकोक्तियों के अर्थ के आधार पर उन्हें आपत्तिजनक नहीं माना ।

अनर्गल,[४] 'उतावलापन'[५], 'चापलूसी'[६], 'नान सेंस'[७], 'बदमाशी'[८] आदि शब्दों के प्रयोग भी विधान सभा की कार्यवाही में मिलते हैं । अध्यक्ष ने इन शब्दों को भी संसदीय मान लिया था ।

सभा के सदस्यों की भाषा परिषद् के सदस्यों की भाषा से अपेक्षाकृत आलोचनात्मक तथा अधिक व्यंगात्मक थी ।' सफेद झूठ'[९] 'रावण बोल रहा है,'[१०] रावण भी ऐसा करता था', [११]'गीदड़ और उनके सरदार'[१२]

---

१. उ०प्र०वि०सभा, खण्ड १७२,पृ० ६३६-३७(१० मई १९५९ उ०प्र०विक्रीकर(सं)वि०)
२. उ०प्र०वि०सभा खंड,१६८,पृ०२१८(१४ मई १९५९,अनुदान की मांग पर बहस के समय श्री शारदाभक्त सिंह द्वारा प्रयुक्त)
३. उ०प्र०वि०सभा,खं० २३७,पृ०७१९(१९६२ के उ०प्र०जोत चकबन्दी (सं०वि०परविचार के समय श्री लखी सिंह द्वारा)
४. उ०प्र०वि०सभा,खं० २४६,पृ० ७५७
५. उ०प्र०वि०सभा,खंड १९५,पृ० ५२ (२१ जुलाई १९५८)
६. उ०प्र०वि०सभा,खं० १६२, पृ० १३६ (१३ मार्च १९५६)
७. उ०प्र०वि०सभा,खंड १६२,२०दिसम्बर १९५५
८. उ०प्र०वि०सभा,खंड १९०, पृ० २०१ (२३ दिसम्बर १९५७)
९. उ०प्र०वि०सभा, खंड १९०, पृ० १२६ (२१ दिसम्बर १९५७ श्री रामस्वरूप वर्मा)
१०. उ०प्र०वि०सभा खं० १७०,पृ० २२० (श्रीराजनारायण) ४ अप्रैल १९५६
११. उ०प्र०वि०सभा,खंड १९०, पृ० ३०७ ,२४ दिसम्बर५७
१२. उ०प्र०वि०सभा,खंड २१५,पृ० ४८७,२३ अगस्त १९६०,गोविन्दसिंह

आदि व्यंगात्मक शब्दों का प्रयोग मुख्यमंत्री तथा सत्तारूढ़ दल के सदस्यों के लिए किया गया है। सत्तारूढ़ दल ने भी विरोधी दल के नेता के लिए "विद्रोही दल"[१] शब्द का प्रयोग किया है जो असंसदीय है।

सभा के सदस्यों द्वारा अनुचित कथन का प्रयोग भी हुआ है। विधान सभा के एक सदस्य ने सदन में राजस्वमंत्री के लिए "गर्दन पकड़कर बाहर फेंक दें"[२] शब्द का प्रयोग किया था। इसके अतिरिक्त सदस्यों के लिए "खुराफात"[३], गुण्डागर्दी"[४] तथा विधान परिषद् के लिए "चोर दरवाजा"[५] शब्द का प्रयोग किया था जो निश्चित रूप से अनुचित थे। विधान सभा के अध्यक्ष ने भी इन शब्दों को अनुचित बताया था।

उपर्युक्त उदाहरणों के अनुसार सभा में सदस्यों द्वारा अक्सर जिस प्रकार के शब्दों तथा भाषा का प्रयोग हुआ है, परिषद् में सदस्यों द्वारा उस प्रकार के शब्दों तथा भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ दो-चार रुपये का प्रलोभन देकर सरकार विधेयक पास करवाना चाहती है[६], वे विधायकों को झूठा प्रलोभन देकर अपने मनोनुकूल यह विधेयक पास कराकर कुछ खास आदमियों को ज्यादा मुनाफा दिलावें।"[७] "रुपये लेकर दूसरी ओर चले गये हैं :"[८] आदि भाषणा को अध्यक्ष ने अशोभनीय कहा।

---

१. उ०प्र०वि०सभा, खंड १५८, पृ० ४६३, २६ सितम्बर, १९५५ फतेहसिंह एम०एल०ए०,
२. उ०प्र०वि०स०खंड १३१, पृ० ५३५ (श्री राजनारायण) १५ मार्च १९५६
३. उ०प्र०वि०स०, खं० १६४, पृ० २२, ६ जनवरी १९५६
४. उ०प्र०वि०स०, खं० १६७, पृ० ५७२, ३ सितम्बर ५८
५. उ०प्र०वि०स० खं० १८१, पृ० २६१-२६२, रामसेवक यादव
६. उ०प्र०वि०सभा खंड १४०, १७ जनवरी १९५६, पृ० ५६५ श्री रामेश्वरलाल उ०प्र० रा०वि०मं० के अधिकारियों और सदस्यों, मंत्रियों और उपमंत्रियों एवं सभासचिवों के वेतन भत्ते और प्रकीर्ण उपबंधों) वि० १९५६
७. उ०प्र०वि०स०खं०, १०७, वही
८. उ०प्र०वि०स०खं० २०७, पृ० ४८-४९, ३१ अगस्त १९५८ के १९५९ के उ०प्र० अधिकतम जोत सीमा "विधेयक पर रामकृष्ण जैसवार, वि०सभा सदस्य द्वारा प्रयुक्त।

अत: निष्कर्ष यह कि उ०प्र० विधान परिषद् के सदस्यों की भाषा विधान सभा के सदस्यों की भाषा से अधिक संयमित, मर्यादित तथा अधिक संसदीय थी ।

वैतन, भत्ते एवं अन्य सुविधायें :-

सदस्यों के वेतन एवं भत्ते राज्य विधान मंडल के कानून द्वारा निर्धारित हैं ।[1] सदस्य द्वारा सदस्यता की शपथ लेने के दिन से अथवा उनके निर्वाचन एवं मनोनयन की सूचना का प्रकाशन गजट में हो जाने के दिन से, दोनों दिनों में जो पहले हो उसी दिन से सदस्य को वेतन मिलना प्रारम्भ हो जाता है ।[2]

प्रारम्भ में उ०प्र० विधान मंडल के प्रत्येक सदस्य का वेतन १५० रुपये प्रतिमाह एवं १० रु० दैनिक भत्ता था । अब सदस्या को ३००) रु० प्रतिमाह वेतन, १५० रुपये निर्वाचन क्षेत्र भत्ता (Constituency Allowance) तथा १५ रुपया दैनिक भत्ता मिलते हैं ।

यदि कोई सदस्य बिना अनुमति के लगातार सदन की ६ बैठकों में अनुपस्थित रहता है, तो १० रुपया प्रतिदिन उसके अनुपस्थित के दिनों के लिए वेतन से काट लिया जाता है, किन्तु यदि वह राज्य या केन्द्र सरकार के किसी कार्यवश अथवा उसकी व्यक्तिगत अस्वस्थता या परिवार के किसी सदस्य की बीमारी अथवा परिवार में कोई दुखद घटना या घर पर धार्मिक उत्सव के कारण अनुपस्थित है तो उसकी अनुपस्थिति के दिनों के वेतन नहीं कटते ।[3]

---

१. अनुच्छेद १९५

२. उत्तर प्रदेश लैजिस्लैटिव चैम्बर्स (मैम्बर्स इमोल्यूमेंट्स) एक्ट १९५२ (As amended upto 1964 and the rules made there upon).

३. वही, नियम १६, किन्तु उपर्युक्त अवस्थाओं में उसे अनुपस्थिति के कारणों को प्रमाणित करना पड़ता है ।

भत्ते के सम्बन्ध में अनेक नियम हैं। यद्यपि सदन की कार्यवाही में भाग लेने के लिए सदस्य को १५ रुपये दैनिक भत्ता मिलता है, परन्तु सदन की लगातार बैठक के बाद भी यदि सदस्य वहाँ उपस्थित है तो उस बैठक के दो दिन पहले और दो दिन बाद का भी दैनिक भत्ता उसे मिलता है।[१]

किसी समिति की लगातार बैठक के बाद भी यदि सदस्य बैठक के स्थान पर उपस्थित है तो बैठक के एक दिन पहले और एक दिन बाद का भत्ता भी उसे मिलता है।[२] सदन की लगातार बैठकों के बीच यदि कोई छुट्टी हो या सदन स्थगित हो अथवा प्रथम बैठक और अन्तिम बैठक के बीच चार दिनों या इससे कम का अन्तर हो तो इस छुट्टी अथवा स्थगन के दिनों का दैनिक भत्ता भी उसे मिलता है,[३] किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इन दिनों में यदि सदस्य बैठक के स्थान को छोड़ कर अन्यत्र चला जाता है तो दैनिक और भत्ता प्रासंगिक व्यय में जिसकी रकम कम होगी, वही उसे मिलता है।

उपर्युक्त अवस्थाओं के अतिरिक्त यदि किसी सदस्य के बैठक के स्थान में उपस्थित रहने के बावजूद यदि वह किसी पारिवारिक दुखद घटना अथवा धार्मिक उत्सव के कारण बैठक में भाग लेने से असमर्थ हो जाता है तो उस स्थिति में उसे चार दिनों से अधिक के लिए दैनिक भत्ता नहीं मिलता। यदि किसी अप्रत्याशित कारण से बैठक की निश्चित तिथि स्थगित हो गई है और सदस्य उस स्थान पर स्थगन के सम्बन्ध में समयानुकूल सूचना जानने के लिए रुका है, तो रुके हुए दिन के लिए भी वह दैनिक भत्ता पा सकता है।[४]

---

१. वही रूल ७(ए)
२. वही, रूल ७(१) (सी०)
३. वही नियम ७ (डी०)
४. वही, नियम ७ (१)

भत्ता के अतिरिक्त सदस्य को प्रदेश के अन्दर भ्रमण के लिए प्रथम श्रेणी का एक रेलवे पास मिलता है । प्रदेश से बाहर किसी सरकारी उद्देश्य से यात्रा के लिए दोनों ओर से प्रथम श्रेणी का रेलवे भाड़ा तथा प्रत्येक यात्रा के लिए प्रासंगिक व्यय मिलता है जो प्रथम श्रेणी के रेलवे भाड़े के समकक्ष होता है । यदि दो स्थानों के बीच रेल मार्ग नहीं है तो रोड यात्रा के लिए प्रथम श्रेणी के राजपत्रित अधिकारी को मिलनेवाला सड़कमील भत्ता मिलता है ।

आवास सम्बन्धी सुविधा :-

सदस्यों को नि:शुल्क आवास सम्बन्धी सुविधा प्राप्त है । प्रारम्भ में सरकार ने आवास की दो श्रेणियां बनायी थीं :-"ए" श्रेणी तथा "बी" श्रेणी । "बी" श्रेणी के आवास दिये जाने वाले सदस्यों के लिए पैंतीस रुपये प्रतिमाह आवास क्षतिपूर्ति भत्ता की व्यवस्था थी । जिन्हें कोई आवास नहीं दिया जाता था उन्हें पचहत्तर रुपये प्रतिमाह आवास भत्ता के रूप में मिलता था । आवास की यह श्रेणियां समाप्त कर दी गई हैं ।

चिकित्सा सम्बन्धी सुविधा :-

प्रत्येक सदस्य को सरकार की ओर से सार्वजनिक खर्च पर मुफ्त चिकित्सा की सुविधा भी प्राप्त है । राज्य द्वारा पोषित अस्पताल में सदस्यों को रोग निदान के लिए मुफ्त आवासीय सुविधा भी दी जाती है ।

अन्य सुविधाएं :-

उपर्युक्त सुविधाओं के अतिरिक्त सदस्यों के लिए विधान भवन पुस्तकालय है । प्रत्यके सदस्य पुस्तकालय से एक समय में दो पुस्तकें प्राप्त कर सकता है । इसके लिए परिषद् भवनसे सटा हुआ समाचार-पत्र वाचनालय भी है ; जहां परिषद् सदस्य समाचार-पत्र पढ़ सकते हैं ।

विशेषाधिकार :-

संसदीय या विधानमंडलीय विशेषाधिकार की विवेचना के पूर्व यह निर्दिष्ट कर देना अनिवार्य है कि विशेषाधिकार मौलिक अधिकार नहीं है। जहाँ मौलिक अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त प्रत्येक नागरिक का अधिकार है, विशेषाधिकार विशेष वर्ग, समुदाय जिसे राज्य या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त है अथवा विधायिनी या न्यायिक संस्थाओं (न्यायपालिका) को सुलभ है।[१]

संसदीय विशेषाधिकार सदस्य का व्यक्तिगत तथा सदन का सामूहिक अधिकार है जिसे व्यक्ति केवल संसद या विधान मंडल का सदस्य निर्वाचित (अथवा मनोनीत) होने के उपरान्त ही प्राप्त करता है।[२]

विशेषाधिकार कानून एवं सदन की मर्यादा की रक्षा के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर मौलिक अधिकार जीवन की रक्षा एवं विकास के लिए आवश्यक है।

संविधान द्वारा मौलिक अधिकार की रक्षा का अधिकार न्यायालय को है, परन्तु संसदीय या विधानमंडलीय विशेषाधिकार की रक्षा के लिए संविधान में कोई उपचार नहीं है। वस्तुत: इसकी रक्षा का दायित्व सदन पर ही है।

विशेषाधिकार के आधार :-

विशेषाधिकार के आधार कानून या परम्परा अथवा दोनों होते हैं। ब्रिटेन की संसद एवं उसके सदस्यों का अधिकांश विशेषाधिकार परम्परा पर

---

१. श्री के०आनन्द नम्बियार बनाम मुख्यसचिव,मद्रास सरकार और अन्ध्र सरकार के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने बताया कि संसदीय विशेषाधिकार (सही अर्थ में) संवैधानिक अधिकार नहीं है और स्पष्टत: मौलिक अधिकार भी नहीं है।(Writ Petition No.47 of 1967 .Supreme Court Notes case No.394-P392-393.

ही आधारित हैं। भारत में संसद, विधानमंडल, उनकी समितियों तथा सदस्यों का विशेषाधिकार संविधान के अनुच्छेद १०५,१९४, १२२ और २१२ पर आधारित हैं। अनुच्छेद १०५ और १२३ संसद के दोनों सदनों तथा उसके सदस्यों के विशेषाधिकार से सम्बन्धित हैं। अनुच्छेद १९४ और २१२ राज्य विधान मंडल एवं उसके सदस्यों के विशेषाधिकार का आधार हैं।

संविधान में स्पष्टत: दो ही विधानमंडलीय विशेषाधिकार का उल्लेख है —(१) भाषण की स्वतंत्रता का अधिकार और (२) सदस्य द्वारा सदन में कही गई बातें या सदन अथवा समिति में दिये गये मत के लिए सदन द्वारा अथवा सदन की सत्ता के अन्तर्गत प्रकाशित किसी प्रतिवेदन, कागज, मत या कार्यवाही के लिए किसी व्यक्ति अथवा सदस्य के विरुद्ध न्यायालय में कार्यवाही नहीं किये जाने का विशेषाधिकार।

अन्य विशेषाधिकार समय-समय पर राज्य विधान मंडल के कानून द्वारा परिभाषित होंगे और जब तक अपरिभाषित हैं, ब्रिटेन की कामन्स सभा और इसकी समितियों के विशेषाधिकार के समान ही, परिषद् तथा उसके सदस्यों के भी विशेषाधिकार होंगे।[१]

भाषण की स्वतंत्रता का अधिकार :—

सदन में सदस्य को भाषण की स्वतंत्रता है। इस विशेषाधिकार के अन्तर्गत सदन में बोले गये शब्दों एवं सरकार की आलोचना के लिए उनके विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कार्रवाई नहीं की जा सकती है। परन्तु इस महत्वपूर्ण विशेषाधिकार के द्वारा सदस्य सदन की मर्यादा के विरुद्ध अथवा व्यक्तिगत निन्दात्मक भाषण नहीं कर सकते। विशेषाधिकार को इसी दुरुपयोग से बचाने के

---

१. अनुच्छेद १९४ (३)

लिए सदन नियम द्वारा सदस्यों के भाषण की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाता है। इसी दृष्टिकोण से उ०प्र० विधान परिषद् के सदस्यों की भाषण की स्वतंत्रता के विशेषाधिकार पर भी निम्नलिखित प्रतिबंध है।

भाषण की अवधि :-

परिषद् के सदस्य को अमेरिकी सिनेट की तरह फिलिबस्टर का अधिकार नहीं है। परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत सभापति सदस्य के भाषण के लिए समय-सीमा नियत कर सकता है।[1] सभापति ने विरोधीदल के नेताओं, सदन के नेता एवं प्रस्तावक को छोड़कर शेष सदस्यों के भाषण के लिए १५ मिनट का समय सीमा रखा है। इस समय को सभापति स्वविवेक से घटा या बढ़ा भी सकता है।

समय-सीमा का निर्धारण परिषद् की कार्यसूची में दी हुई किसी मद के एक भाग को या पूरी मद को समय के अन्दर निबटाने के लिए ही किया जाता है।

वाद-विवाद पर प्रतिबन्ध :-

भाषण की स्वतंत्रता पर परिषद् की नियमावली द्वारा दूसरा प्रतिबन्ध वाद-विवाद पर है। नियम ४६[2] के अन्तर्गत प्रत्येक भाषण का विषय परिषद् के समक्ष विषय से नितान्त सुसंगत होना चाहिए। इसी नियम के अन्तर्गत ३० अक्टूबर १६५२ को एक सदस्य द्वारा आगरा युनिवर्सिटी ऐक्ट के सम्बन्ध में जो उस दिन के कार्यक्रम में नहीं था, जानकारी प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करने पर सभापति ने अनुमति नहीं दी।[3]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली(१६६१)नियम ५० (४)

२. वही, नियम ४६

३. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड२८,अंक४,अक्टूबर ३०,१६५२,पृ० ११७

भाषण की स्वतंत्रता पर दूसरा प्रतिबन्ध यह है कि कोई सदस्य भाषण देते समय किसी ऐसे विषय का हवाला नहीं दे सकता जो किसी ऐसे न्यायालय के विचाराधीन हो, जिसका क्षेत्राधिकार भारत के किसी क्षेत्र में हो।[1] १३ फरवरी १९५९ को एक सदस्य द्वारा भेजे गए कामरोको प्रस्ताव जो कानपुर जिले में आतिशबाजी तथा किसानों की गिरफ्तारी पर कानूनी कार्यवाही नहीं होने से सम्बन्धित था, सभापति ने निर्णय देते हुए बताया कि कानूनी कार्यवाही को रोकने या उस पर बहस करने का यहां पर (सदन में) कोई अधिकार नहीं है।[2]

व्यक्तिगत आरोप पर प्रतिबन्ध :-

भाषण की स्वतंत्रता पर परिषद् का तीसरा प्रतिबन्ध व्यक्तिगत आरोप पर है। भाषण देते समय कोई सदस्य न तो राज्यपाल के व्यक्तित्व के बारे में ही कुछ कह सकता है और न किसी सदस्य पर व्यक्तिगत आरोप ही कर सकता है। विधान परिषद् के एक सदस्य द्वारा यह कहने पर कि "हमारे राज्यपाल एक गौरवशाली विद्वान हैं", सभापति ने राज्यपाल के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कुछ भी कहने से मना किया।[3]

भाषण देते समय निम्नलिखित के आचरण पर आक्षेप करने पर प्रतिबन्ध है :-

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली (१९६१) नियम ४८ (२)(१)

२. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्यवाही, खण्ड ६३ , १३ फरवरी, १९५९, पृ० १४

३. उ०प्र० वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ३९, ११ फरवरी १९५५, पृ० १६

(१) भारत सरकार से अलग राष्ट्रपति के आचरण पर,

(२) राज्य सरकार से भिन्न किसी राज्यपाल या राजप्रमुख के आचरण पर तथा

(३) किसी न्यायाधीश या किसी ऐसे न्यायालय, जिसका क्षेत्राधिकार भारत के किसी क्षेत्र में हो, के न्यायिक कार्य के अन्तर्गत ।

उपर्युक्त प्रतिबन्धित विषयों के अतिरिक्त, परिषद् के कार्य संचालन में बाधा पहुंचाने वाले भाषण पर भी प्रतिबन्ध है । ६ अक्टूबर, १९५० को सभापति ने एक सदस्य द्वारा परिषद् के कार्य में बाधा डालने की प्रवृत्ति को अनुचित बताया था ।[१]

सदस्य परिषद् के निर्णय के विरुद्ध भी आक्षेप नहीं करसकता, उस दशा को छोड़कर जबकि उसके निरस्त किये जाने का प्रस्ताव उपस्थित हो ।[२] ६ नवम्बर १९५० को जब कि '१९४९ ई० का जमींदारी उन्मूलन और भूमि व्यवस्था' विधेयक पर खंड प्रति खंड विचार हो रहा था, एक सदस्या द्वारा यह प्रश्न किये जाने पर कि क्या किसी सदस्य को सदन के निर्णय को गलत कहने का अधिकार है, उपसभापति ने निर्णय देते हुए बताया कि कोई भी सदन का निर्णय गलत हो या सही, प्रत्येक बिना आक्षेप किये उसके निर्णय को मानने के लिए बाध्य हैं ।[३]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड १८, अंक १०, अक्टूबर ६, १९५०, पृ० ५४२-५४३

२. उ०प्र० विधान परिषद की प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली, नियम ४६, (२) (६)

३. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्यवाही खंड १६, अंक ११, नवम्बर ६, १९५०, पृ० ५४३

उपर्युक्त प्रतिबन्धों के अतिरिक्त सदस्य भाषण में न तो संसद या किसी राज्य विधान मंडल की कार्यवाहियों के संचालन के सम्बन्ध में अशिष्ट भाषा का ही प्रयोग कर सकता है[१] और न अभिद्रोहात्मक, राज्यद्रोहात्मक या मानहानिकारी शब्दों का ही प्रयोग कर सकता है।[२]

सदस्यों के विशेषाधिकार सदन के विशेषाधिकार हैं। अत: विशेषाधिकार का प्रयोग सदन का कार्य संचालन तथा उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए होता है। सदन के कार्य सम्पादन के लिए तथा उसकी मर्यादा की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि विशेषाधिकार का प्रयोग विनियमित हो। अत: विशेषाधिकार के विनियमित प्रयोग के लिए उस पर प्रतिबन्ध आवश्यक है। इसी उद्देश्य से उ०प्र० विधान परिषद् के सदस्यों के विशेषाधिकार के प्रयोग पर भी उपर्युक्त प्रतिबन्ध परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत वर्णित है।

कार्यवाही का प्रकाशन :-

सदस्य द्वारा सदन में जो कुछ भी कहा जाता है वह तो विशेषाधिकार के अन्तर्गत है लेकिन इसका प्रकाशन उस प्रकार विशेषाधिकार के अन्तर्गत नहीं है। इसी प्रकार सदन की समितियों का प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत करना विशेषाधिकार के अन्तर्गत है परन्तु बाह्य व्यक्तियों द्वारा इसका प्रकाशन उसी तरह विशेषाधिकार के अन्तर्गत नहीं है।

यद्यपि सदन की कार्यवाही के प्रकाशन का विशेषाधिकार सदन को है, तथापि व्यवहार में प्रेस ही कार्यवाही को प्रकाशित करती है और यदि यह कार्यवाही में प्रयुक्त किसी अपमानजनक शब्द का प्रकाशन करती है तो सम्बन्धित व्यक्ति अथवा दल मानहानि का प्रश्न उपस्थित कर सकता है। परन्तु कोई सदस्य

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली(अ) नियम ४६(२)३

२. वही, नियम ४६ (२)(८)

यदि सदन में दिये गए भाषण का प्रकाशन करवाता है तो इस प्रकार के प्रकाशन के लिए वह न्यायालय में कार्यवाही के विरुद्ध उन्मुक्ति का दावा नहीं कर सकता है ।

गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का विशेषाधिकार –

गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का विशेषाधिकार सदस्यों को उस समय प्राप्त होता है जब कि वे सदन के सदस्य के रूप में कार्य कर रहे होते हैं ।

निम्नलिखित दशाओं में सदस्यों को यह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होता :–

(१) दीवालियापन की कार्यवाही में,
(२) न्यायालय की अपराधिक मानहानि की कार्यवाही के लिए,
(३) कानूनी शक्ति के अन्तर्गत निवारक निरोध की दशा में

परन्तु अपवाद यह है कि सदन में निवारक निरोध का प्रयोग कहे गए शब्दों के लिए नहीं होता ।

(४) शारीरिक अपराध, या राजद्रोहात्मक कार्य या शान्ति भंग के लिए अथवा अच्छे व्यवहार के लिए जमानत देने की अस्वीकृति की दशा में ।

उपर्युक्त अपवादों के परिणामस्वरूप ही विधान परिषद् सदस्य सर्वश्री प्रभुनारायण सिंह[1] बनवारीलाल[2] जगदीशचन्द्र वर्मा[3] माधवप्रसाद त्रिपाठी[4]

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ४०, मई ८, १९५६
२. उ०प्र०वि०परिषद् , खंड ६०, सितम्बर १८,१९५८,
३. वही, खंड ६० सितम्बर २६, १९५८
४. वही, खंड ६०, सितम्बर २३, १९५८

ओंकार,[1] और श्रीमती शकुन्तला[2] की गिरफ्तारियां जो भारतीय दंड संहिता या किसी अपराधिक जुर्म के अन्तर्गत हुई थीं, विशेषाधिकार की अवहेलना के अन्तर्गत नहीं आते । अत: जब कोई कानून का उल्लंघन कर कानून की दृष्टि में कोई अपराध करते हों, तो बिना किसी वारंट के उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है जिसके लिए वे विशेषाधिकार के उल्लंघन का तर्क नहीं दे सकते ।[3]

यद्यपि आपराधिक कार्यवाही अथवा आरोपण के अन्तर्गत की गई गिरफ्तारियां विशेषाधिकार की अवहेलना के अन्तर्गत नहीं आतीं, परन्तु उन गिरफ्तारियों की सूचना प्राप्त करना सदन का विशेषाधिकार है अन्यथा यह विशेषाधिकार की अवहेलना समझा जा सकता है । अत: जब कभी परिषद् के सदस्यों की गिरफ्तारियां अपराधिक कानून के अन्तर्गत अथवा भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत हुई हैं, परिषद् को इसकी सूचना दे दी गई है ।

सदन की मानहानि :-

विशेषाधिकार की अवहेलना और सदन की मानहानि के बीच अन्तर है । श्री चन्द्रभाल सभापति,उ०प्र०विधान परिषद् के अनुसार किसी व्यक्ति या सत्ता द्वारा सदस्य अथवा सदन के किसी विशेषाधिकार, उन्मुक्ति पर आघात ही विशेषाधिकार का उल्लंघन है ।[4] विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न तब ~~उत्तर~~ तक उठाया नहीं जा सकता जब तक व्यक्ति या सदस्य के किसी कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव सदन पर न पड़ता हो । ३ अप्रैल १९६१ को विधान परिषद् सदस्य श्री शफीक अहमद खाँ तातारी ने इस आधार पर विशेषा-

---

१. उ०प्र० वि० परिषद्, खंड ६०,सितम्बर २४, १९५८

२. वही, खंड ६० सितम्बर २८,१९५८

३. बम्बई विधानमंडल की विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन, १९५३ (श्री पटेल की पुनर्गिरफ्तारी पर)

४. चन्द्रभाल - ए शोर्ट नोट ओन प्रिविलेजेज (लखनऊ सचिवालय), १९५८,पृ० ८

धिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाना चाहा कि उसके बारे में शिकायत चार दिनों तक अखबारों में प्रकाशित हुई है । सभापति ने व्यवस्था देते हुए बताया – "सदस्य यदि कोई काम दुनियां में करते हैं लेकिन जब उसका सदन से कोई सम्बन्ध न हो तब तक विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नहीं पैदा होता है । विशेषाधिकार का प्रश्न तो तब पैदा होता है जब कि उस घटना से किसी प्रकार का आरोप सदन के ऊपर लगाया जाय या ऐसा कोई काम किया गया हो जिससे सदन का अपमान होता हो ।"[1]

दूसरी ओर वैसे कार्य जिससे किसी विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता परन्तु सदन की मर्यादा पर आघात पहुंचता है, सदन की मानहानि के अन्तर्गत आते हैं (जैसे किसी कानूनी आदेश की अवज्ञा अथवा सदन के सदस्य या किसी कर्मचारी के सम्बन्ध में मानहानिकारी कथन का प्रकाशन) ।

सदन की मानहानि करने वाले कार्यों को चार भागों में बांटा जा सकता है :–

(१) सदन की कार्यवाही में हस्तक्षेप अथवा बाधा डालने के कार्य,
(२) सदन के आदेश की अवज्ञा के कार्य,
(३) सदन को गुमराह करने के प्रयास, और
(४) सदन की कार्यवाही पर आघात अथवा प्रहार करने वाले कार्य ।

सदन की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने वाले कार्य जो सदन की मर्यादा को ठेस पहुंचाता है, निम्नलिखित हैं :–

(१) किसी सदस्य, दर्शक या अपरिचित द्वारा बाधोत्पादक कार्य या भाषण ,
(२) सदन से किसी को छोड़ने की आज्ञा देने के बावजूद सदन या किसी समिति में बना रहना,

---

१. उ०प्र० वि० परिषद् की कार्यवाही, खंड ७७, अप्रैल ३, १९६१, पृ० २२७

(३) सदन से किसी व्यक्ति को नौकर द्वारा निकाले जाने पर बाधा पहुंचाना,

(४) सदन के भीतर या उसकी दीवार के चारों ओर हल्ला या नारा लगाकर किसी सदस्य को सदन या समिति की कार्यवाही में भाग लेने देने में हस्तक्षेप करना ,

(५) सदन की कार्यवाही में भाग लेने के लिए किसी सदस्य के सदन में भीतर जाने के समय भय दिखाना या बाधा पहुंचाना अथवा सदस्य द्वारा किसी विशेष पद्धति से मताधिकार के प्रयोग पर भय दिखाना या आर्थिक परिणामों का भय दिखाना,

(६) सदन की कार्यवाही में भाग लेते हुए किसी सदस्य को न्यायालय का सम्मन देने का प्रयास करना,सदन की किसी आज्ञा को किसी कर्मचारी द्वारा कार्यान्वियन करने के प्रयास पर बाधा पहुंचाना तथा सदन के किसी सदस्य या इसके किसी कर्मचारी को ऐसे कार्य करने के लिए बाध्य करना जिसे वह सदन के नियम के अन्तर्गत करने के लिए बाध्य नहीं है ।

सदन के आदेश की अवज्ञा से भी सदन की मानहानि होती है । सदनकी अवज्ञा सम्बन्धी कार्य निम्नलिखित हो सकते हैं :-

(१) सदन या इसकी किसी समति द्वारा प्रमाण देने के लिए बुलाये जाने पर अस्वीकार करना या किसी सदस्य के किसी समिति में कार्य करने के लिए सदन की इच्छा को अस्वीकार करना,

(२) सदन या इसकी किसी समिति के समक्ष प्रमाण देने से अस्वीकार करना,

(३) सदन या इसकी समिति के सामने किसी ऐसे कागजात को उपस्थित करने से अस्वीकार करना जिसकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती हो ,

(४) सदन की अनुमति के बिना किसी दूसरे सदन या उसकी समिति में उपस्थित होना, तथा

(५) सदन की अनुमति के बिना सदन की कार्यवाही को प्रकाशित करना अथवा किसी समिति के प्रतिवेदन को सदन में प्रस्तुत होने से पूर्व प्रकाशित करना ।

सदन या इसकी समितियों को गुमराह करने के प्रयास से भी सदन का अपमान समझा जाता है । जाली अथवा अवास्तविक कागजात प्रस्तुत करना, गलत प्रमाण देना, सदन या इसकी किसी समिति के समक्ष उपस्थित किसी कागजात को बदलने का प्रयास करना, सदस्य अथवा सदन के किसी कर्मचारी से घूस लेना अथवा उन्हें देना, तथा सदन या समिति की कार्यवाही अथवा सभापति और सदस्य पर आक्षेप करना सदन का अपमान करना है ।

सदन की बैठक चलते समय अनुशासनहीन आचरण करना, सभापति के चरित्र पर आक्षेप करना और उसके कार्य सम्पादन पर पक्षपात का आरोप लगाना सदन की कार्यवाही पर आघात करना है । अत: इस प्रकार के कार्य अथवा आचरण भी सदन के लिए अपमानजनक हैं ।

विशेषाधिकार की अवहेलना और सदन का अपमान पारिभाषिक अर्थों में दो प्रकार के अपराध हैं परन्तु दोनों प्रकार के अपराध के लिए परिषद् में दंड देने की प्रक्रिया एक समान है ।

विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न को उठाने एवं दण्ड देने की प्रक्रिया :-

सदन के समक्ष विशेषाधिकार की अवहेलना से तात्पर्य है सदन की बैठक चलते समय सदन की दृष्टि में विशेषाधिकार का उल्लंघन । इस प्रकार की अवहेलना के तुरंत बाद ही किसी सदस्य अथवा सभापति द्वारा परिषद् का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जाता है और उनकी निगाह में यदि आवश्यक

हो तो उसी समय सदन से उस पर विचार करने तथा दंड देने के लिए भी कहा जा सकता है।

सदन के समक्ष हुई घटना को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उपस्थित करने के लिए पूर्व सूचना की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे मामलों में उस विषय पर विचार होने तक के लिए सदन के कार्य को स्थगित कर दिया जाता है और सभापति तत्क्षण सदन के निर्णय को कार्यान्वित करता है।

सदन के समक्ष विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न को शायद ही किसी समिति को जांच के लिए सुपुर्द किया जाता है क्योंकि जिस परिस्थिति में विशेषाधिकार के उल्लंघन हुआ होता है, उस परिस्थिति को सदन सामूहिक रूप से जानती है। अत: सदन उस पर अपना निर्णय तत्क्षण दे सकती है।

सदन के सम्मुख हुए विशेषाधिकार की अवहेलना होने के तत्क्षण बाद ही यदि सदन का ध्यान उस ओर आकृष्ट नहीं किया जाता, तो बाद में विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रस्ताव को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं भी दी जा सकती है। १८ नवम्बर १९५८ को सदन में मंत्री द्वारा कहे गए शब्दों पर एक सदस्य ने दूसरे दिन १९ नवम्बर को विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाना चाहा; किन्तु सभापति ने उसकी अनुमति नहीं दी थी।[१]

ब्रिटेन की हाउस आफ कॉमन्स के समान ही उ०प्र० विधान परिषद् के सम्मुख कथित शब्दों से यदि विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न समझा जाता हो तो उसी समय आपत्तिजनक शब्द की ओर सभापति का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। १८ नवम्बर १९५८ की घटना को सदस्य ने १९ नवम्बर को विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न के रूप में उठाना चाहा था। इस पर

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड ६१, १९ नवम्बर १९५८, पृ० १५३

सभापति ने निर्णय देते हुए बताया कि सदन की दृष्टि में हुई विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न पर उसी समय बहस हो सकती है, अगले दिन नहीं ।[1]

इसके विपरीत, सदन के बाहर यदि किसी सदस्य या अपरिचित के कार्य से विशेषाधिकार का उल्लंघन समझा जाता हो, तो कोई सदस्य या सभापति या सचिव भी सभापति के माध्यम से परिषद् का ध्यान विशेषाधिकार की अवहेलना की ओर आकर्षित कर सकता है । इस प्रकार की सूचना पाने पर सभापति को यह निर्णय करना पड़ता है कि वह घटना विधान परिषद् के विशेषाधिकार से सम्बन्धित (प्राइमाफेसी केस) है या नहीं ।

सदन की अनुमति :-

यदि सभापति की सम्मति में घटना स्पष्ट रूप से विशेषाधिकार की अवहेलना का विषय है तो प्रश्नों के समाप्त होने के तुरंत बाद ही और अन्य कार्यक्रम जिसमें लोक महत्व के विषय पर चर्चा करने के लिए कार्य स्थगन के प्रस्ताव भी सम्मिलित हैं, के आरम्भ होने से पूर्व सभापति सदस्य द्वारा दिये गये विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना सदन को देते हैं ।[2] सभापति प्रस्ताव को पढ़ते हैं और सदस्यों से विषय को विशेषाधिकार समिति में सुपुर्द किये जाने के संबंध में राय लेते हैं । इस स्थिति में यदि विशेषाधिकार की अवहेलना का आरोप सदन के किसी सदस्य पर लगाया गया है और वह सदस्य सदन में उपस्थित है तो सम्बन्धित सदस्य को इसके स्पष्टीकरण के लिए अवसर प्रदान किया जाता है, अथवा उसे सदन के समक्ष माफी मांगने के लिए आदेश दिया जाता है । यदि सदन के समक्ष स्पष्टीकरण और क्षमायाचना मांगी जाती है और सदन उससे संतुष्ट हो जाता है तो विशेषाधिकार प्रश्न को उसी समय समाप्त कर दिया जाता है ।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही,खंड,६१,नवम्बर १६,१६५८

२. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली,नियम २७

३. यदि प्रस्ताव में समिति के सुपुर्द किये जाने की इच्छा प्रकट की गई हो तो स्थिति के सम्बन्ध में सभापति राय लेते हैं ।

विशेषाधिकार समिति को सुपुर्द किया जाना :-

विशेषाधिकार समिति में मामले को सुपुर्द करने के पूर्व किसी सदस्य द्वारा प्रस्ताव के सम्बन्ध में आपत्ति उठाये जाने पर प्रस्ताव के पक्ष में कम से कम दस सदस्यों का समर्थन प्राप्त होना आवश्यक है । इसके बाद ही सभापति विषय को विशेषाधिकार समिति में सुपुर्द करने की घोषणा कर सकता है ।[१] २८ अगस्त १९५८ को परिषद् के एक सदस्य द्वारा उपस्थित विशेषाधिकार प्रस्ताव के पक्ष में दस सदस्यों द्वारा समर्थन प्राप्त होने के उपरान्त ही सभापति ने उसे विशेषाधिकार समिति में भेजने की अनुमति दी थी । समिति को एक निश्चित समय के भीतर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए भी कहा जा सकता है ।

ब्रिटेन की कॉमन्स सभा की प्रथा के अनुसार ही परिषद् में भी विशेषाधिकार के प्रश्न को उपस्थित करने वाला सदस्य प्रस्ताव को सदन में उपस्थित करने के मन्तव्य की सूचना देने के साथ ही विशेषाधिकार की अवहेलना के लिए दोषारोपित सदस्य को भी इसकी सूचना देता है जिससे वह सदस्य प्रस्ताव प्रस्तुत करने के दिन सदन में उपस्थित रहकर अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण अथवा क्षमायाचना कर सके ।

मामले को विशेषाधिकार समिति के सुपुर्द किये जाने पर समिति मामले की जाँच के लिए किसी व्यक्ति को साक्ष्य के लिए बुलवा सकती है अथवा कोई भी आवश्यक कागज या अभिलेख मंगवा सकती है । समिति अभियुक्त सदस्य को बुलवा कर उससे वक्तव्य या प्रश्नोत्तर देने के लिए भी कह सकती है । समिति विशेषाधिकार की अवहेलना के लिए दण्ड के प्रकार को भी प्रस्तावित कर सकती है

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नियम २२६, पृ० ४७

समिति का प्रतिवेदन और सदन में उस पर वाद विवाद :-

समिति के प्रतिवेदन को सभापति अथवा समिति के किसी अधिकृत सदस्य द्वारा सदन में उपस्थित किया जाता है । प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के बाद कोई भी सदस्य समिति की सिफारिशों से सहमति के लिए प्रस्ताव कर सकता है । इस अवसर पर यदि कोई संशोधन प्रस्ताव हो तो वह सिर्फ समिति की सिफारिशों पर ही प्रस्तुत किया जा सकता है ।[१] तदुपरान्त सदन में उपस्थित अन्य प्रस्ताव के समान ही इस पर भी वाद-विवाद होता है और सदन के निर्णय को लेखाबद्ध किया जाता है ।

दण्ड :-

विशेषाधिकार की अवहेलना के लिए गैर सदस्यों को सामान्यत: तीन प्रकार के दण्ड दिये जाते हैं - कैद, जुर्माना, चेतावनी देना तथा डाँटना । कैद की सजा के लिए कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं है । सामान्यतया सदन के सत्र के अन्त में कैद की अवधि समाप्त समझी जाती है, यदि इसके पूर्व अपराधी की क्षमा प्रार्थना पर सदन ने स्वीकृति नहीं दी हो । सत्र के अन्त में हैवियस कॉरपस के अभिलेख पर भी कैदी को मुक्त किया जा सकता है ।

जुर्माने की सजा अपराधी को कैद की सजा के बदले अथवा कैद की सजा के साथ दी जाती है । इसके अतिरिक्त अपराधी भविष्य में कोई ऐसा अपराध नहीं करे अथवा सदाचरण करे इसके लिए उससे आर्थिक जमानत ली जा सकती है । उ०प्र० विधान परिषद् द्वारा इस अधिकार का प्रयोग अबतक नहीं हुआ है ।

छोटे अपराध के लिए सभापति द्वारा सदन की बैठक चलते समय

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली- नियम, २२६ (२) ।

सिर्फ अपराधी को चेतावनी दी जाती है अथवा डाँट दिया जाता है । इसके अतिरिक्त यदि कोई अपराध भारत के सामान्य कानून की दृष्टि में भी अपराध है तो सदन न्यायालय द्वारा उसकी सुनवाई के लिए निर्णय दे सकता है ।

सदस्यों के अपराध के लिए सजा :-

सदस्य एवं अपरिचित दोनों के लिए ही "चेतावनी" और "डाँट" की सजा काफी समझी जाती है । प्राय: अधिकांश मामले में अपराधी द्वारा उचित क्षमा याचना नहीं करने पर ही उन्हें "चेतावनी" दी जाती है अथवा "डाँटा" जाता है ।

सदस्यों को निलम्बित या सदन की सदस्यता से बहिष्कृत भी किया जा सकता है । परिषद् में सदस्यों को निलम्बित करने की सजा प्रचलित है । सभापति की व्यवस्था की अवज्ञा के कारण परिषद् सदस्य श्री शफीक अहमद खाँ तातारी को सदन की कार्यवाही से एक दिन के लिए[1] तथा श्री कन्हैयालाल परिषद् सदस्य को दो दिनों के लिए निलम्बित किया गया था[2]।

निलम्बन की अवधि के सम्बन्ध में परिषद् की कार्य प्रक्रिया नियमावली में कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं है । सामान्यतया निलम्बन अधिक से अधिक सत्र के अन्त तक के लिए हो सकता है । इस सम्बन्ध में ब्रिटेन की कॉमन्ससभा के स्थायी आदेश १२ के अनुसार सदन प्रथम मानहानि के लिए ५ दिनों के लिए तथा दूसरे मानहानि के लिए २० दिनों तक सदस्य को निलम्बित कर सकता है, परन्तु इसके बाद तीसरे अपराध के लिए तब तक सदस्यों का निलम्बन जारी समझा जाता है जब तक कि सदन निलम्बन को समाप्त करने

---

१. उ०प्र० विधान परिषद की कार्यवाही, खंड ७६, मार्च २३, १६६१

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही खंड ७३, सितम्बर २०, १६६०

के लिए प्रस्ताव पारित नहीं करता है।

निलम्बन के अतिरिक्त सदस्य के सदन की सदस्यता से बहिष्कृत भी किया जा सकता है। यद्यपि इस प्रकार की सजा के प्रयोग के सम्बन्ध में न तो संविधान में ही और न परिषद् की कार्य प्रक्रिया नियमावली में ही उल्लेख है किन्तु परिषद् संविधान के अनुच्छेद १९४ (३) के अन्तर्गत ब्रिटेन की कॉमन्स सभा द्वारा प्रयुक्त सजा का प्रयोग कर सकती है। ब्रिटेन की कॉमन्स सभा ने विद्रोह, धोखेबाजी, सार्वजनिक धन का दुरुपयोग, विश्वासघात तथा पद के दुरुपयोग आदि जैसे अपराध के लिए सदस्यों को बहिष्कृत किया है।[१] भारत में अन्त:कालीन संसद के सदस्य श्री मुदगल को संसद की मर्यादा को भंग करने के आरोप में बहिष्कृत किया गया था।

उ०प्र० विधान परिषद् द्वारा अब तक किसी भी सदस्य को बहिष्कृत नहीं किया गया है।

यद्यपि सदन बहिष्कार के द्वारा सदस्य की सदस्य की सदस्यता समाप्त कर सकता है किन्तु बहिष्कृत सदस्य पुन: उसी रिक्त स्थान पर निर्वाचित या मनोनीत होकर सदन की सदस्यता प्राप्त कर सकता है और पुनर्निर्वाचित होने पर पूर्व बहिष्कृत के दंड उस पर लागू नहीं होते।

विधान परिषद् में उपस्थित किये गए विशेषाधिकार के प्रश्न :-

दस वर्ष की अवधि में परिषद् में सदस्यों द्वारा अनेक बार विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न उपस्थित किये गए, परन्तु इनमें से अधिकांश को नियमानुसार न होने के कारण अथवा अन्य कारणों से प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी गई।

---

१. उ०प्र०वि० परिषद् की कार्यवाही, खंड ६४, मार्च १२, १९५९

सरकार द्वारा गलत उत्तर दिये जाने पर उसके विरुद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न उठाये नहीं जा सकते । १२ मार्च १९५९ को एक सदस्य ने सरकार द्वारा गलत उत्तर दिये जाने पर विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहा किन्तु सभापति ने उसे प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी ।[१]

पूर्ण प्रमाण के अभाव में भी विशेषाधिकार के प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता । एक सदस्य ने विधान परिषद् के सम्बन्ध में अपमानजनक बातें कहे जाने पर उसे विशेषाधिकार का प्रश्न बनाना चाहा जिसे सभापति ने पूर्ण प्रमाण के अभाव में प्रश्न को उठाने की अनुमति नहीं दी ।

वैसे विशेषाधिकार के प्रस्ताव को जिसके कारणों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई संदिग्धता अथवा अनिश्चितता हो, प्रारंभिक प्रतिवेदन के लिए भेजा जा सकता है । १७ सितम्बर १९६० को परिषद् के नियम २२३ के अन्तर्गत एक विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया था । प्रस्ताव के द्वारा हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, दिल्ली दैनिक समाचारपत्र तथा सर्वश्री डा० ए०जे० फरीदी, कन्हैयालाल गुप्त, महाराज सिंह भारती तथा जयबहादुर सिंह (सभी विधान परिषद् सदस्य) के विरुद्ध यह आरोप लगाया गया कि उन लोगों ने प्रकाशन के द्वारा सभापति तथा सदन का अपमान किया है । सभापति ने इस प्रश्न पर निर्णय देते हुए बताया ," चाहे जितनी बातें अखबार में छपें उसकी जिम्मेदारी किसी सदन के मेम्बर पर तब तक लादी नहीं जा सकती जब तक पहले यह पूछ न लिया जाय कि उस सदस्य का उसमें कोई हाथ है या नहीं, इसलिए इसे प्रारम्भिक रिपोर्ट के लिए भेज दिया जाय ।"[२]

सितम्बर १९५९ को परिषद् में उठाया गया विशेषाधिकार का एक प्रश्न उल्लेखनीय है । संसदीय पद्धति के अनुसार एक सदन के सम्बन्ध में

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही , खंड ६४,मार्च १२, १९५९

२. उ०प्र०विधान परिषद की कार्यवाही, खं० ६७, १९ सितम्बर १९६०,पृ०६०४

चर्चा दूसरे सदन में वर्जित समझी जाती है। कोई भी सदस्य दूसरे सदन के विरुद्ध भाषण देकर उसका अपमान नहीं कर सकता। दूसरे सदन के विरुद्ध भाषण से विशेषाधिकार की अवहेलना समझी जा सकती है, परन्तु जब एक सदन के उद्धरण की आवश्यकता दूसरे सदन में हो तो मर्यादित ढंग से ही उसके बारे में उद्धरण दिया जा सकता है। वस्तुत: किसी भी सदन में निश्चित रूप से दूसरे सदन के विरुद्ध विचार प्रकट नहीं किये जा सकते। इस आधार पर ८ अक्टूबर १९५६ को विधान सभा में एक सदस्य द्वारा विधान परिषद् की अनुपयोगिता के सम्बन्ध में कहे गये कथन के लिए परिषद् में उठाये गये विशेषाधिकार की अवहेलना[1] के प्रश्न को उचित ठहराया जा सकता था, किन्तु सभापति की दृष्टि में कथन सामान्य रूप से द्वितीय सदन की उपयोगिता के बारे में थी न कि इस प्रदेश की परिषद् के सम्बन्ध में। द्वितीयत: सभापति के अनुसार यदि प्रथम सदन में द्वितीय सदन की सदस्य संख्या की वृद्धि सम्बन्धी प्रस्ताव पर बहस हो रही हो तो वैसी स्थिति में सदस्य सामान्य रूप से द्वितीय सदन की उपयोगिता पर भाषण दे सकता है।

वस्तुत: संविधान का अनुच्छेद १६९ के अनुसार विधान सभा प्रस्ताव द्वारा विधान परिषद् की स्थापना अथवा उसके उन्मूलन के लिए प्रस्ताव पारित कर सकती है। इन दोनों परिस्थितियों में सदस्य परिषद् की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता पर बोल सकते हैं जिसके लिए विशेषाधिकार की अवहेलना अथवा सदन की मानहानि नहीं मानी जानी चाहिए परन्तु इन परिस्थितियों में भी विवाद मर्यादित ढंग से ही होना चाहिए। यदि वाद-विवाद मर्यादित ढंग से नहीं होता तो विशेषाधिकार की अवहेलना के स्थान पर उसे "सौजन्यता की अवहेलना कहा जा सकता है।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद की कार्यवाही, खंड ५१, दिसम्बर २०, १९५६

११ सितम्बर १९५८ को उठाये गये विशेषाधिकार का आधार परिषद् के एक सदस्य को विधान सभा में प्रवेश करने से रोकने के सम्बन्ध में था । सामान्यतया एक सदन के सदस्य को दूसरे सदन की कार्यवाही देखने का अधिकार है । इस आधार पर उपर्युक्त घटना को सदस्य ने सदन की मानहानि का आरोप लगाकर विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाया । सभापति ने घटना पर दुःख प्रकट करते हुए विधान सभा के अध्यक्ष तथा मार्शल दोनों की ओर से क्षमा मांगी । सभापति ने सदस्य को यह भी आश्वासन दिया कि विधान सभा के अध्यक्ष से ~~विधान सभा के अध्यक्ष से~~ विधान सभा में परिषद् के सदस्यों को बैठने के लिए अलग दीर्घा बनाने के सम्बन्ध में वह अपनी इच्छा प्रकट करेगा । साथ ही परिषद् में भी सभा के सदस्यों के बैठने के लिए सभापति ने अलगसे व्यवस्था किये जाने के सम्बन्ध में आश्वासन दिया ।

विधान परिषद् में उठाये गये विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रस्ताव में श्री प्रभुनारायण सिंह का मामला महत्वपूर्ण है ।[१] यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रत्येक सदस्य को गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का अधिकार है, परन्तु अपराधिक प्रक्रिया के अन्तर्गत की गई गिरफ्तारी के लिए विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता ।

प्रश्न यह है कि यदि कोई सदस्य अनावश्यक निरोध के कारण सदन की कार्यवाही में भाग लेने में असमर्थ है, तो क्या उस निरोध के लिए विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठाया जा सकता है या नहीं । श्री प्रभुनारायण सिंह, विधान परिषद् सदस्य की गिरफ्तारी (भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत) २३ अप्रैल १९५९ को हुई थी । संविधान के अनुच्छेद २२[२] के अनुसार श्री सिंह को २४ घंटे के भीतर निकटतम मेजिस्ट्रेट के समक्ष

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खं० ४७, ६ मई १९५९, पृ० २६१

२. अनुच्छेद २२ (२)- " Every person who is arrested and detained in custody shall be produced before the nearest Magistrate within a period of twenty four hours of such arrest....."

उपस्थित किया जाना चाहिए था । लेकिन ऐसा न होकर उन्हें ३१ अप्रैल १९५६ को मैजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया गया । इसी बीच विधान परिषद् की बैठक चल रही थी ।[१] हाजत में रहने के कारण श्री सिंह परिषद् की उन बैठकों में भाग नहीं ले सके थे । कुंवर गुरुनारायण, विधान परिषद् सदस्य ने अनावश्यक निरोध द्वारा सदस्य को सदन की कार्यवाही से वंचित रखने के कार्य को विशेषाधिकार की अवहेलना समझकर १० मई १९५६ को विधान परिषद् में इसे विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न के रूप में उपस्थित किया[२]। सरकार की ओर से यह उत्तर दिया गया कि यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि इस अनावश्यक विलम्ब के कारण संविधान के अनुच्छेद २२ का उल्लंघन हुआ है, तो प्रश्न यह उठता है कि विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न उठता है या नहीं । इस सम्बन्ध में दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है । एक तो यह कि इसके लिए परिषद् ने कोई नियमबना रक्खा है या नहीं, जिसके अनुसार विशेषाधिकार का प्रश्न उठ सकता हो । यदि इस सम्बन्ध में कोई कानून अथवा नियम नहीं है तो जो ब्रिटेन की संसद की परम्परा तथा उसके नियम हैं, वही परम्परा तथा नियम विधान परिषद् के लिए भी लागू होंगे । चूंकि इस प्रकार की घटना के सम्बन्ध में ब्रिटेन की संसद की कोई परम्परा अथवा नियम नहीं है, अत: विधान परिषद् में भी उपर्युक्त प्रकार की घटना से विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नहीं उठता ।

निष्कर्ष यह कि सदस्य को हाजत में अनावश्यक विलम्ब होने के कारण उस सदस्य का सदन की कार्यवाही से भाग लेने से वंचित होने पर विशेषाधिकार की अवहेलना नहीं मानी जा सकती ।

---

१. २४ अप्रैल १९५६ से विधान परिषद् की बैठक चल रही थी ।
२. उ०प्र०वि० परिषद् की कार्यवाही, खंड ४७, १० मई १९५६

वस्तुत: यदि कोई मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया गया है तो उस विषय पर सदन में अगले दिन कुछ कहा नहीं जा सकता । यदि कोई सदस्य इसके लिए राज्यपाल से सिफारिश करे तो उसे संसदीय अपराध कहा जा सकता है । १६ सितम्बर १६६० को श्री ए०जे० फरीदी ने एक विशेषाधिकार के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए सभापति को एक लिखित प्रार्थना पत्र दिया । लिखित प्रार्थना पत्र की प्रतिलिपि राज्यपाल एवं अन्य २३ सदस्यों को जिन्होंने विशेषाधिकार प्रस्ताव का समर्थन किया था, को भी भेजा गया । प्रार्थनापत्र की प्रतिलिपियों में यह भी निर्दिष्ट किया गया था कि सभापति ने प्रार्थी को सदन में विशेषाधिकार प्रस्ताव पर बोलने के लिए अवसर नहीं देकर गलत कार्य किया है, जबकि प्रार्थना पत्र सभापति के विचाराधीन था । सभापति ने सदस्य को इस कार्य को संसदीय अपराध कहा । सभापति ने निर्णय देते हुए बताया कि सदन के निर्णय को प्रभावित करने के लिए बाह्य किसी भी सत्ता का प्रयोग अथवा उद्धरण संसदीय अपराध है । अत: सभापति ने उपर्युक्त आवेदन पर किसी भी प्रकार के विचार करने से अस्वीकृति प्रदान की ।

निष्कर्ष यह कि विशेषाधिकार सदन, उसकी समितियों तथा उसके सदस्यों के महत्वपूर्ण अधिकार हैं जो उन्हें संविधान द्वारा तथा परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं । इन सदस्यों को विशेषाधिकार विधायक के रूप में कार्य करते समय ही प्राप्त रहता है, व्यक्तिगत रूप में अथवा दलीय कार्यक्रम को करते समय उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होता । अत: अपराधिक प्रक्रिया अथवा भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत की गई गिरफ्तारियों के परिणामस्वरूप अथवा सरकार द्वारा किसी प्रश्न के गलत उत्तर दिये जाने के कारण विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता । पूर्ण प्रमाण के अभाव में भी विशेषाधिकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता ।

१९५२ से १९६२ के बीच विधान परिषद् में उपस्थित किये गये विशेषाधिकार के प्रश्न और उसपर सभापति की व्यवस्था

प्रस्तावक	विषय जिसकेलिए विशेषाधिकारका प्रश्नउठाया गया	जिनकेविरुद्धविशेषाधिकार उठाया गया	प्रस्ताव पर अध्यक्ष की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति	तिथि तथा वर्ष जिस दिन प्रश्न उठायागया	विधान परिषद् की कार्यवाही का खंड तथा पृष्ठ
१. श्री कुंवर गुरुनारायण	श्री प्रभुनारायणसिंह विoपरिoकी गिरफ्तारी के संबंधमें विशेषाधिकार का प्रश्न	सरकारी अधिकारी के विरुद्ध	अस्वी.	६ मई१९५६	४७, पृ० २६१
२. श्रीकुंवर गुरुनारायणसिंह	श्रीमदनमोहन उपाध्याय विoसoसदस्य द्वारा विधान सभा में ८ अक्टूबर १९५६ को विधान परिo के संबंध में कहे गए शब्दों पर	श्रीमदनमोहन उपाध्याय ,विधान सभा सदस्य	प्राइमाफैसीकेश नहीं होने के कारण अस्वीकृत	२०दिसम्बर १९५६	खंड५१, पृ० १८१
३. श्रीकृष्णा अवस्थी	विधान परिषद् के एक सदस्य को विधान सभा में प्रवेश करने से मना किये जाने के कारण सदस्यों के विशेषाधिकार की अवहेलना	अध्यक्ष, विधान सभा के विरुद्ध	विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नहीं होने के कारण अस्वीकृत	११सितम्बर १९५८	खंड ५६, पृ. ५६१

४. श्रीबनवारी लाल	श्रीचरणसिंह के इस कथन पर कि तुम गाली दोगे, तो हम दस गाली देंगे और फिर लाठी चलेगी	मंत्री श्रीचरणसिंह के विरुद्ध	नियम २२३ के अन्तर्गत आपत्ति किये गए शब्द को विशेषाधिकार की सूचना देते समय नहीं लिखा गया था, साथ ही इस प्रकार के कथन के विरुद्ध तत्काल विशेषाधिकार का प्रश्न आना चाहिए था जो नहीं उठाया गया' अन्ततः अस्वीकृत किया गया।	१९ नवम्बर १९५८	खंड ६१, पृ०१५३
५. अज्ञात	प्रश्नों के गलत उत्तर देने के संबंध में विशेषाधिकार का प्रश्न	मंत्री के विरुद्ध	अस्वीकृत	१२ मार्च१९५९	खंड ६४ पृ. ६४४
६. श्रीहृदयनारायण सिंह	डा०फरीदी आश्वासन समिति के सदस्य होनेके बावजूद यह गोपनीयता भंग किया कि आश्वासनसमिति ने प्रतिवेदन दे दियाहै	डा०ए०जे० फरीदी सदस्य विधान परिषद् के विरुद्ध	किसी सदस्य का यह कहना कि अमुक समिति ने प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया है यह कोई गोपनीयता नहीं है। अस्वीकृत	१० फरवरी १९६०	खं० ६६, पृ० ५९७
७. श्रीहृदयनारायण सिंह	साप्ताहिक पत्र 'पर्वतीय' में श्री राजेश्वर सिंह एम०एल०सी०के विरुद्ध लगायेगए आरोपों के संबंध में विशेषा०काप्रश्न	साप्ताहिक पत्र 'पर्वतीय' के विरुद्ध	स्वीकृत	२८ अगस्त १९५९	खंड ६७ पृ. ५४४

८. हृदयनारायण सिंह	विशेषाधिकार प्रश्न का उल्लंघन	डा०ए०जे० फरीदीके विरुद्ध		१० फरवरी १९५९	खंड ६९
९. डा०ए०जे० फरीदी	हिन्दुस्तान स्टैंडर्डमें प्रकाशित सदन तथा सभापति के अपमान के प्रश्न को विशेषाधिकार समिति को सुपुर्द किये जाने के संबंध में डा०ए०जे० फरीदी का पत्र		समितिके पास प्रिलिमरी रिपोर्ट के लिए भेजा गया। सभापति का निर्णय। रिपोर्ट के बाद। स्वीकृत	१९ सितम्बर १९६०	खं० ७३ पृ० ६०४
१०. श्रीशफीक अहमद खाँ तातारी	श्रीचन्द्रभानुगुप्त मुख्यमंत्री का विधान परिषद् में नाम निर्दिष्ट किये जाने के कारण विशेषाधिकार का प्रश्न	श्री चन्द्रभानु गुप्त मुख्यमंत्री के विरुद्ध	अस्वीकृत	६ फरवरी १९६१	खंड ७३
११. अज्ञात	श्री श्यामनारायण वि०परिषद् सदस्य द्वारा सदन के दो सदस्यों के लिए कही गयी बातों से विशेषाधिकार की अवहेलना	डा० श्यामनारायण वि०परि० सदस्य के विरुद्ध	अस्वीकृत	२४ अप्रैल १९६१	खंड ७७ पृ० ६५३
१२. श्रीशफीक अहमद खाँ तातारी	शफीक अहमद खाँ तातारी के विरुद्ध एक अखबार में चार दिनों तक निन्दा प्रकाशित हुई है।	एक समाचारपत्र के विरुद्ध (समाचार पत्र का नाम अज्ञात)	अस्वीकृत	३ अप्रैल १९६१	खंड ७७, पृ० २७८

विधान परिषद् की कार्य संचालन एवं विधायिनी प्रक्रिया

उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के कार्य संचालन प्रक्रिया की व्याख्या भिन्न-भिन्न अध्यायों में यत्र-तत्र की गई है। यहां केवल उन प्रक्रियाओं का उल्लेख किया गया है, जिसकी व्याख्या सामान्य रूप से अन्यत्र नहीं हुई है। परिषद् की सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त विधायिनी प्रक्रिया पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया है।

परिषद् की कार्यवाही प्रारम्भ होने के पूर्व सचिव, माननीय सभापति के सदन में आने की पूर्व सूचना देते हैं। सभापति के सदन में प्रवेश करने पर सदस्यगण खड़े होकर सभापति का अभिवादन करते हैं और सभापति भी सर झुकाकर सदन का अभिवादन करते हैं। तदुपरान्त सभापति के स्थान ग्रहण करने पर सदस्यगण भी अपना स्थान ग्रहण करते हैं।

सभापति एवं सदस्यों द्वारा स्थान ग्रहण करने के उपरान्त सदन में यदि कोई नव निर्वाचित सदस्य आये हों, तो सभापति उनका स्वागत करते हैं तथा उन्हें शपथ या प्रतिज्ञान कराते हैं।

परिषद् की बैठक :-

सदस्यों के अतिरिक्त परिषद् की बैठक में मंत्री भी भाग लेते हैं, परन्तु वे मंत्री जो परिषद् के सदस्य नहीं हैं मताधिकार का प्रयोग नहीं करते। १९५८ से राज्यमंत्री तथा उपमंत्री भी परिषद् की बैठक में भाग लेने लगे हैं।

परिषद् की बैठक सामान्यतया ११ बजे दिन में प्रारम्भ होती है और ५ बजे शाम को समाप्त हो जाती है। विधान सभा की बैठक का समय भी इसी प्रकार निर्धारित है। परन्तु विशेष परिस्थिति में सदन संकल्प द्वारा सभा

की बैठक के समय को बढ़ा सकता है। विधान सभा की नियमावली के अन्तर्गत अध्यक्ष को भी १५ मिनट के समय बढ़ाने का अधिकार दिया गया है।[१] विधान परिषद् की नियमावली द्वारा परिषद् के सभापति को इस प्रकार का अधिकार नहीं दिया गया है।

विधान परिषद् का सभापति एवं सदन के नेता ५ बजे शाम के बाद सदन की कार्यवाही को जारी रखना पसन्द नहीं करते थे। इसका कारण यह था कि सदन की कार्यवाही समाप्त होने के बाद लगभग दो घंटे तक परिषद् के कर्मचारियों को रुकना पड़ता था। ५ बजे के बाद परिषद् की कार्यवाही जारी रखने से कर्मचारी को और विलम्ब तक रुकना पड़ता जिसे सभापति उचित नहीं समझते थे। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि परिषद् सभा की अपेक्षा कम सक्रिय थी। अथवा परिषद् में सभा से कम कार्य था।

परिषद् की कुछ बैठकें विशेष परिस्थिति में ११ बजे के पूर्व तथा शाम को ५ बजे के बाद भी हुई हैं, परन्तु इस प्रकार के उदाहरण अपवादस्वरूप हैं[२]।

बैठक के मध्य में अवकाश की भी परम्परा है। सामान्यतया यह अवकाश लगभग एक और दो बजे के बीच लगभग १ घंटे के लिए होता है परन्तु कभी कभी सदन तथा सभापति की इच्छा से दो और तीन बजे के बीच भी अवकाश दिया गया है। विधान सभा में भी अवकाश की इसी प्रकार परम्परा प्रचलित है।

परिषद् की बैठक रविवार तथा सार्वजनिक छुट्टियों (जिनमें स्थगन भी निहित है) को छोड़कर सत्र के शेष दिनों में होती है। विधान सभा में रविवार तथा सार्वजनिक छुट्टियों के अतिरिक्त शनिवार को भी बैठक नहीं होती रही है।[३] विधान सभा की इस परम्परा का अनुसरण विधान परिषद् ने भी किया है। फलतः १९५४ के बाद परिषद् की बैठक शनिवार को होना बन्द हो

---

१. विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमावली, नियम १५, पृ० ८

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही खंड ४०, २८ मार्च १९५५, परिषद् की कार्यवाही ७ बजे सुबह से ८ बजे रात तक, २३ मई १९५६ को सदन की बैठक ८ बजे सुबह से ६ बजे रात तक, १३ मई १९५६ को १० बजे सुबह से १० बजे रात तक चलती रही।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

गया , किन्तु कभी-कभी सदन की इच्छा से शनिवार को भी परिषद् की बैठक हुई है ।

प्रश्नोत्तर :--संसदीय प्रथा के अनुसार ही परिषद् की बैठक के पहले घंटे में प्रश्नोत्तर की प्रणाली है । प्रश्न या तो सरकार को या किसी भी मंत्री को सम्बोधित किये जा सकते हैं । यदि कोई प्रश्न किसी ऐसे विधेयक, प्रस्ताव या सदन की कार्यवाही से संबंधित है, जिसके लिए कोई असरकारी सदस्य जिम्मेदार है तो ऐसा प्रश्न उस असरकारी सदस्य से भी पूछा जा सकता है ।

प्रश्न केवल ऐसे ही विषय पर पूछे जाते हैं जिसका उत्तरदायित्व मुख्यत: राज्य सरकार पर है किन्तु सरकार की नीति के बारे में किसी मंत्री से उसकी राय मांगे बिना एक सीमा के भीतर सरकार के इरादे के विषय में भी प्रश्न किये जा सकते हैं ।

प्रश्नों के प्रकार :--परिषद् की नियमावली में प्रश्नों का वर्गीकरण नहीं किया गया है , यद्यपि परिषद् में पूछे गये प्रश्नों के तीन प्रकार हैं --अल्पसूचित, तारांकित और अतारांकित । सभा की कार्य प्रक्रिया नियमावली में प्रश्नों के इन भेदों का उल्लेख कर दिया गया है ।[१]

अल्प सूचित प्रश्न का तात्पर्य ऐसे प्रश्न से है जो अविलम्बनीय लोक महत्त्व के विषय से सम्बन्धित हो । इसका विभेद दो तारांक लगाकर किया

पिछले पृष्ठ का शेष :--

१. सदन की इच्छा से सभा की बैठक विशेष में प्रश्नोत्तर के घंटे को स्थगित भी कर सकती है और उस घंटे में (प्रश्नोत्तर के घंटे में) सदन की अन्य कार्यवाही की जा सकती है ।

---

१. सभा की नियमावली, नियम २७, पृ० १३

जाता है । दिये हुए उत्तर से उत्पन्न अनुपूरक प्रश्न उसके बारे में अध्यक्ष की अनुमति से किये जाते हैं ।[१]

विधान सभा का जब कोई सदस्य अल्प सूचित प्रश्न पूछना चाहे तो वह ऐसे प्रश्न की पूरे तीन दिन की सूचना लिखित रूप में सचिव को देते हैं । सचिव साधारणतया प्रश्न की अल्पसूचित प्रश्न के रूप में ग्राह्यता पर उसकी प्राप्ति से २४ घंटे के भीतर अध्यक्ष की आज्ञा प्राप्त कर लेते हैं ।[२] अध्यक्ष की आज्ञा प्राप्त हो जाने के उपरान्त प्रश्न की एक प्रतिलिपि सम्बन्धित मंत्री को इस निवेदन के साथ भेज दी जाती है कि वह सचिव को सूचित करे कि क्या वह प्रश्न का उत्तर अल्पसूचित प्रश्न के रूप में देने की स्थिति में है । यदि मंत्री सहमत हों तो वह तत्काल या तदुपरान्त इतने शीघ्र कार्यसूची में रख दिये जाते हैं जैसा अध्यक्ष निर्देश देते हैं । यदि संबद्ध मंत्री अल्पसूचना पर उसका उत्तर देने की स्थिति में नहीं है और अध्यक्ष की यह राय है कि वह पर्याप्त लोक महत्व का है तो वे निर्देश दे सकते हैं कि उसको उस दिन की प्रश्न सूची में प्रथम प्रश्न के रूप में उत्तर के लिए रख दिया जाये, जिस दिन नियम के अनुसार तारांकित प्रश्न के रूप में उत्तर के लिए उसकी बारी है ।

यद्यपि उ०प्र० विधान परिषद् की नियमावली में अल्पसूचित प्रश्न की प्रक्रिया को इतने विस्तृत ढंग से उल्लेख नहीं किया गया है, तथापि परिषद् द्वारा भी सभा की प्रक्रिया के समान ही अल्पसूचित प्रश्न की ग्राह्यता स्वीकार किया जाता है तथा मंत्री द्वारा उसका उत्तर दिया जाता है ।

प्रश्नों का दूसरा प्रकार तारांकित है । तारांकित प्रश्नों का उत्तर सदन में मौखिक दिया जाता है और अतारांकित प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में सदस्यों की मेज पर रख दिया जाता है । तारांकित प्रश्न को एक तारांक

---

१. वि०सभा नियमावली, नियम २७ (१)

२. वि० नियम २८ (१), पृ० १४

लगाकर विभेद किया जाता है । अत: सदस्यों को केवल उन्हीं प्रश्नों को तारांकित करना चाहिए जिनके बारे में वे पूरक प्रश्नों द्वारा और अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हों ।[१]

पूरक प्रश्न मंत्रियों द्वारा दिये गये उत्तर को स्पष्ट करने के लिए ही पूछे जाते हैं । जब सदस्य किसी विषय में केवल आंकड़े और विस्तृत विवरण जानना चाहते हों तो उस दिशा में उनको अपने प्रश्न तारांकित नहीं करना चाहिये, किन्तु सभापति यदि उचित समझते हों तो किसी तारांकित प्रश्न को अतारांकित कर सकते हैं ।

विधान परिषद् में प्रश्न पूछने के लिए सचिव को लिखित रूप में १५ दिनों की पूर्व सूचना देनी पड़ती है और उस सूचना के साथ उस प्रश्न की प्रतिलिपि भी भेजना पड़ता है जिसे सदस्य पूछना चाहते हैं; लेकिन अल्पसूचित प्रश्न के लिए १५ दिनों की पूर्व सूचना की आवश्यकता नहीं होती ।

इसके विपरीत सभा में तारांकित तथा अतारांकित प्रश्न पूछने की लिखित सूचना सदस्य को सचिव के पास कम से कम २० दिन पहले देना आवश्यक होता है । सरकार या संबंधित विभाग को कम से कम १५ दिन पूर्व इसकी सूचना मिलना आवश्यक है ।

परिषद् का सचिव ऐसे प्रत्येक प्रश्न की प्रतिलिपि जिसकी उन्हें सूचना दी गई है, सभापति को प्रस्तुत करते हैं । जब सभापति प्रश्न को स्वीकार कर लेते हैं तो उसकी एक प्रतिलिपि सरकार के सम्बन्धित विभाग के सचिव को भी भेजी जाती है । इस प्रकार के प्रश्न की प्रतिलिपि भेजने के लिए परिषद् में समय की कोई सीमा निश्चित नहीं है, परन्तु आशा की जाती है कि वह शीघ्र इसकी प्रतिलिपि भेजे ।

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ६३, सितम्बर ३, १९५९, पृ० २२६

२. उ०प्र०विधान परिषद की प्रक्रिया एवं कार्यसंचालन नियमावली, नियम १२५, पृ०२

इसके विपरीत सभा में ऐसे प्रश्न सचिव द्वारा शासन को साधारणतया ५ दिन के भीतर भेज दिये जाते हैं।

परिषद् का कोई सदस्य उस बैठक से पहले जिस बैठक के लिए उसका प्रश्न सूची में रखा गया है किसी समय सूचना देकर अपना प्रश्न वापस ले सकता है या किसी ऐसे दिन के लिए स्थगित कर सकता है जिसे वह सूचना में निर्दिष्ट करता है। स्थगित प्रश्न उस दिन के बाद सूची में उन सब प्रश्नों के अन्त में रखा जाता है जो कि इस प्रकार स्थगित नहीं किये गये हैं।[१]

उ०प्र० विधान सभा में भी प्रश्न को वापस तथा स्थगन करने की परिषद् के समान ही उपर्युक्त प्रक्रिया है।[२]

<u>अनुपस्थित सदस्यों के प्रश्न</u> :- किसी प्रश्न की सूचना देना और निश्चित तारीख पर उसे पूछने के लिए उपस्थित न रहना, सदस्य की अशिष्टता समझी जाती है।[३] ऐसे सदस्यों से सभापति स्पष्टीकरण माँग सकते हैं। यदि कोई सदस्य निश्चित तारीख पर उपस्थित होने में असमर्थ है तो किसी अन्य सदस्य को वह अपनी ओर से प्रश्न पूछने का लिखित अधिकार दे सकता है लेकिन प्राय: ऐसा किया जाना अनिवार्य नहीं है। इस विषय में सभापति को संतुष्ट करना पड़ता है कि सम्बन्धित सदस्य को अनुपस्थित सदस्य की ओर से प्रश्न पूछने का अधिकार है। यदि इस प्रकार का अधिकार नहीं दिया गया है तो जब प्रश्न पुकारा जाय उस समय किसी सदस्य को खड़ा नहीं होना चाहिए, किन्तु यदि कोई सदस्य किसी अनुपस्थित सदस्य के प्रश्नों पर पूरक प्रश्न पूछना चाहता हो तो उसे तदर्थ सभापति की पहले आज्ञा माँगनी पड़ती है।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली, नियम १२६, पृ० २८

२. उ०प्र०वि०सभा की नियमावली, नियम ४०, पृ० १६

३. श्री चन्द्रभाल- प्रश्न (पैम्फलेट) (लखनऊ सचिवालय)

प्रश्नों की संख्या की परिसीमा के सम्बन्ध में परिषद् की नियमावली में कोई उल्लेख नहीं है ; किन्तु विधान सभा में प्रश्नों की संख्या की परिसीमा निश्चित कर दी गयी है । प्रश्नों की संख्या की परिसीमा मौखिक उत्तर के लिए किसी दिन एक दिन की प्रश्न सूची में एक ही सदस्य के तारांक लगाकर विभेद किये गये दो से अधिक प्रश्न नहीं रखे जा सकते । दो से अधिक प्रश्न अतारांकित प्रश्नों की सूची में रख दिये जाते हैं ।[१]

प्रश्नों के उत्तर :— प्रश्न की सूचना की अवधि समाप्त हो जाने के उपरान्त प्रश्नों के उत्तर तत्काल दिये जाते हैं [१क] किन्तु सभापति उस मंत्री की प्रार्थना पर जिसके विभाग से प्रश्न के विषय का सम्बन्ध हो किसी प्रश्न के उत्तर देने के समय को बढ़ा सकते हैं । यह समय तीन सप्ताह से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता । विधान सभा में यह समय परिसीमा निर्धारित नहीं है ।[२] यदि उस अवधि के समाप्त होने पर परिषद् की बैठक हो रही हो तो ऐसे प्रश्न का उत्तर अगली बैठक के पहले दिन दिया जाता है । अब भी यदि सूचना प्राप्त न हुई हो तो वह मंत्री जिनको कि प्रश्न भेजा गया है, परिषद् को विलम्ब का कारण बताते हैं ।

जब तक सभापति अन्यथा आदेश न दें प्रश्नों के छपे हुए उत्तर सरकार द्वारा सचिव को प्रेषित किये जाते हैं और वह उन प्रश्नोत्तरों की प्रतियों को परिषद् की बैठक के लिए नियत समय से एक घंटा पूर्व सदस्यों की मेज पर रखवा देते हैं ।

सदन में पूछे गये प्रश्न और उनके उत्तर परिषद् की कार्यवाहियों में दर्ज किये जाते हैं । किसी दिन की सूची में दर्ज किये हुए प्रश्न जो कि समया-

---

१. विधानसभा नियमावली-नियम ३३, पृ० १५

१क. उ०प्र०वि०परिषद् की नियमावली, नियम १२८

२. उ०प्र०विधान सभा की नियमावली, नियम ३८(२),पृ० १५

भाव के कारण पूछे न जा सके हों कारण सहित उत्तर परिषद् की कार्यवाहियों में लेखाबद्ध किये जाते हैं जब तक कि सभापति यह निर्देश न दें कि प्रश्न किसी आगामी दिनांक में लिये जांय, परन्तु अस्वीकृत प्रश्न कार्यवाही में दर्ज नहीं किया जाता ।

१६५७ से १६६२ के बीच विधान परिषद् को १६,४२२ प्रश्नों की सूचना दी गई जिनमें से केवल ११०२५ प्रश्नों को उत्तर के लिए ग्राह्य किया गयातथा ५३६७ प्रश्नों को नियमानुकूल नहीं होने के कारण अस्वीकृत किये गये अथवा सदस्य द्वारा प्रश्न वापस लिये गए ।

विधान सभा में भी प्रश्नों के उत्तर दिये जाने की प्रक्रिया परिषद् के समान ही है ।[१]

प्रश्नों के उत्तरों से उत्पन्न किसी सार्वजनिक हित के विषय पर चर्चा :-

यथेष्ट सार्वजनिक महत्व के किसी ऐसे विषय पर जो कि परिषद् में किसी प्रश्न का विषय रहा हो चर्चा करने के लिए सभापति पांच बजे से साढे पांच बजे तक आधे घंटे का समय नियत करते हैं, परन्तु यदि दिन के लिए निर्धारित दूसरा कार्य पांच बजे से पहले समाप्त हो जाय तो आध घंटे की अवधि उस समय से आरम्भ होती है जिस समय कि ऐसा दूसरा कार्य समाप्त हो जाय ।

विधान सभा में भी प्रश्नोत्तरों से उत्पन्न लोक महत्व के विषय पर अध्यक्ष की अनुमति से आधे घंटे का समय नियत किया जाता है । सभा में यह समय, जब तक अध्यक्ष अन्यथा निर्देश न दें, साधारणतया मंगलवार या वृहस्पतिवार को सदन की कार्य की समाप्ति के उपरान्त दिया जाता है । इस सम्बन्ध में सभा और परिषद् की प्रक्रिया में दो बातें उल्लेखनीय हैं । प्रथमत: प्रश्नो-

---

१. उ०प्र०विधान सभा की नियमावली, नियम ४८, पृ० १७

भाव के कारण पूछे न जा सके हों कारण सहित उत्तर परिषद् की कार्यवाहियों में लेखाबद्ध किये जाते हैं जब तक कि सभापति यह निर्देश न दें कि प्रश्न किसी आगामी दिनांक में लिये जांय, परन्तु अस्वीकृत प्रश्न कार्यवाही में दर्ज नहीं किया जाता ।

१९५७ से १९६२ के बीच विधान परिषद् को १६,४२२ प्रश्नों की सूचना दी गई जिनमे से केवल ११०२५ प्रश्नों को उत्तर के लिए ग्राह्य किया गयातथा ५३९७ प्रश्नों को नियमानुकूल नहीं होने के कारण अस्वीकृत किये गए अथवा सदस्य द्वारा प्रश्न वापस लिये गए ।

विधान सभा में भी प्रश्नों के उत्तर दिये जाने की प्रक्रिया परिषद् के समान ही है ।[१]

प्रश्नों के उत्तरों से उत्पन्न किसी सार्वजनिक हित के विषय पर चर्चा :-

यथेष्ट सार्वजनिक महत्व के किसी ऐसे विषय पर जो कि परिषद् में किसी प्रश्न का विषय रहा हो चर्चा करने के लिए सभापति पांच बजे से साढे पांच बजे तक आधे घंटे का समय नियत करते हैं, परन्तु यदि दिन के लिए निर्धारित दूसरा कार्य पांच बजे से पहले समाप्त हो जाय तो आध घंटे की अवधि उस समय से आरम्भ होती है जिस समय कि ऐसा दूसरा कार्य समाप्त हो जाय ।

विधान सभा में भी प्रश्नोत्तरों से उत्पन्न लोक महत्व के विषय पर अध्यक्ष की अनुमति से आधे घंटे का समय नियत किया जाता है । सभा मे यह समय, जब तक अध्यक्ष अन्यथा निर्देश न दें, साधारणतया मंगलवार या बृहस्पतिवार को सदन की कार्य की समाप्ति के उपरान्त दिया जाता है । इस सम्बन्ध में सभा और परिषद् की प्रक्रिया में दो बातें उल्लेखनीय हैं । प्रथमत: प्रश्नो-

---

१. उ०प्र०विधान सभा की नियमावली, नियम ४८, पृ० १७

चर्चा से उत्पन्न लोक महत्व के विषय पर चर्चा के लिए सभा में दिन निश्चित है, परिषद् में नहीं । द्वितीयत: विधान सभा के उपवेशन के बाद किसी भी सदस्य के आग्रह पर किसी समय आधेघंटे की चर्चा हो सकती है, परन्तु परिषद् की नियमावली में इस प्रकार की चर्चा के लिए समय निर्धारित है । वह निर्धारित समय ५ बजे शाम से ५।। बजे शाम के बीच का है ।

विधान परिषद् का कोई सदस्य जो किसी विषय को उठाना चाहता हो, तो उस दिन से तीन दिन पूर्व सचिव को उठाये जाने वाले विषय के साथ सूचना देता है । सभापति सम्बन्धित मंत्री की सम्मति से सूचना की अवधि को घटा भी सकते हैं । वह यह भी निर्णय करते हैं कि विषय लोकमहत्व का है या नहीं । इस प्रकार के लोक महत्व के विषय के लिए परिषद् के समक्ष न तो कोई औपचारिक प्रस्ताव होते हैं और न मत ही लिये जाते हैं । सूचना देने वाला सदस्य एक संक्षिप्त वक्तव्य देता है और संबंधित मंत्री संक्षेप में उत्तर देते हैं, किन्तु ऐसे किसी सदस्य को, जिसने पहले से सभापति को सूचना दे दिया है , किसी तथ्य वस्तु को और स्पष्ट करने के लिए प्रश्न पूछने की अनुज्ञा दी जा सकती है ।

विधान सभा में परिषद् के समान लोक महत्व के विषय पर वाद-विवाद[3] की प्रक्रिया है ।

अविलम्बनीय लोकमहत्व के विषय की चर्चा के लिए सभापति सदन के नेता के परामर्श से दिन तथा समय निश्चित करते हैं । चर्चा के लिए उतने समय की अनुमति दी जाती है जितना कि आवश्यक समझा जाता है ; परन्तु हर हालत में यह समय १ घंटा से अधिक नहीं दिया जाता ।[4]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की नियमावली, नियम १३२(१)

२. वही, नियम १३५(१)

३. वि०सभा की नियमावली, नियम ४६(५)(४)(३), पृ० १७-१८

४. शेष अन्य प्रक्रिया लोकमहत्व के विषय में चर्चा से संबंधित नियम के समान ही है ।

विशेषाधिकार[1] एवं कार्य स्थगन प्रस्ताव :-

यदि कोई विशेषाधिकार का प्रश्न या अविलम्बनीय लोकमहत्व के विषय पर चर्चा के लिए कार्य स्थगन प्रस्ताव है तो वह प्रश्न समाप्त होने के तुरन्त बाद और अन्य कार्यक्रम के आरम्भ होने के पूर्व सदन की अनुमति मिलने पर उठाया जाता है।

परिषद की प्रक्रिया नियमावली के अनुसार लोकमहत्व के निश्चित अविलम्बनीय विषय पर बहस करने के लिए कार्यस्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत करने की आज्ञा प्राप्त करने की इच्छा की सूचना सचिव को परिषद् की बैठक आरम्भ होने से कम से कम आधा घंटा पहले तीन प्रतियाँ द्वारा दी जाती है, जिनमें से एक प्रति सदन के नेता और एक प्रति सचिव सभापति को भेजते हैं। विधान सभा में कार्य स्थगन प्रस्ताव उपस्थित करने वाला सदस्य प्रस्ताव की सूचना केवल दो प्रतियों में ही भेजता है।[2]

यदि सभापति की राय में कार्य स्थगन प्रस्ताव नियमानुकूल है तो वह प्रस्ताव को परिषद् के समक्ष पढ़कर सुनाते हैं और प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए परिषद् से अनुमति के लिए पूछते हैं।

यदि प्रस्ताव पर आपत्ति की गई हो तो उसे प्रस्तुत करने के लिए कम से कम १० सदस्यों का अनुसमर्थन प्राप्त करना आवश्यक है।[3] विधान सभा में कार्य स्थगन प्रस्ताव पर आपत्ति उठाये जाने पर उसे प्रस्तुत करने के लिए तत्कालिक सदन के कुल सदस्यों के द्वादशांश सदस्यों का अनुसमर्थन प्राप्त होना [illegible] अनिवार्य है।[4]

---

१. विशेषाधिकार सम्बन्धी प्रस्ताव की प्रक्रिया के लिए देखें, पृ० सं० ९६

२. विधान सभा नियमावली, नियम ५६, पृ० २१

३. विधान परिषद् नियमावली, नियम १०६, पृ० २३

४. विधान सभा नियमावली नियम ६० (२), पृ० २२

प्रस्ताव पर चर्चा अपराह्न ४ बजे होती है अथवा सभापति सदन के नेता के परामर्श से उसी दिन किसी अन्य समय निर्धारित कर सकते हैं।[१] इस प्रकार के अविलम्बनीय लोक महत्व के प्रस्ताव पर दो घंटे से अधिक समय तक बहस नहीं हो सकती और कोई भी भाषण १५ मिनट से अधिक देर तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि सभापति अन्यथा आदेश न दें।[२] विधान सभा में बहस के लिए समय का निर्धारण तथा प्रक्रिया परिषद् की तरह ही उपर्युक्त प्रकार का है।[३] १९५२ से १९६२ के बीच १७८ कार्यस्थगन प्रस्ताव की सूचना विधान परिषद् को दी गई जिनमें से लगभग दो तिहाई प्रस्तावों को नियमानुकूल नहीं होने के कारण प्रस्तावित करने की अनुमति नहीं दी गई। लगभग आधे दर्जन वैसे प्रस्तावों को जिनकी सूचना विलम्ब से मिली थी, प्रस्तावित करने की अनुज्ञा नहीं मिली। इसके अतिरिक्त न्यायालय के विचाराधीन मामलों से सम्बन्धित प्रस्तावों तथा जो लोक महत्व के नहीं थे उन्हें भी सदन में प्रस्तुत करने की स्वीकृति नहीं दी गई। साथ ही लगभग एक दर्जन वे कार्य स्थगन प्रस्ताव जो मंत्रियों द्वारा सरकारी वक्तव्य दिए जाने के लिए स्वीकार किये गये थे, को प्रस्तावित करने की अनुमति नहीं दी गई।

राज्यपाल का अभिभाषण :-

प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र में परिषद् के सदस्य विधान सभा के सदस्य के साथ महामान्य राज्यपाल का अभिभाषण सुनते हैं।[४] संविधान के अनुच्छेद १७६ उपखंड (१) के अन्तर्गत राज्यपाल का अभिभाषण सभापति द्वारा परिषद् को यथाशीघ्र प्रतिवेदित किया जाता है। तदुपरान्त परिषद् भवन में राज्यपाल

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की प्रक्रिया और कार्य संचालन नियमावली, नियम१०६, पृ०२३

२. विधान परिषद् नियमावली, नियम ११० (१) और (२)

३. विधान सभा नियमावली नियम ६१ और ६२

४. अनुच्छेद १७६

के अभिभाषण के लिए धन्यवाद का प्रस्ताव प्रस्तावित किया जाता है ।

राज्यपाल के अभिभाषण को जिसमें सरकार के गत वर्ष के कार्यों का व्यौरा एवं आगामी वर्ष में किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में सरकार की नीतियां रहती हैं, सरकारी पक्ष द्वारा समर्थन किया जाता है तथा विरोधी पक्ष द्वारा कमी एवं त्रुटियों को आलोचना एवं संशोधन प्रस्ताव द्वारा लाये जाने का प्रयास किया जाता है । ऐसे संशोधन मूल धन्यवाद प्रस्ताव के अन्त में शब्द जोड़े जाने के रूप में ही होते हैं ।[१]

धन्यवाद प्रस्ताव के अन्त में मुख्यमंत्री या अन्य मंत्री सरकार की ओर से सरकार की स्थिति के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण देते हैं तथा विरोधी पक्ष की आलोचनाओं का खंडन करते हैं ।

विधान सभा मे राज्यपाल के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिए साधारण तया ४ दिन का समय नियत है ।[२] परिषद् की नियमावली में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है ।

आय-व्ययक(बजट) को प्रस्तुत करने एवं उस पर बहस की प्रक्रिया :-

बजट को वित्तमंत्री या अन्य मंत्री प्रथमत: विधान सभा में उपस्थित करते हैं । परम्परा के अनुसार उसी दिन तीसरे पहर लगभग दो बजे दिन के करीब विधान परिषद् में भी बजट वित्तमंत्री या अन्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, उस दिन उस पर कोई चर्चा अथवा बहस नहीं होती । परिषद् की परम्परा यह रही है कि जिस दिन बजट उपस्थित किया जाता है उसके तीन-चार दिन के बाद बजट पर साधारण वाद-विवाद होता है ।

---

१. विधान परिषद् नियमावली, नियम १२

२. विधान सभा नियमावली, नियम १९ (३)

परिषद् की नियमावली के अनुसार" .... परिषद् को स्वतंत्रता होगी कि वह समस्त आय-व्यय अथवा अनुदानों के लिए अनुपूरक अथवा अतिरिक्त मांगों के विवरण पर या उसमें अन्तर्ग्रस्त सिद्धान्त के प्रश्न पर चर्चा करे..... ।"[१] बजट पर खंडश: बहस नहीं होती, केवल साधारण वाद-विवाद ही होता है । बजट पर साधारण चर्चा के अतिरिक्त, परिषद् में उसके सम्बन्ध में न तो कोई प्रस्ताव ही प्रस्तुत किया जा सकता है और न उस पर मतदान ही हो सकता है ।

परिषद् की परम्परा के अनुसार आय-व्ययक या किसी भी अनुदान की मांग पर परिषद् में सिर्फ ढाई दिन तक ही चर्चा होती है । इस सम्बन्ध में परिषद् की नियमावली २११ की अन्तिम पंक्ति के अनुसार" .... जिस दिन परिषद् में आय-व्ययक प्रस्तुत किया जाय उसके पश्चात् कम से कम पूरे तीसरे दिन तक आय-व्ययक पर चर्चा नहीं की जायगी ।"

विधान परिषद् की कार्यवाही के अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि बजट पर सामान्य चर्चा के सम्बन्ध में परिषद् ने उपयुक्त नियम का पालन कठोरता पूर्वक नहीं किया है । १९५२ से १९६२ के बीच अधिकांश आय-व्ययक पर परिषद् में चार और पांच दिन साधारणचर्चा हुई है । उदाहरणार्थ १९५४-५५ के आय व्ययक पर ४ दिन, १९५५-५६ के बजट पर ५ दिन, १९५६-५७ के बजट पर ४ दिन, १९५८-५९ के आय-व्ययक पर ५ दिन और १९६०-६१ के आय-व्ययक पर ७ दिन साधारण बहस हुई है । परिषद् द्वारा बजट पर की गई साधारण चर्चा को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया

---

१. विधान परिषद् की नियमावली, नियम २११ (१)

है :-

	विधानपरिषद् में प्रस्तुत करने की तिथि	विधानपरिषद् में बजट पर जिन तिथियों में साधारण चर्चा हुई है	आय-व्ययक सा रण चर्चा के दि की कुल संख्या
१९५२-५३ का आय-व्ययक	७-७-१९५२	११,१२ और १४ जुलाई ५२	३ दिन
१९५३-५४ का आय-व्ययक	२१-२-५३	२५,२६ और २७ फरवरी५३	३ दिन
१९५४-५५ का आय-व्ययक	२०-२-५४	२४,२५,२६ और २७ फर०५४	४ दिन
१९५५-५६ का आय-व्ययक	२१-२-५५	२५,२६,२८ फरवरीऔर १ मार्च १९५५	४ दिन
१९५६-५७ का आय-व्ययक	२४-२-५६	२८,२९ फरवरी और १ तथा २ मार्च १९५६	४ दिन
१९५७-५८ का आय-व्ययक	२-३-५७	विशेष परिस्थिति के कारण इस वर्ष बजट पर कोई चर्चा नहीं हुई ।	
१९५८-५९ का आय-व्ययक	१७-२-५८	२४,२५,२६,[२७ और] २८ फरवरी और	५ दिन
१९५९-६० का आय-व्ययक	१३-२-१९५९	२०-२-५९	१ दिन
१९६०-६१ का आय-व्ययक	अज्ञात	२२,२३,२४,२६,२९ फरवरी और १ तथा २ मार्च १९६०	७ दिन
१९६१-६२ का आय-व्ययक	१७-३-६१	२७,२८,२९,३० और ३१ मार्च तथा ४ अप्रैल, १९६१	६ दिन

विधान सभा में आय-व्ययक या उसमें अन्तर्ग्रस्त सिद्धान्तों के किसी प्रश्न पर साधारण चर्चा सामान्यतया ५ दिन होती है । साधारण चर्चा के समय कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है । सभा में भी आय-व्ययक को मतदान के लिए रखा नहीं जाता ।[१]

बजट पर चर्चा के अन्त में वित्तमंत्री सदस्य द्वारा निर्दिष्ट आलोचनाओं तथा त्रुटियों का उत्तर देते हैं ।

आय-व्ययक अथवा अनुपूरक या अतिरिक्त मांग पर चर्चा के लिए दिन नियत होते हुए भी किसी विधेयक अथवा विधेयकों को पुर:स्थापित करने की अनुज्ञा मांगने के लिए एक अथवा अधिक प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकते हैं और ऐसे दिन परिषद् के उस कार्य को आरम्भ करने के पूर्व जिसके लिए वह दिन नियत किया गया है कोई एक अथवा अधिक विधेयक पुर:स्थापित किये जा सकते हैं ।[२]

विधायिनी प्रक्रिया :-

विधि निर्माण की प्रक्रिया परिषद् में विधेयक के पुर:स्थापन से प्रारम्भ हो जाती है और तब तक जारी रहती है जब तक कि राज्यपाल[३] ~~अथवा राष्ट्रपति~~ की विधेयक पर स्वीकृति न मिल जाय । स्वीकृति के आशय का प्रकाशन सरकारी गजट में हो जाता है और सदन में इसकी उद्घोषणा प्राप्त अवसर में पहले कर दी जाती है ।

विधेयक की मुख्य विशेषताएं संक्षिप्त शीर्षक , प्रस्तावना, विभिन्न

---

१. विधान सभा की नियमावली नियम १८७(१), पृ० ५१

२. विधान परिषद् की नियमावली, नियम २१२

३. राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति, आवश्यक विधान परिषद् की कार्यप्रक्रिया नियमावली, नियम १६२, पृ०४१

खंड और अनुसूची हैं । विधेयक के उद्देश्य और कारणों को विधेयक के साथ अलग से संलग्न कर दिया जाता है जो विधेयक का भाग नहीं बनता । यह विधेयक के कारणों और इसके मुख्य प्रावधानों को स्पष्ट करता है । विधेयक के प्रत्येक खण्ड के चौथाई में टिप्पणी भी सम्बन्धित खण्ड के विषय क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए संलग्न रहता है ।

विधेयक के प्रकार :-

विधेयक दो प्रकार के होते हैं -सरकारी विधेयक और गैर सरकारी विधेयक । सरकारी विधेयक वह है जिसे सरकार की ओर से कोई मंत्री प्रस्तुत करता है । गैर सरकारी विधेयक को परिषद् का कोई अन्य सदस्य उपस्थित करता है ।

गैर सरकारी विधेयक को परिषद् में गुरूवार के दिन उपस्थित किया जाता है । गुरूवार के दिन गैर सरकारी विधेयक को प्रस्तुत करने की अग्रेता दी जाती है, पुन: समय रहने पर सरकारी विधेयक भी उसी दिन उपस्थित किया जा सकता है । शेष दिनों में सरकारी विधेयक ही उपस्थित किये जाते हैं ।

विधान सभा में प्रत्येक शुक्रवार को २ बजे अपराह्न से ५ बजे अपराह्न तक असरकारी सदस्यों का कार्य लिया जाता है और जब तक अध्यक्ष अन्यथा निदेश न दें, उसको सरकारी कार्य पर अग्रेता प्राप्त रहती हैं ।[१]

अधिनियम बनने के पूर्व किसी भी विधेयक (साधारण) को निम्न-लिखित दशाओं से गुजरना पड़ता है :-

१. विधेयक का पुर:स्थापन
२. इस पर विचार अथवा विधेयक को प्रवर समिति या संयुक्त प्रवर समिति को सुपुर्द किया जाना,
३. विधेयक पर खंडश: विचार तथा संशोधन,
४. पारण ;

---

१ वि०सभा की नियमावली. नियम २३. प० ११

५. यदि दूसरे सदन द्वारा विधेयक में संशोधन किया गया हो तो संशोधन पर विचार, तथा

६. राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा संस्तुति की गई संशोधनों पर विचार।

विधेयकों का पुर:स्थापन :-

गैर सरकारी विधेयक के पुर:स्थापन की अनुमति के लिए १५ दिन पूर्व सूचना देनी पड़ती है। सरकारी विधेयक के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होता।[1] यदि सरकारी विधेयक पुर:स्थापन के पहले गजट में प्रकाशित हो चुके हों तो विधेयक भार-साधक मंत्री के लिए पुर:स्थापन की अनुमति के लिए प्रस्ताव करना आवश्यक नहीं है और यह सीधे पुर:स्थापित हो सकता है। यदि कोई सदस्य ऐसा विधेयक प्रस्तुत करना चाहता हो, जो संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति अथवा राज्यपाल की पूर्व सिफारिश के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, तो उस सूचना के साथ ऐसी स्वीकृति अथवा सिफारिश की एक प्रतिलिपि भी संलग्न कर दी जाती है।[2]

साधारणत: सदस्य द्वारा विधेयक के पुर:स्थापन की अनुज्ञा के प्रस्ताव के समय न तो कोई आपत्ति ही उठाई जा सकती है और न वाद-विवाद के लिए ही अनुमति दी जाती है। परन्तु इस पुर:स्थापन के अवसर पर निम्नलिखित आपत्ति उठाई जा सकती है :-

१. विधेयक राज्य के विधानमंडल के विधायिनी क्षेत्र के बाहर है,

२. विधेयक पर राष्ट्रपति या राज्यपाल की स्वीकृति अथवा सिफारिश आवश्यक है।

३. विधेयक धन विधेयक अथवा वित्त विधेयक है।

---

१. विधान सभा की नियमावली, नियम १४६, खंड (२)

विधेयक की समिति में प्रक्रिया के लिए देखें, पृ०१८२ से १८८

२. विधान परिषद् की नियमावली, नियम १४६(२)

यदि इस प्रकार की आपत्ति उठाई जाती है तो सभापति आपत्ति उठाने वाले सदस्य को एवं विधेयक को पुर:स्थापित करने वाले सदस्य को संक्षिप्त भाषण देने की अनुमति दे सकते हैं। तदुपरान्त सभापति अपना निर्णय देते हैं अथवा विधान सभा के अध्यक्ष को विषय निर्दिष्ट कर देते हैं। विधेयक धन विधेयक है या नहीं इस सम्बन्ध में विधान सभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

पुर:स्थापन के उपरान्त प्रस्ताव :- किसी विधेयक को पुर:स्थापित किये जाने पर या किसी अनुवर्ती अवसर पर विधेयक-भार साधक सदस्य अपने विधेयक के सम्बन्ध में निम्नलिखित विकल्पों में से किसी एक को प्रस्तावित करता है :-

१. उसे परिषद् द्वारा तत्काल ही अथवा भविष्य में किसी निश्चित दिन विचारार्थ ले लिया जाय, अथवा

२. उसे ऐसी प्रवर समिति या संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जाय जिसमें परिषद् के वे सदस्य हों जिसे प्रस्ताव द्वारा संकेत किया गया हो। प्रस्ताव में समिति को एक निश्चित दिनांक तक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कहा जा सकता है, अथवा

३. विधेयक पर राय (जनमत) जानने के लिए उसे परिचालित किया जाय।

उपर्युक्त प्रकार के प्रस्ताव के पूर्व विधेयक की प्रतिलिपियां सदस्यों के उपयोग के लिए उपलब्ध कर दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रस्ताव लिये जाने के लिए दो दिन पूर्व सूचना देनी पड़ती है अन्यथा किसी भी सदस्य द्वारा इस प्रकार के प्रस्ताव किये जाने पर आपत्ति उठायी जा सकती है, जो मान्य होगी जब तक कि सभापति अन्यथा आदेश न दें।

यदि विधेयक भार-साधक सदस्य विधेयक को प्रवर या संयुक्त प्रवर समिति को सुपुर्द करने के लिए प्रस्ताव करता है, तो विधेयक पर जनमत जानने के प्रयोजन से उसे परिचालित करने के लिए संशोधन प्रस्ताव लाया जा सकता है, किन्तु उस समय विधेयक को तुरन्त विचारार्थ लिये जाने का संशोधन

प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता । इसीप्रकार विधेयक-भार-साधक सदस्य यदि यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक पर जनमत जानने के लिए इसे परिचालित किया जाय उस समय विधेयक को प्रवर अथवा संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट करने अथवा विधेयक को विचारार्थ लिये जाने के प्रयोजन का संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है ।

<u>विधेयक पर विचार</u> -- विधान परिषद् में आये हुए अधिकांश विधेयक सरकारी विधेयक होते हैं जो विधान सभा से पारित होकर आते हैं । विधान सभा द्वारा पारित विधेयक की प्रति की प्राप्ति के बाद शीघ्र प्राप्त अवसर पर सचिव, विधान परिषद् द्वारा परिषद् की मेज पर रखी जाती है । जब इस प्रकार के विधेयक मेज पर रख दिये जाते हैं तो कोई भी मंत्री सरकारी विधेयक के सम्बन्ध में तथा गैरसरकारी विधेयक के सम्बन्ध में कोई भी सदस्य दो दिन की पूर्व सूचना देने के बाद यह प्रस्ताव करता है कि विधेयक को विचारार्थ लिया जाय जब तक कि सभापति अन्यथा आदेश न दें । किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि यदि सभा द्वारा पारित विधेयक की प्रतियां आठ दिन पहले परिषद् की मेज पर रखने के पूर्व परिषद् को प्रेषित कर दी गई हैं, तो उसे परिषद् की मेज पर रखने के एक दिन के बाद किसी भी समय विधेयक को विचारार्थ लिये जाने के लिए प्रस्ताव लाया जा सकता है, जब तक कि सभापति दूसरा आदेश नहीं देते हैं । ऐसे प्रस्ताव के लिए यह संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है कि विधेयक को जनमत के लिए परिचालित किया जाय ।

यदि विधेयक दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जा चुका है तो इस प्रकार का संशोधन कि विधेयक को परिषद् की प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जाय प्रस्तुत नहीं किया जा सकता ।

यदि विधेयक मौलिक है तो ऐसे प्रस्ताव में, मंत्री विधेयक के बृहद् सिद्धान्तों और मुख्य प्रावधानों को स्पष्ट करते हैं । यदि वह विधेयक संशोधन विधेयक है, तो उन सभी परिवर्तनों पर जो विधेयक में लाये गये होते

है, पर विचार किया जाता है।

सदन में विधेयक को विचारार्थ लिये जाने के प्रस्ताव के समय सदस्यों से वाद-विवाद को विधेयक के सिद्धान्त तक ही सीमित रखने की अपेक्षा की जाती है, तथापि ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि वाद-विवाद को विधेयक के सिद्धान्त की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति तक ही सीमित रखा जाय। इस दशा में भी विधेयक के खण्डों के गुणों पर विस्तार से बहस नहीं की जाती।

परिषद् द्वारा विधेयक पर विचार के प्रस्ताव की स्वीकृति के उपरान्त सदन विधेयक पर खंडश: विचार के लिए आगे बढ़ता है। विधेयक की प्रस्तावना और प्रथम खण्ड पर तब तक के लिए विचार स्थगित कर दिया जाता है जब तक कि विधेयक के अन्य खण्डों और अनुसूचियों का निस्तारण न हो जाय। इस अवस्था में प्रत्येक खण्ड सभापति द्वारा एक-एक कर पुकारा जाता है जिसे 'सिरयलिज्म' कहा जाता है। इसका अर्थ सभापति के उस प्रस्ताव से है जिसमें कहा जाता है कि अमुक खण्ड अमुक विधेयक का भाग है। सभापति के निर्देशानुसार किसी खण्ड पर विचार स्थगित भी किया जा सकता है।[१] तदुपरान्त सभापति यह प्रश्न उपस्थित करते हैं कि 'प्रथम खण्ड और प्रस्तावना या, यथा स्थिति, संशोधित प्रथम खण्ड या प्रस्तावना', विधेयक का भाग बना रहे।'[२]

<u>विधेयक के खण्डों में संशोधन</u> :- विधेयक विचारार्थ लिये जाने के प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद सदस्य संशोधन प्रस्तुत कर सकते हैं।[३] संशोधन

---

१. विधान परिषद की नियमावली, नियम १८३, पृ० ३६

२. वही, नियम १८१

३. वही, नियम १७४

पर विचार किये जाने के लिए एक दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है।[१] संशोधन प्रस्तावित करने का क्रम सभापति द्वारा निर्धारित किया जाता है। सभापति ऐसे संशोधनों की अनुज्ञा देने से इन्कार कर सकते हैं जो उनकी राय में तुच्छ अथवा अर्थहीन हैं।[२]

सभापति एक से अधिक संशोधनों को एक साथ प्रस्तावित किये जाने एवं विचारार्थ लिये जाने के लिए आदेश दे सकते हैं।

किसी विधेयक के खण्डों अथवा अनुसूचियों में संशोधन की ग्राह्यता निम्नलिखित शर्तों[३] के अधीन हैं :-

१. प्रत्येक संशोधन विधेयक के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत होना चाहिए और जिस खण्ड से उसका सम्बन्ध हो उसके विषय से सुसंगत होना चाहिए।

२. संशोधन परिषद् के उसी प्रश्न पर पूर्व निर्णय से असंगत नहीं होना चाहिये।

३. संशोधन ऐसा नहीं हो जिससे कि वह खण्ड, जिसे संशोधित करने की उसमें प्रस्थापना हो, दुर्बोध अथवा व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हो जाय।

४. यदि किसी संशोधन में किसी अनुवर्ती संशोधन या अनुसूची की ओर निर्देश किया जाय अथवा उसके बिना वह बोधगम्य न हो तो प्रथम संशोधन का प्रस्ताव करने से पहले बाद के संशोधन अथवा अनुसूची की सूचना दी जानी चाहिए जिससे कि संशोधन माला पूर्णरूप से बोधगम्य हो जाय।

५. जो संशोधन पहले प्रस्तावित किया जा चुका हो, उसमें संशोधन प्रस्तुत किया जा सकता है।

---

१. विधान परिषद् की नियमावली, नियम १७७

२. वही, नियम १७६(६)

३. वही, नियम १७६

संशोधन पर, विधेयक के खण्डों के क्रम के अनुसार जिनसे क्रमश: उनका सम्बन्ध हो, साधारणत: विचार किया जाता है और किसी ऐसे खण्ड के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया हुआ समझा जाता है कि यह खण्ड विधेयक का भाग बना रहे, किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि सभापति को उन संशोधनों को चयन करने का अधिकार है जो किसी विधेयक के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।[१]

ऐसे संशोधनों को व्यवस्थित करने में, जिनके द्वारा किसी खण्ड के एक ही स्थान पर, एक सा ही प्रश्न उठाया गया हो, प्राथमिकता उस संशोधन को दी जाती है जो विधेयक-भार-साधक सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस प्रतिबन्ध के साथ संशोधन उसी क्रम से रखे जाते हैं जिस क्रम से उनकी सूची प्राप्त हुई होती है।

पारण के प्रस्ताव :- विधेयक पर खण्डश: विचार करने के उपरान्त विधेयक भार-साधक-सदस्य पारण का प्रस्ताव रखते हैं। जब परिषद् द्वारा किसी ऐसे प्रस्ताव के स्वीकार किये जाने के समय कोई संशोधन प्रस्तुत न किया गया हो, तो विधेयक तुरन्त पारित किया जा सकता है। परन्तु यदि कोई संशोधन किये जांय तो कोई भी सदस्य उसी बैठक में विधेयक के पारित किये जाने पर आपत्ति कर सकता है और ऐसी आपत्ति तब तक मान्य होती है जब तक कि सभापति विधेयक को पारित किये जाने की अनुज्ञा न दे दें।[२] यदि ऐसी आपत्ति मान ली गयी हो तो विधेयक के पारित करने का प्रस्ताव भविष्य में किसी बैठक में लाया जा सकता है।

वस्तुत: पारण के प्रस्ताव में कोई ऐसा संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जो या तो औपचारिक न हो या किसी ऐसे संशोधन का आनुषांगिक न हो जो विधेयक पर विचार प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् किया

---

१. विधान परिषद् की नियमावली, नियम १७८
२. वही, नियम १८५ खण्ड १ का उपखण्ड (२)

गया हो । दूसरे शब्दों में औपचारिक एवं आनुषांगिक स्वभाव के संशोधन को प्रस्तावित किया जा सकता है ।

पारण के प्रस्ताव के समय विधेयक पर वाद विवाद का अवसर सीमित रहता है । विधेयक के पक्ष या विपक्ष में ही तर्क दिये जा सकते हैं, लेकिन यदि किसी विधेयक में संशोधन पारण प्रस्ताव के पूर्व किया जा चुका है, तो उन संशोधनों को भी उसी समय निर्दिष्ट किया जा सकता है और उस पर बहुत ही संक्षेप में चर्चा की जा सकती है ।

जब विधेयक परिषद् द्वारा पारित कर दिया जाता है तो उसकी एक प्रतिलिपि पर सभापति हस्ताक्षर करते हैं और तत्पश्चात् उसको सभा की सम्मति के लिए भेज दिया जाता है ।[१] यदि सभा विधेयक को संशोधित कर परिषद् को वापस भेजती है तो संशोधित विधेयक की प्रतिलिपियाँ परिषद् की आगामी बैठक में यथाशीघ्र सदन की मेज पर रखी जाती है । सरकारी विधेयक की दशा में कोई मंत्री अथवा किसी अन्य दशा में कोई सदस्य, ३ दिन की सूचना देने के पश्चात् या सभापति की स्वीकृति से इससे कम समय की सूचना देकर संशोधन पर विचार करने के लिए प्रस्ताव करता है ।

सभा द्वारा किये गए संशोधनों में सुसंगत अतिरिक्त संशोधन प्रस्तुत किये जा सकते हैं लेकिन विधेयक में कोई अतिरिक्त संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जब तक कि वह सभा द्वारा किये गये संशोधन का आनुषांगिक या वैकल्पिक संशोधन न हो ।[२]

परिषद् यदि सभा द्वारा किये गए संशोधनों से सहमत नहीं है अथवा उन संशोधनों या उनमें से किसी संशोधन को अतिरिक्त संशोधन के

---

१. विधान परिषद् की नियमावली, नियम १८७

२. वही, नियम १६१ (२)

साथ या बिना संशोधन के परिषद् स्वीकार कर लेती है, तो वह विधेयक या वह फिर से संशोधित किये गए रूप में सभा में भेज दिया जाता है। यदि सभा उस विधेयक को फिर से इस संदेश के साथ वापस कर दे कि उन संशोधनों को अब भी वह ठीक समझती है जिनको परिषद् स्वीकार नहीं कर सकी, तो परिषद् या तो विधेयक को उस रूप में स्वीकार करती है जिस रूप में सभा ने पारित किया है। यदि परिषद् फिर भी उसे स्वीकार नहीं करती तो अपनी इस असहमति की सूचना सभा को भेजती है और उस विधेयक को राज्यपाल की अनुमति के लिये उसी रूप में प्रस्तुत करती है जिसमें कि वह अन्तिम बार सभा द्वारा पारित किया गया था।[१]

परिषद् में आरम्भ किया गया विधेयक राज्य के विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित किये जाने पर, वह परिषद् को वापस कर दिया जाता है। उस पर सभापति के हस्ताक्षर हो जाने के बाद, राज्यपाल की अनुमति के लिए उनके पास भेज दिया जाता है। राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हो जाने के बाद उत्तर प्रदेश के विधान मंडल के ऐसे अधिनियम के रूप में गजट में प्रकाशित किया जाता है जिसे राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हो गयी है। राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित विधेयक पर उसकी अनुमति मिल जाने के बाद उसे गजट में अधिनियम के रूप में प्रकाशित किया जाता है।

राज्य पाल द्वारा विधेयक यदि परिषद् को पुन: विचारार्थ वापस किया जाय तो ऐसा विषय या ऐसे विषय जो पुन: विचारार्थ के निर्दिष्ट किये गए हों अथवा जिन संशोधनों की सिफारिश की गई हो वे सभापति द्वारा परिषद् के समक्ष रखे जाते हैं और उन पर जिस प्रकार विधेयक के संशोधन लिये जाते हैं, उसी प्रकार या किसी ऐसे दूसरे प्रकार से,

---

१. विधान परिषद् की नियमावली, नियम १६१, खंड ४ का उपखण्ड (ख)
२. वही नियम १६५, पृ० ४२

जैसा परिषद् के सभापति उन पर विचार के लिए सुविधाजनक समझें, चर्चा की जाती है तथा उन पर मत लिये जाते हैं।

विधेयक-भार-साधक सदस्य, विधेयक के किसी प्रक्रम पर विधेयक को वापस लेने का प्रस्ताव कर सकता है और यदि ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत हो जाय तो उस विधेयक के सम्बन्ध में अन्य कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, कोई विधेयक जिसके सम्बन्ध में दो वर्ष तक परिषद् में कोई प्रस्ताव प्रस्तुत न हुआ हो, सभापति के आदेश से उसे कार्यसूची से हटाया जा सकता है।

अध्याय – ४

विधान परिषद् का सभापति :-

विधान सभा के अध्यक्ष की तरह परिषद् का सभापति परिषद् का सर्वोच्च निर्वाचित अधिकारी है । परिषद् के सदस्यों में से एक को सदस्यों द्वारा सभापति तथा दूसरे को उपसभापति चुन लिया जाता है । दोनों का चुनाव अलग-अलग होता है । जब तक सभापति का निर्वाचन नहीं होता राज्यपाल द्वारा कार्य-भार-साधक सभापति नियुक्त किया जाता है । १९५२ में परिषद् के स्थायी सभापति के निर्वाचन के पूर्व राज्यपाल ने श्री चन्द्रभाल को कार्य-भार-साधक सभापति के रूप में नियुक्त किया था ।

निर्वाचन :

सभापति[१] तथा उपसभापति[२] का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के एकल-संक्रमणा पद्धति से होता है । निर्वाचन राज्यपाल द्वारा नियत की गई तिथि को होता है और परिषद् सचिव प्रत्येक सदस्य के पास इस प्रकार नियत की गई तिथि की सूचना भेजता है ।[३] तदुपरान्त नियत की गई तिथि के पूर्व दिन के अपराह्न से पहले किसी समय कोई सदस्य निर्वाचन के लिए, किसी अन्य सदस्य का नाम-निर्देशन सचिव को एक ऐसा नाम-निर्देशन-पत्र देकर करता है जिस पर प्रस्तावक के रूप में उस सदस्य के हस्ताक्षर रहना आवश्यक है ।[४] उस

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यप्रक्रिया नियमावली, नियम १७, पृ० ४५

२. उ०प्र०वि०परि० नियमावली, नियम १८, पृ० ५

३. उ०प्र०वि०परि०,नियमावली,नियम १७(१), पृ० ४

४. नियम १७ (२), पृ० ४

पत्र में नाम-निर्देशित सदस्य का नाम भी रहता है । निर्वाचन के दिन जो व्यक्ति पीठासीन होता है वह परिषद् को उन सदस्यों का नाम पढ़कर सुनाता है जिनका नाम-निर्देशन विधिपूर्वक हो चुका है तथा उनके प्रस्तावकों और समर्थकों के नामों को भी पढ़कर सुनाता है और यदि केवल एक ही सदस्य का नाम-निर्देशन हुआ है तो उस सदस्य को निर्वाचित घोषित किया जाता है ।[१]

सभापति अथवा उपसभापति पद के निर्वाचन में एकल-संक्रमणीय मत-प्रणाली का प्रयोग उस समय होता है जब उम्मीदवार दो से अधिक हैं । सभापति पद के लिए १९५२ में चन्द्रभाल[२] और १९५८ में रघुनाथ विनायक धुलेकर[३] सत्तारूढ़ कांग्रेस दल की ओर से नाम निर्देशित किये गये थे । प्रतिपक्ष की ओर से इस

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नियम १७(५) और १८ (५), पृ० ५

२. १९५२ में चन्द्रभाल का नाम-निर्देशन तीन नाम निर्देशन-पत्रों द्वारा हुआ था जिनमें एक के प्रस्तावक दीपचन्द्र तथा अनुमोदक ज्योतिप्रसाद, दूसरे के प्रस्तावक बजरंगबहादुर तथा अनुमोदक सुरेश सिंह और तीसरे के प्रस्तावक जमीलुर्रहमान तथा अनुमोदक सत्यप्रेमी (उपनाम हरिप्रसाद) थे ।

--उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० खं०२५,२० मई १९५२,पृ६

३. १९५८ में रघुनाथ विनायक धुलेकर का नाम-निर्देशन ९ नाम-निर्देशन पत्रों द्वारा हुआ था जिनके प्रस्तावक और अनुमोदक निम्नलिखित थे --

प्रस्तावक	अनुमोदक
१. प्रतापचन्द्र आजाद, श्री	१. जगन्नाथ आचार्य, श्री
२. देवेन्द्र स्वरूप, श्री	२. सरदार बलवन्त सिंह, श्री
३. शिवनारायण, श्री	३. शंकर राव, श्री
४. लल्लूराम द्विवेदी, श्री	४. निजामुद्दीन, श्री
५. शान्तिदेवी अग्रवाल, श्रीमती	५. कुदसिया बेगम, श्रीमती
६. गिरधारीलाल, श्री	६. रामनन्दन सिंह, श्री
७. शिवनाथ सिंह, श्री	७. शिवनाथ काटजू, श्री
८. सक्टूमल, श्री	८. शिवनारायण, श्री
९. बालकराम वैश्य, श्री	९. कृष्णचन्द्र जोशी, श्री

--उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० खंड ५८, २० जुलाई १९५८, पृ०३

पद के लिए एक भी नाम-निर्देशन नहीं हुआ था । अत: दोनों वर्ष केवल एक-एक सदस्य का नाम प्रस्तावित होने के कारण एकल संक्रमणीय मत प्रणाली का प्रयोग नहीं हुआ था । फलत: चन्द्रभाल और रघुनाथ विनायक धुलेकर क्रमश: १९५२ और १९५८ में निर्विरोध निर्वाचित घोषित किये गये ।

उपसभापति पद पर १९५२ और १९५८ दोनों वर्ष के निर्वाचन में कांग्रेस प्रत्याशी निजामुद्दीन निर्वाचित हुए थे । [1] १९५२ में निजामुद्दीन इस पद के एकमात्र प्रत्याशी थे, किन्तु १९५८ में निजामुद्दीन [2] के अतिरिक्त जगदीशचन्द्र वर्मा का नाम निर्देशन हुआ था । श्री जगदीशचन्द्र वर्मा प्रजासमाजवादी दल के थे तथा उनके प्रस्तावक रामनाथ और अनुमोदक डा०ए०जे० फरीदी दोनों प्रजासमाजवादी दल

---

१. १९५२ में निजामुद्दीन का नाम-निर्देशन तीन नाम-निर्देशनपत्रों द्वारा हुआ था जिनके प्रस्तावक और अनुमोदक निम्नलिखित थे :-

प्रस्तावक	अनुमोदक
१. कुंवर महावीर सिंह,श्री	१. जगन्नाथ आचार्य, श्री
२. डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव,श्री	२. शान्तिदेवी,श्रीमती
३. इन्द्र सिंह, श्री	३. शिवराजवती नेहरू,श्रीमती

—उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०सं० २५,२० मई १९५२,पृ० १५४

२. १९५८ में निजामुद्दीन का नामनिर्देशन १० नाम-निर्देशन पत्रों द्वारा हुआ था जिनके प्रस्तावक और अनुमोदक अधोलिखित थे :-

१. सकटूमल,श्री	१. मदनमोहन लाल,श्री
२. प्रेमचन्द्र शर्मा,श्री	२. लालताप्रसाद सोनकर,श्री
३. अब्दुल सकूर नजमी,श्री	३. एम०ए० अस्लम खाँ, श्री
४. जगन्नाथ आचार्य,श्री	४. कुंवर महावीर सिंह,श्री
५. केशवदत्त,श्री	५. हकीम बृजलाल वर्मन,श्री

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

के थे। दो नाम-निर्देशन होने के कारण मतदान हुआ था जिसमें निजामुद्दीन को ६८ मत तथा जगदीशचन्द्र वर्मा को केवल १३ मत प्राप्त हुए थे।

इस प्रसंग में दो प्रश्न विचारणीय हैं — प्रथमत: १९५२ में प्रतिपक्ष की ओर से सभापति अथवा उपसभापति किसी भी पद के लिए नाम-निर्देशन क्यों नहीं किया गया ? द्वितीयत: १९५८ में प्रतिपक्ष ने केवल उपसभापति पद के लिए ही नाम निर्देशन क्यों किया ? वस्तुत: १९५२ में सभापति तथा उपसभापति पद के निर्वाचन के समय परिषद् में सबल विरोधी पक्ष नहीं था। कुछ निर्दलीय सदस्यों के अतिरिक्त सभी सदस्य कांग्रेसी थे। निर्दलीय सदस्यों में भी कुछ कांग्रेस के समर्थक थे। अत: सबल विरोधी पक्ष के अभाव में प्रतिपक्ष की ओर से सभापति अथवा उपसभापति पद के लिए नाम प्रस्तावित नहीं किया गया। इसके विपरीत १९५८ में विरोधी पक्ष की स्थिति पूर्व की अपेक्षा कुछ सुदृढ़ हुई थी, फिर भी मजबूत विरोधी पक्ष का अभाव था। अत: प्रतिपक्ष ने सभापति पद के लिए १९५८ के निर्वाचन में भी नाम-निर्देशन करना उपयुक्त नहीं समझा था। इसके विपरीत उपसभापति पद के लिए प्रतिपक्ष की ओर से नाम निर्देशन किये जाने के पीछे प्रतिपक्ष का दूसरा दृष्टिकोण था। प्रतिपक्ष का यह विचार था कि अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के दृष्टिकोण से उपसभापति पद पर विरोधी पक्ष के सदस्य निर्वाचित हों।

<u>सभापति और उसका निर्वाचन क्षेत्र</u>

बहुधा यह प्रश्न उठाया जाता है कि परिषद् के सभापति के निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किस रूप में हो। सभापति के रूप में उसे वाद-विवाद तथा मत-

---

(पिछले पृष्ठ का शेष)

६. रामकुमार शास्त्री, श्री	६. एम०जे०, मुकर्जी, श्री
७. शिवनारायण श्री	७. शंकर राव, श्री
८. पूर्णचन्द्र विद्यालंकार, श्री	८. शिवराजवती नेहरू, श्रीमती
९. सावित्री श्याम, श्रीमती	९. तारा अग्रवाल, श्रीमती
१०. प्रतापचन्द्र आजाद, श्री	१०. बद्रीप्रसाद कक्कड़, श्री

—उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, सं० ५८, ६ अग०, ५८, पृ०७५६

विभाजन में भाग लेने का अधिकार नहीं है । इस प्रतिबन्ध के कारण वह अपने निर्वाचन क्षेत्र के सम्बन्ध में सदन में स्वयं कुछ नहीं कह सकता । फलत: उसका निर्वाचन-क्षेत्र अप्रतिनिधित्व रह जाता है । ब्रिटेन की कामन्स सभा के अध्यक्ष के सम्बन्ध में मैकडैनाह का मत भी इसी प्रकार है ।[१]

सभापति के निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधित्व की समस्या के निदान के लिए दो विकल्प हैं :--

१. सभापति के निर्वाचन क्षेत्र को द्विसदस्यीय बनाया जाय, अथवा

२. परिषद् का कोई भी सदस्य सभापति की इच्छा पर उसके नर्वाचन क्षेत्र की सेवा कर सकते हैं तथा कठिनाइयों को सदन में रख सकते हैं ।

प्रथम विकल्प के समान ब्रिटेन की कॉमन्स सभा के अध्यक्ष के लिए भी काल्पनिक निर्वाचन क्षेत्र के निर्माण का सुझाव दिया गया था, किन्तु कॉमन्स सभा की प्रवर समिति ने इस सुझाव को अनावश्यक बताया । प्रवर समिति के अनुसार ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था में दल का सदन के सदस्यों के क्रिया-कलापों पर प्रभाव इतना अधिक है कि दलीय निर्णय के समक्ष एक सदस्य का विचार या मत, चाहे किसी पक्ष में दिया गया हो, महत्व नहीं रखता । वस्तुत: उ०प्र०विधान परिषद् के सभापति के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोनों विकल्पों में पहला विकल्प ही अधिक उपयुक्त है । विधान परिषद् में विभिन्न अल्पसंख्यक वर्ग एवं हितों का प्रतिनिधित्व होता है । उन विभिन्न हितों के प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से परिषद् में इकाई सदस्य का स्थान भी महत्वपूर्ण है । पुन: दूसरे विकल्प को अपनाने में कठिनाइयां हैं । दूसरे विकल्प द्वारा भी इस समस्या का समाधान नहीं होता कि बहस के समय सभापति के मन में आयी हुई नयी ॉ

---

१. माइकेल मैकडोनाह, दिपेजियेन्ट ऑफ पार्लियामेन्ट, प्रथम संस्करण, १६२१ लंदन वोल्यू० १, पृ० १२७-१२८

विचारधारा तथा सुझाव को सदन में किस प्रकार व्यक्त किया जाय । प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण से भी इसे उचित प्रतिनिधित्व नहीं कहा जा सकता कि किसी सदस्य के निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कोई दूसरा सदस्य करे ।

उपसभापति के निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार का प्रश्न नहीं उठता । वह जिस समय परिषद् की बैठक का सभापतित्व नहीं कर रहा हो, उस समय वह सदन में प्रश्नोत्तर के समय प्रश्न पूछ सकता है, किसी विषय पर बहस के समय अपना विचार रख सकता है तथा मत विभाजन में भाग भी ले सकता है ।[१] इस दृष्टि से उसे सदन के समक्ष अपने निर्वाचन क्षेत्र के सम्बन्ध में विचार प्रकट करने के लिए पर्याप्त अवसर रहता है ।

सभापति और राजनीतिक दल :-

सभापति को क्या निर्वाचित होने के उपरान्त दल से बिलकुल अलग होना चाहिए अथवा दल से सम्बद्ध रहना चाहिए[२]? इस प्रश्न की ओर इंगलैण्ड और भारत

---

१. उ०प्र०विधान सभा में ३० मई १९६२ को श्रम और सेवा योजन अनुदान पर लिखित मतदान तथा उसकी घोषणा होने के पश्चात् श्री माखनलाल, विधान सभा सदस्य ने पूछा "उपाध्यक्ष मतदान मे हिस्सा ले सकते हैं या नहीं । उपाध्यक्ष ने मतदान में हिस्सा लिया है । इस पर अध्यक्षपद से उपाध्यक्ष ने उत्तर दिया - "उपाध्यक्ष वाद-विवाद में भी हिस्सा ले सकते हैं और मतदान में भी हिस्सा ले सकते हैं ।" —उ०प्र०विधान सभा की कार्यवाही,खं०२३१,पृ०६०२

२. विधान परिषद् के उपसभापति और ~~निर्वाचन~~ विधान सभा के उपाध्यक्ष के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रश्न नहीं उठता । उ०प्र०विधान सभा के उपाध्यक्ष की एक व्यवस्था के अनुसार वह सक्रिय राजनीति में भाग ले सकते हैं - उ०प्र०विधान सभा की कार्य०खं० २०८, पृ० ३०५-३०६, २४ दिसम्बर १९५९ को उ०प्र० गन्ना पूर्ति खरीद तथा विनियमन (सं०) विधेयक १९५९ पर विचार के समय रामनारायण त्रिपाठी सभा सदस्य द्वारा की गई आपत्ति के सम्बन्ध में उपाध्यक्ष की व्यवस्था ।

दोनों देशों का समान रूप से ध्यान आकर्षित हुआ है। इस प्रश्न पर तीन दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। प्रथमत:, क्या सभापति को निर्वाचन के उपरान्त राजनीतिक दल का सदस्य बना रहना चाहिए। द्वितीयत:, क्या जब वह चुनाव में पुन: चुनाव लड़ना चाहते हों तो उनका विरोध किया जाना चाहिए। तृतीयत: जिस निर्वाचन क्षेत्र से उनका निर्वाचन हुआ है, उसकी समस्याओं को सदन के सामने किस प्रकार रखा जाना चाहिए।

जहाँ तक अन्तिम प्रश्न का सम्बन्ध है, इस पर पहले ही विचार किया जा चुका है। प्रथम प्रश्न के सम्बन्ध में ब्रिटिश कॉमन्स सभा के अध्यक्ष की तरह उ०प्र०विधान परिषद् का सभापति भी निर्वाचन के उपरान्त दल की किसी भी क्रिया कलाप में भाग नहीं लेता।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में कि क्या सभापति के स्थान का चुनाव में विरोध किया जाना चाहिए, इस सम्बन्ध में ब्रिटेन तथा भारत की परम्परा में अन्तर है। इस प्रश्न को ब्रिटिश संसद में १६३६ में उठाया था और जिसके परिणामस्वरूप कॉमन्स सभा की एक प्रवर समिति ने इस पर आयोजित औपचारिक पान्त विचार किया था। समिति ने अप्रतिरोधित काल्पनिक निर्वाचन क्षेत्र के निर्माण किये जाने के सुझाव पर भी विचार किया था। दूसरी ओर भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों ने भी अध्यक्ष के स्थान का विरोध नहीं किये जाने का सुझाव रखा था। प्रवर समिति इन सुझावों से सहमत नहीं थी। व्यवहार में जिस निर्वाचन क्षेत्र से कॉमन्स सभा का अध्यक्ष निर्वाचन लड़ता है, बहुधा उस निर्वाचन क्षेत्र से अन्य उम्मीदवार खड़े नहीं होते, किन्तु ऐसी कोई परम्परा नहीं है कि अध्यक्ष का निर्वाचन में, विरोध नहीं किया जाय। १७१४ से १६४५ के बीच इंगलैण्ड में सिर्फ १८०६, १८८५, १८६५, १६३५ तथा १६४५ में कुल मिलाकर पाँच बार अध्यक्ष के स्थान का चुनाव में विरोध किया गया था। १६४५ के बाद से १६५० और १६५५ में स्वतंत्र उम्मीदवार तथा १६६४ में दलीय उम्मीदवार ने अध्यक्ष का निर्वाचन में विरोध किया था किन्तु इस प्रकार के उदाहरण अपवाद स्वरूप हैं। इंगलैण्ड में यह मान लिया गया है कि भूतपूर्व अध्यक्ष

दलीय उम्मीदवार के रूप में खड़ा नहीं हो सकता । अत: एक परम्परा बन गई है कि यदि कोई सभापति दूसरे कार्य-काल के लिए सभापति पद को स्वीकार करने की इच्छा प्रकट करते हैं तो उनके स्थान का विरोध नहीं किया जाता जब तक कि ऐसा करने के लिए कोई विशेष कारण उपस्थित न हो । सदन के पुनर्गठन होने के बाद भूतपूर्व सभापति पुन: सभापति के लिए चुना जाता है और सभापति पद से अवकाश प्राप्त करने पर वह राजनीति छोड़ देता है । प्रवर समिति जिसके सदस्य लायड जार्ज, चर्चिल और लैंसबरी थे, प्रतिवेदित किया कि वर्तमान पद्धति बनी रहनी चाहिए ।

भारत में न तो कोई ऐसा विधान ही है और न कोई ऐसी परम्परा ही है जिसके द्वारा अध्यक्षपद का चुनाव में विरोध नहीं किये जाने की परम्परा कायम हुई हो । उत्तर प्रदेश विधानपरिषद् के प्रथम सभापति श्री चन्द्रभाल के कार्य-काल समाप्त होने के बाद, वह पुन: परिषद् की सदस्यता के लिए चुनाव नहीं लड़े थे, अत: उनके विरोध किये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । रघुनाथ विनायक धुलेकर की स्थिति भी १९६४ में प्राय: इसी प्रकार थी ।

वस्तुत: ब्रिटेन जैसी परम्परा के कायम करने के लिए भारत की संसोपा ने विचार व्यक्त किया था ।[१] संसोपा की राष्ट्रीय समिति के निर्णय के अनुसार जो व्यक्ति संसद या विधान मंडल पद ग्रहण करने के तत्काल बाद राजनीतिक दलों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं, संसोपा ने किसी भी चुनाव में उनका विरोध नहीं करने का निश्चय किया था । भारत में अध्यक्ष पद को दलगत राजनीति से ऊपर रखने के लिए यह कदम उठाया गया था । संसोपा ने अन्य राजनीतिक दलों से भी आग्रह किया था कि वे भी ऐसी घोषणाएं करें । मद्रास

---

१. संसोपा की राष्ट्रीय समिति की १७ अक्टूबर १९६८ को दिल्ली में हुई बैठक के निर्णयानुसार, हिन्दुस्तान दैनिक, १८ अक्टूबर १९६८, पृ० ४

विधान सभा के अध्यक्ष श्री ए०वी० आदित्यन ने अक्टूबर १९६८ में अपने पद से त्याग पत्र देते हुए यही कारण बताया था कि भारत में ऐसी परम्परा नहीं है जैसी संसोपा कायम करने जा रही है ।[१]

१४ और १५ अक्टूबर १९६७ को विधानसभा के अध्यक्षों के सम्मेलन में श्री रेड्डी ने अध्यक्षपद की गरिमा को बनाये रखने के उद्देश्य से सुझाव दिया था कि अध्यक्ष निर्वाचित होने के तत्कालबाद राजनीतिक दलों की अपनी सदस्यता रद्द कर दें।[२] उनका यह सुझाव स्वीकृत नहीं हो सका था । विधान मंडल के अध्यक्षों का उपर्युक्त सम्मेलन-प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं पर विचारार्थ एक समिति की नियुक्ति की घोषणा करके संतुष्ट हो गया था ।

उपर्युक्त विवरण से तो यही संकेत मिलता है कि भारत में अध्यक्षों के बहुमत राजनीतिक दल से सम्बन्ध तोड़ कर निर्दलीय अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए सहमत नहीं हैं । यद्यपि यह संभव है कि भविष्य में निर्दलीय अध्यक्ष अथवा सभापति के निर्वाचन के प्रश्न पर सहमत हो जांय ।

सभापति और उसकी निष्पक्षता :-

यद्यपि सभापति से निष्पक्ष कार्य के सम्पादन की आशा की जाती है, परन्तु क्या यह संभव है कि दलीय आधार पर निर्वाचित सभापति निष्पक्षरूप से कार्य कर सके । अध्यक्ष अपनी निष्पक्षता को कायम रखे, इसी प्रयोजन से इंग-लैण्ड में अध्यक्ष पद के लिए नाम निर्देशन साधारणत: सरकारी पक्ष या सामने की बैंच से नहीं होता है । सभी सदस्य इस बात पर विशेष ध्यान देते हैं कि वह नाम

---

१. हिन्दुस्तान, दैनिक, १८ अक्टूबर १९६८, पृ० ४
हिन्दुस्तान दैनिक १८ अक्टूबर, १९६८,पृ० ४) के अनुसार उस समय लोक सभा के अध्यक्ष तथा गोआ विधान सभा के अध्यक्ष ~~ऐसे हैं~~ जिन्होंने दल से सम्बन्ध तोड़ लिया था ।

२. दिनमान,साप्ताहिक, टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन,१४ अप्रैल १९६७, अध्यक्षों का सम्मेलन, पृ० १३

निर्दैशित व्यक्ति ईमानदार तथा न्यायिक स्वभाव का हौ । उसमें सामान्य बुद्धि, सहिष्णुता, व्यवहारिकता, आत्मविश्वास तथा सहृदयता हौ । वह विनौदी स्वभाव का हौ तथा उसमें कठिन परिस्थितियों में संतुलन बनाये रखने की क्षमता भी हौ ।

भारत में अध्यक्ष अथवा सभापति पद के लिए नाम-निर्देशन के समय यद्यपि उपर्युक्त गुणों पर ध्यान रखा जाता है, किन्तु उसका नाम-निर्देशन दलीय सदस्यों द्वारा तथा दलीयसदस्यों में से ही हौता है । उ०प्र० विधान परिषद् के सभापति श्री चन्द्रभाल और श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर दौनों ही कांग्रेसी प्रत्याशी थे तथा दौनों का नाम-निर्देशन भी कांग्रेसी सदस्यों द्वारा ही हुआ था । उ०प्र० विधान सभा में भी अध्यक्ष पद के उम्मीदवार श्री आत्माराम गौविन्द खेर का नाम-निर्देशन तत्कालीन सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के सदस्य द्वारा ही किया गया था ।

यद्यपि उ०प्र० विधान परिषद् के उपर्युक्त दौनों सभापतियों के कार्यों की निष्पक्षता का मूल्यांकन करना कठिन कार्य है, किन्तु उनके निर्णयों के विरौधस्वरूप प्रतिपक्षी सदस्यों द्वारा सदन के त्याग किये जाने का उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि विरौधी दल के सदस्यों कौ उनकी निष्पक्षता पर संदेह था । श्री चन्द्रभाल के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव तौ नहीं लाये गये थे, परन्तु उनके निर्णय के विरुद्ध विरौधीदल के सदस्यों ने सदन का त्याग किया था[१]। श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर के निर्णय के विरुद्ध भी कई सदस्यों ने सदन का

१, १६ जनवरी १९५६ कौ श्री कन्हैयालाल गुप्त सभापति की व्यवस्था के पश्चात् विरौधस्वरूप सदन से उठकर बाहर चले गये थे — उ०प्र० विधान परिषद की कार्य० सं० ४४, पृ० १७३-१७४ , ४ मार्च १९५८ कौ श्री प्रभुनारायण सिंह, विधान परिषद् सदस्य सभापति के निर्णय कौ गलत कहकर वह और शफीक अहमद खाँ तातारी सभापति के निर्णय के विरौधस्वरूप सदन से उठकर बाहर चले गये थे — उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, सं० ५६, पृ०१०२६-२७

त्याग किया था ।[१] इसके अतिरिक्त उनके विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव लाये गये थे,[२] यद्यपि उनमें से एक प्रस्ताव भी स्वीकृत नहीं हुआ था ।[३]

यद्यपि श्री चन्द्रभाल के विरुद्ध एक भी अविश्वासप्रस्ताव नहीं लाया गया था, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें सभी सदस्यों का विश्वास प्राप्त था । यदि उन्हें सभी सदस्यों का विश्वास प्राप्त होता तो प्रतिपक्षी सदस्य उनके निर्णयों की अवज्ञा कर सदन का त्याग नहीं करते । दूसरी ओर श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर के निर्णय की अवज्ञा तथा उनके विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव के पीछे राजनीतिक कारण थे । जिसके परिणामस्वरूप अप्रैल १९६० को विरोधी-दल और सभापति के बीच समझौता हुआ था । १९५८ के बाद परिषद् ~~अविश्वास~~ में विरोधी पक्ष की स्थिति पूर्व की अपेक्षा मजबूत हो गई थी । फलतः विरोधी दल के सदस्य सरकार पर अधिक दबाव डालने के उद्देश्य से तथा सरकार की नीतियों का विरोध करने की दृष्टि से सदन का त्याग करते थे ।

वस्तुतः जिस आधार पर सभापति की निष्पक्षता पर सन्देह किया जाता है, उसके निराकरण के लिए यह आवश्यक है कि वह दलीय उम्मीदवार न हो अथवा सभापति पद पर निर्वाचित होने के उपरान्त वह दल से सम्बन्ध विच्छेद कर ले ।

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० , सं० ७१, ८अप्रैल १९६०, पृ० ३८५
परिषद् की कार्यवाही प्रारम्भ होते ही कुछ सदस्यों ने सदन का त्याग किया ।

२. २ मार्च १९६० को सर्वश्री ए०जे०फरीदी, हृदयनारायण सिंह, शफीक अहमद खाँ तातारी, रामेश्वरसिंह, लक्ष्मीनारायण दीक्षित, रामनाथ नवलकिशोर गुरुदेव, इसहाक संभली, अब्दुर रऊफ ने यह अविश्वास का प्रस्ताव रखा कि श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर चूंकि परिषद् के सभापति पद के लिये अयोग्य हैं, अतः उनको सभापति पद से हटाया जाता है" -उ०प्र०विधानपरि०, सं०७१, पृ०
३ अक्टू०६०को भी सभापति के विरुद्ध अवि०प्र०को लाने की अनुमति दी गई थी

३. वही . उ०प्र०वि०परि०की कार्य०सं० ७४, पृ० १०-१७

सभापति के कार्य एवं अधिकार तथा उसकी स्थिति :-

संविधान तथा उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य प्रक्रिया नियमावली के अनुसार सभापति परिषद् की प्रत्येक बैठक का सभापतित्व करता है। सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति और उपसभापति की अनुपस्थिति में सभापति द्वारा नाम-निर्देशित चार सदस्यीय अधिष्ठाता मण्डल का वरिष्ठ सदस्य परिषद् का सभापतित्व करता है।

सभापति परिषद् की प्रक्रिया नियमावली के अन्तर्गत अपने कार्य अधिकारों का प्रयोग तीन आधारों पर करता है :-

१. सदन नेता के परामर्श से,

२. सदन की इच्छा अथवा उसकी अनुमति से,

३. स्वविवेक से।

सदन नेता के परामर्श से सभापति किसी विषय अथवा प्रस्ताव पर बहस के लिए तिथि और समय का निर्धारण करते हैं। उदाहरणार्थ राज्यपाल के अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों एवं अविलम्बनीय लोकमहत्व के विषय की चर्चा के लिए सदन नेता के परामर्श से तिथि,समय का निर्धारण।[1] सदन नेता के परामर्श से ही सभापति कार्य की किसी मद के किसी स्तर पर कार्य परामर्श-दात्री-समिति को निर्दिष्ट करते हैं।[2] इसी प्रकार उस स्थिति में जबकि नियमों के अधीन सरकारी कार्य को प्राथमिकता दी गई है तो उसको सचिव, विधान परिषद्में उसी क्रम से रखते हैं जैसा कि सभापति सदन के नेता के परामर्श से निश्चित करते हैं।[3]

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली-नियम १० और ११० (क)

२. वही, नियम २७

३. वही, नियम २२

सदन की अनुमति से सभापति सदन के निर्देशानुसार परिषद् की कार्य सूची पर दी हुई किसी मद या उसके भाग को निबटाने के लिए समय नियत करते हैं।[१] इसी तरह सदन के निर्णयानुसार एवं उसकी अनुमति से ही किसी सदस्य को निलम्बित अथवा सदन की सदस्यता से बहिष्कृत कर सकते हैं, किन्तु वह किसी सदस्य को जिसका व्यवहार उनकी राय में अशान्तिपूर्ण हो, सदन की अनुमति प्राप्त किये बिना परिषद् से बाहर चले जाने का आदेश दे सकते हैं।[२] कुछ ऐसे भी अधिकार हैं जिनका प्रयोग परिषद् की इच्छानुसार किया जाता है, किन्तु सभापति उन अधिकारों का प्रयोग स्वविवेक से भी कर सकते हैं। उदाहरणार्थ परिषद् में अशान्ति की अवस्था में सभापति स्वविवेक से अथवा परिषद् का मत लेकर परिषद् की बैठक को स्थगित कर सकते हैं।[३]

परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत सभापति को स्वविवेक से कार्य करने का अधिकार प्राप्त है।[४] उदाहरणार्थ किसी प्रश्न के रूप को नियमानुकूल बनाने के लिए उसमें संशोधन,[५] प्रश्न पूछने के तरीके[६] तथा विभाजन द्वारा मत लेने की रीति का निर्धारण[७] सभापति स्वविवेक से करते हैं।

यहाँ सभापति के प्रत्येक कार्य अधिकार का वर्णन करना लक्ष्य नहीं। विधान परिषद् की कार्य प्रक्रिया नियमावली के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण कार्यों के अतिरिक्त सभापति द्वारा दिए गए उन महत्वपूर्ण निर्णयों का विवेचन करना उद्देश्य है जिनके आधार पर उसकी वैधानिक तथा वास्तविक स्थिति को जाना

---

१. उ०प्र०विधान परि०की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमा०, नियम ५०(१)
२. वही, नियम ४१(२)
३. वही, नियम ४२
४. वही नियम ५५
५. वही, नियम १२४
६. वही, नियम १३०
७. वही, नियम, ५७(२)

जा सकता है ।

कार्य प्रक्रिया नियमावली के अन्तर्गत सभापति परिषद् की पुनरीक्षण समिति कार्य परामर्शदात्री समिति, याचिका समिति, विशेषाधिकार समिति तथा आश्वासन समिति को नियुक्त करते हैं ।[१] इनमें से पुनरीक्षण समिति तथा विशेषाधिकार समिति का सभापतित्व भी उन्ही के द्वारा किया जाता है । वह स्वविवेक से या परिषद् की इच्छा से परिषद् की किसी भी समिति को कोई कार्य सुपुर्द कर सकते हैं ।[२] इसी प्रकार वह परिषद् के समक्ष किसी दूसरे विषय को तदर्थ नियुक्त समिति को निर्देशित कर सकते हैं और ऐसे दूसरे आवश्यक निर्देश दे सकते हैं जो आवश्यक समझे जाते हों ।[३]

सदस्य के किसी प्रस्ताव अथवा संकल्प की ग्राह्यता की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति सभापति करते हैं । सभापति द्वारा स्वीकृत संकल्प ही सरकार को भेजा जा सकता है ।[४] अनेक ऐसे संकल्पों के उदाहरण हैं जिन्हें सभापति ने नियमानुकूल नहीं होने के कारण अस्वीकृत किया है । नियमों के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी सभापति किसी प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकते हैं ।[५]

कार्यस्थगन प्रस्ताव के सम्बन्ध में उसकी नियमानुकूलता का निश्चय सभापति द्वारा किया जाता है । वह किसी भी स्थगन प्रस्ताव को अनियमित बताकर उसे अस्वीकृत कर सकते हैं । ऐसे व्यक्तिगत विषयों से सम्बन्धित कार्यस्थगन प्रस्ताव को जिसका न्यायिक उपचार संभव हो, सभापति प्रस्तावित करने की अनुमति नहीं देते। उदाहरणार्थ २० दिसम्बर १९५८ को अब्दुर रऊफ के एक कार्य स्थगन प्रस्ताव को सभापति ने उपर्युक्त आधार पर प्रस्तावित करने की अनुमति नहीं दी थी ।[६]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नि०७५(१),पृ०१७

२. वही, नियम ७५ (१) (क)१, पृ० १७

३. वही, नियम ७६, पृ० १२

४. वही, नियम १३६, पृ० ३०

५. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०,खं० ७४, ६ अक्टूबर,१९६०,पृ० १०-१७

६. वही, खंड १८, ६अक्टूबर,१९५०, पृ० ५३०-५३१

सभापति द्वारा किसी स्थगन प्रस्ताव को अनियमित घोषित किये जाने के पश्चात् कोई सदस्य प्रस्ताव की आवश्यकता के कारणों को प्रस्तुत नहीं कर सकता।[१]

सभापति ही इसे निर्धारित करते हैं कि कोई भी विषय लोक महत्व का है या नहीं अथवा ग्राह्यता की शर्त को पूरा करता है या नहीं?[२]

संशोधन के सम्बन्ध में सभापति ऐसे संशोधनों की अनुज्ञा देने से इन्कार कर सकते हैं जो उनकी राय में तुच्छ अथवा अर्थहीन हो[३] किन्तु उन्हें उस संशोधन को चुनने का अधिकार है जो कि किसी विधेयक के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गए हैं[४]। सभापति एक से अधिक संशोधनों को एक साथ प्रस्तावित किये जाने एवं विचारार्थ लिए जाने का आदेश दे सकते हैं।[५] इसके अतिरिक्त यदि वह उचित समझते हों तो किसी खंड पर विचार स्थगित भी कर सकते हैं।[६]

उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त सभापति ऐसे सदस्य के व्यवहार की ओर, जो वाद-विवाद में बार-बार असंगत बातें करे या जो स्वयं अपने या अन्य सदस्यों द्वारा प्रयुक्त तर्कों की व्यर्थ पुनरावृत्ति करता रहे, परिषद् का ध्यान दिलाने के उपरान्त उस सदस्य को अपना भाषण बन्द कर देने की आज्ञा दे सकते हैं।[७] सभापति का यह भी अधिकार है कि वह किसी कार्य को किसी भावी दिन या समय अथवा उसी दिन किसी और समय के लिए बिना किसी चर्चा या मत के स्थगित कर सके।[८] इसके अतिरिक्त सभापति समय-समय पर समिति के

---

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्य, खंड ७४, ६ अक्टूबर १९५०, पृ० ५३०-५३१

२. कार्य प्रक्रिया नियमावली, नियम १७६(६), पृ० ३६

३. वही, नियम १७८, पृ० ३६

४. वही, १७८, पृ० ३६

५. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नि० ४०, पृ० १०

६. वही, नियम ~~१४~~ १८१, पृ० १३६

७. वही, नियम ~~११~~ ४०, पृ० २२१०

८. वही, नियम ~~४०~~ ५४ (२), पृ० १३

सभापति को ऐसे निर्देशदे सकते हैं जिन्हें वह उसकी प्रक्रिया और कार्य के संगठन के विनियमन के लिए आवश्यक समझे ।[१] इस सन्दर्भ में समिति की प्रक्रिया के विषय या अन्य विषय में कोई सन्देह उत्पन्न होने पर समिति की ~~प्रक्रिया के विषय या अन्य विषय में कोई सन्देह~~ उत्पन्न होने पर समिति के सभापति द्वारा विषय को परिषद् के सभापति को निर्दिष्ट किये जाने पर सभापति का निर्णय अन्तिम माना जायेगा ।[२]

परिषद् की बैठक चलते समय दर्शकों, पत्र-प्रतिनिधियों और सरकारी कर्मचारियों का प्रवेश सभापति द्वारा बनाये गये आदेशानुसार होता है ।[३] सभापति को परिषद् की बैठक के दौरान में किसी समय दर्शकों या पत्र-प्रतिनिधियों या दोनों को हटा देने का अधिकार है ।

सभापति को अधिकार है कि खड़े होने वाले सदस्यों में से किसको पहले बुलाया जाय । २३ जुलाई १९५८ को, राज्यपाल महोदय के सम्बोधन के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव के सम्बन्ध में श्री मदनमोहन, सदस्य विधान परिषद्, अपने विचार प्रकट कर रहे थे । भाषण की समाप्ति पर श्री मुहम्मद शाहिद फाखरी खड़े हुए और सभापति का ध्यान आकर्षित करते हुए बोले — जो लोग कई बार खड़े हों और सभापति उनको न बुलायें और जो न खड़ा हुआ हो उसको सभापति बुला दे तो मेरे ख्याल में यह ऐवान उसूल के खिलाफ है ।" इस पर श्रीमती अधिष्ठात्री (श्रीमती शांति देवी अग्रवाल) ने निर्णय देते हुए कहा" इस बात के लिए तो सभापति को अधिकार है कि किसको बुलाया जाय या किसको न बुलाया जाय ।"[३क]

प्रश्नों को उचित अथवा अनुचित कहने का अधिकार केवल सभापति को है । परिषद् की नियमावली के अनुसार सभापति प्रश्नों की ग्राह्यता पर निर्णय देते

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन निय०,नियम ६६(२),पृ०२२

२. वही, नियम ६६, पृ० १६

३. वही, नियम ७०, पृ० १६

३क. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ५८, अंक ३, २३ जुलाई १९५८,पृ० १५३

हैं । वह प्रश्न को स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं । २४ जुलाई १९५८ को प्रश्नोत्तर के समय कुंवर रणंजय सिंह द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध में मंत्री द्वारा उत्तर दिये जाने पर कि वह प्रश्न नहीं उठता, श्री मुहम्मद शाहिद फाखिरी ने आपत्ति प्रकट करते हुए कहा "जिन सवालों का जवाब यह दिया जाता है कि प्रश्न नहीं उठता है तो इसे मंत्री महोदय तय करते हैं अथवा माननीय सभापति तय करते हैं कि प्रश्न नहीं उठता है । इस आपत्ति पर सभापति ने निर्णय देते हुए कहा "यह सभापति को अधिकार है कि वह देखे कि जो प्रश्न किये गए हैं वे उचित हैं या नहीं और नियम के अन्दर आते हैं या नहीं । यह अधिकार मंत्री जी को नहीं है । अगर सभापति यह कह दे कि यह प्रश्न उचित है और इसका जवाब देना है तो मंत्री जी को जवाब देना पड़ेगा ।"[1]

<u>सभापति को अशिष्ट, असंसदीय तथा अपमानजनक शब्दों को कार्यवाही से निकालने का अधिकार :--</u>

११ सितम्बर, १९५९ को प्रश्नोत्तर के उपरान्त डा० ए०जे० फरीदी ने एक प्रश्न उठाते हुए सभापति से प्रार्थना की, जो कि सभापति द्वारा कार्यवाही से किसी शब्द को निकालने के सम्बन्ध में उठाई गई आपत्ति के सम्बन्ध में थी ।[2] नियम ७३ के आधार पर डा० फरीदी ने यह आपत्ति की थी कि इस नियम के अनुसार सभापति की व्यवस्था इस प्रकार की नहीं हो सकती । सभापति ने परिषद् के नियम ७१[3] और ७३ को उद्धृत करते हुए अपने निर्णय को उचित बताया ।

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ६२, अंक ६,२४ ~~अक्टूबर~~ जुलाई १९५८,पृ० १९२

२. वही, खं० ६८, पृ० २१०

३. परिषद् की प्रक्रिया नियमावली के नियम ७१(१) के अनुसार सचिव, परिषद् की कार्यवाहियों का एक वृत्त पत्र (जर्नल) रखते हैं जिसमें परिषद् की प्रत्येक दिन की कार्यवाहियों का संक्षिप्त विवरण उचित रूप से लिखा जाता है । इसी नियम के खंड(२) के अनुसार प्रत्येक बैठक के पश्चात् वृत्त पत्र सभापति द्वारा पुष्टि तथा उनके हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत किया जाता है और सभापति के हस्ताक्षर के पश्चात् वह परिषद् की कार्यवाहियों का अभिलेख (रैकर्ड) बन जाता है ।

नियम ७३ के अनुसार यदि सभापति के विचार में वाद-विवाद में ऐसा शब्द या ऐसे शब्द प्रयुक्त किये गए हैं जो मान हानिकारक या अशिष्ट अथवा असंसदीय या अभद्र हैं तो वह स्वविवेक से आदेश दे सकते हैं कि ऐसे शब्द परिषद् की कार्यवाही से निकाल दिये जायं ।

उसी दिन प्रश्नोत्तर के उपरान्त डा० फरीदी ने प्रश्न उठाया कि सभापति को दूसरे दिन किसी सदस्य के भाषण को कार्यवाही से निकालने का अधिकार नहीं है । कुछ चर्चा के उपरान्त सभापति ने पुन: नियम ७३ का उद्धरण देते हुए निर्णय दिया कि सभापति को किसी भी समय सदस्य द्वारा प्रयुक्त किसी शब्द को कार्यवाही से हटा देने का अधिकार है ।

सभापति को कार्य प्रक्रिया नियमावली के अन्तर्गत दिये गये अधिकारों के अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियां भी प्राप्त हैं ।[१] अवशिष्ट अधिकार के अन्तर्गत वह ऐसे सभी विषयों का विनियमन स्वविवेक से करता है जिनका उल्लेख परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली में नहीं है ।

सभापति की अवशिष्ट शक्तियों के आधार पर कभी कभी यह भ्रम होता है कि वह सदन से श्रेष्ठ है अथवा सदन का तानाशाह है । यह भ्रम उस समय और अधिक होता है जब सभापति द्वारा दी गई व्यवस्था पर सदस्यों को सदन में चर्चा करने की अनुमति नहीं मिलती । सदन श्रेष्ठ है अथवा सभापति, इसके स्पष्टीकरण के लिए सरसीताराम के मत का उल्लेख करना आवश्यक है । सरसीताराम के अनुसार सदन की सर्वोपरिता का अर्थ है सदन ने कुछ नियम बनाये हैं जिनके निर्देशानुसार सदन को कार्य करना आवश्यक है ।[२] इस दृष्टिकोण से सदन द्वारा निर्मित

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नि० ५५

२. उ०प्र०विधान परिषद् में सभापति पद से दिए गए निर्णयों के संकलन में उद्धृत, पृ० १०-११, उ०प्र०वि०परिषद् सचिवालय द्वारा प्रकाशित, १९६६

नियम के अन्तर्गत सभापति नियम ६६ में बंधा हुआ है । इस नियम के अनुसार सभापति की व्यवस्था पर सदन में चर्चा नहीं की जा सकती । निष्कर्ष यह कि सभापति सदन द्वारा निर्मित नियम के अन्तर्गत ही कार्य करता है ।

एक अन्य प्रश्न है कि जब सभापति की निष्पक्षता पर संदेह हो और सदन में उसकी व्यवस्था पर चर्चा करने का अधिकार नहीं हो, तो क्यों न उनके निर्णय के विरुद्ध सदन का त्याग किया जाय और यदि ऐसी स्थिति में सदस्य सदन का त्याग करते हैं एवं यदि उन्हें इसके लिए दंड मिलता है तो क्या यह उचित है । वस्तुत: सभापति दंड देने के कार्य को सदन की अनुमति पर करता है । सदन का कोई सदस्य (व्यवहार में सत्तारूढ़ दल का ही सदस्य) दंड प्रस्ताव रखता है और बहुमत द्वारा उसकी स्वीकृति मिलने पर सभापति सदन के निर्णयानुसार सदस्य को उनके निर्णय के विरुद्ध सदन का त्याग किए जाने के लिए दंड दंड देता है तो वह अनुचित नहीं है, क्योंकि वह सदन की आज्ञा मानने के लिए बाध्य है ।

सभापति के विरुद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता,[१] परन्तु प्रश्न यह है कि यदि सभापति के किसी कार्य से सदस्य अथवा सदन की मर्यादा अथवा विशेषाधिकार का हनन हो रहा हो तो उसके विरुद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न क्यों न उठाया जाय ? वस्तुत: सभापति से सदन की मर्यादा की रक्षा होती है । अत: इससे किसी ऐसे कार्य की आशा नहीं की जाती जो सदन की मर्यादा के विपरीत हो । पुन: यदि सभापति के विरुद्ध विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न को उठाने का अधिकार दिया जाता है तो प्रतिपक्षी का कोई न कोई सदस्य प्राय: इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित करते रहेंगे जिससे सदन की कार्यवाही में व्यवधान तथा उसकी मर्यादा को ठेस लग सकती है ।

---

१. उ०प्र० वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ६८, अंक ७, १० फरवरी, पृ० ५६५-५६६

उपर्युक्त सभी संदेहों के निराकरण का एक सीधा सा उपाय है कि यदि सभापति की निष्पक्षता अथवा योग्यता पर किसी प्रकार का संदेह हो तो, उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाया जा सकता है और प्रस्ताव बहुमत द्वारा पारित कर उसे पद से हटाया जा सकता है , परन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि जब सभापति अथवा उपसभापति के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाया गया हो, तो क्या उस समय उस सभापति अथवा उपसभापति को सदन का सभापतित्व करना चाहिए ? संविधान के अनुसार जब इस प्रकार के प्रस्ताव परिषद् के विचाराधीन हों, सभापति या उपसभापति सदन की बैठक का सभापतित्व नहीं कर सकता ।[१] लेकिन फिर प्रश्न है कि क्या उसे अपने विरुद्ध लाये गए प्रस्ताव की ग्राह्यता की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का निर्णय देना चाहिए । ११ सितम्बर १९५८ को[२] सभापति के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाया गया था । २४ सितम्बर १९५८[३] को उसी सभापति ने जिसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाया गया था, प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया । पुन: २ मार्च १९६०[४] को श्री धुलेकर को अयोग्य होने का अभियोग लगाकर विरोधी पक्ष ने अविश्वास के प्रस्ताव की सूचना दी थी, परन्तु सभापति ने उसे उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी । सभापति के उपर्युक्त निर्णय से तो यह संकेत मिलता है कि सभापति की स्थिति काफी सुदृढ़ है और वह अपने विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की अनुमति देने से इन्कार कर सकता है । इस सम्बन्ध में अक्टूबर १९६७ के अध्यक्षों के सम्मेलन में एक सुझाव रखा गया था । सुझाव में यह कहा गया था कि विधायिकाओं की प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों में आवश्यक संशोधन करके इस बात की व्यवस्था की जानी चाहिए कि अध्यक्ष के विरुद्ध लाये जाने वाले अविश्वास प्रस्ताव पर बहस हो सके, भले ही उसने सदन को स्थगित कर दिया हो । परन्तु ऐसा अविश्वास प्रस्ताव "पर्याप्त विचार विमर्श और उचित आधारों" की तालाश करने के बाद ही पेश

---

१. अनुच्छेद १८५, ~~उ०प्र०वि०परि० की कार्यवाही~~

२. उ०प्र०वि०परि० की कार्यवाही, खंड ५९,११ सितम्बर १९५२,पृ० ५६९

३. उ०प्र०वि०प० की कार्यवाही,खंड ६०,२४ सितम्बर १९५८,पृ० ३८३

४. उ०प्र०वि०परि०की कार्यवाही, खंड ७१, २ मार्च १९६०, पृ० २१-२३

किया जाना चाहिए ।[१]

निष्कर्ष :-

स्पष्ट है कि सभापति सदन से श्रेष्ठ नहीं है । वस्तुत: वह सदन का अंग है । सभापति को परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत कुछ मामलों में स्वविवेक ~~से हल करने~~ का अधिकार है जो उसे शक्तिशाली बना देता है, परन्तु यह हमेशा ध्यान में रहना चाहिए कि सभापति का स्वविवेक से कार्य करने का अधिकार भी परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत ही है जो परिषद् की मर्यादा, प्रतिष्ठा तथा कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने के लिए है । पुन: नियमावली में संशोधन लाकर उन अधिकारों पर अंकुश लाया जा सकता है, यदि सभापति उन अधिकारों का दुरुपयोग करता है । इस सम्बन्ध में अविश्वास के प्रस्ताव के संबंध में अध्यक्षों के सम्मेलन में दिए गए सुझाव जो ऊपर के संदर्भ में स्पष्ट किया जा चुका है, को कामयाब किया जा सकता है ।

पुन: सभापति को अधिकारों के मामले में निरंकुश अथवा तानाशाह नहीं कहा जा सकता । प्रथमत: धन विधेयक के सम्बन्ध में उसकी शक्ति शून्य है और विधेयक के धन सम्बन्धी मान्यता के निर्णय पर विवाद होने पर विधान सभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम तथा मान्य समझा जायेगा, न कि परिषद् के सभापति का । इसी और सदन में पुर:स्थापित किया गया कोई विधेयक संविधान के विरुद्ध है अथवा नहीं, यह निर्णय करना सभापति का कर्तव्य नहीं है । ३ फरवरी १९५० को[२] जब श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम (तत्कालीन सार्वजनिक निर्माण मंत्री) ने यह प्रस्ताव किया कि सन् १९५० ई० का उ०प्र० भाषा (बिक्स एण्ड टैक्सेस) विधेयक पर विचार किया जाय तो श्रीमती ऐजाज रसूल ने एक वैधानिक आपत्ति उठाते हुए कहा कि विधेयक संविधान के विरुद्ध है और इस पर उन्होंने सभापति की व्यवस्था मांगी । इस पर सभापति ने उपर्युक्त व्यवस्था दी थी ।

---

१. दिनमान, साप्ताहिक, टाइम्स ऑफ इंडिया प्रका०, अप्रैल १९६७, पृ० १३
२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खण्ड १४, अंक ५, ३ फरवरी १९५०, पृ० १५५-५२

संक्षेप में सभापति ने परिषद् के संरक्षक के रूप में कार्य किया है। उसने सारे कार्य-अधिकार का प्रयोग सदन की मर्यादा को कायम रखने तथा उसकी कार्य-प्रणाली को सुचारु रूप से चलाते रहने के लिए किया है। जब कभी भी सभापति और विरोधी सदस्यों में तनाव उत्पन्न हुआ है, अथवा सभापति के निर्णय की अवज्ञा या सदन का त्याग हुआ है, वह राजनीतिक कारणों से। सभापति के निर्वाचन की वर्तमान प्रणाली के आधार पर यह संभव नहीं कि वह दल से अछूता रहे। अत: विरोधीदल और सभापति के बीच तनाव कम करने का उपाय यह है कि वह दल से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर ले और निष्पक्ष रूप से कार्य करे। द्वितीयत: स्वविवेक से कार्य करते समय वह उचित-अनुचित का ध्यान रखे। तृतीयत: उप-सभापति पद पर प्रतिपक्ष की ओर से नाम निर्देशित सदस्य को निर्वाचित किये जाने की परम्परा कायम की जानी चाहिए।

अध्याय - ५

विधान परिषद् की समितियां :-

समितियों का गठन परिषद् के विभिन्न कार्यों के सम्पादन के लिए होता है। यह आवश्यक नहीं कि विधान सभा में जितनी समितियां हैं उतनी विधान परिषद् में भी हों। विधान मंडल के दोनों सदनों की कार्य पद्धति में थोड़ा सा अन्तर है। विधान सभा का वित्तीय कार्य भार परिषद् से अधिक है। फलत: सभा की लोक लेखा समिति तथा प्राक्कलन समिति जैसी समितियां परिषद् में नहीं है।

सदस्यता के आधार पर ~~परिषद् की~~ समितियों को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है। प्रथम प्रकार की समितियां वे हैं जिनमें केवल परिषद् के ही सदस्य हैं। ऐसी समितियों में सदन की वार्षिक समितियां तथा प्रवर समिति हैं। दूसरे प्रकार की समितियां वे हैं जिनमें विधान सभा और विधान परिषद् दोनों के सदस्य हैं। ऐसी समितियों में स्थायी समितियां और संयुक्त प्रवर समिति हैं। तीसरे प्रकार की समितियां वे हैं जो मुख्यतया विधान सभा की समितियां हैं परन्तु उन समितियों में विधान परिषद् के सदस्यों का भी प्रतिनिधित्व रहता है। लोक लेखा समिति[1] तथा प्रतिनिहित विधायन समिति तीसरे प्रकार की समितियों के अन्तर्गत आते हैं। चौथे प्रकार की वे समितियां हैं जो विधानमंडल के किसी सदन की समिति नहीं हैं परन्तु उनमें परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन किया जाता है। उदाहरणार्थ विश्वविद्यालयों की समितियां एवं इसी प्रकार की अन्य समितियां।

---

१. १९६१ के पूर्व सभा की लोक लेखा समिति में परिषद् के सदस्य नहीं होते थे।

समिति के सदस्यों की नियुक्ति परिषद् द्वारा प्रस्ताव पारित करके अथवा सभापति द्वारा नाम निर्दिष्ट करके जैसी भी दशा हो होती है। यदि कोई सदस्य समिति की लगातार दो या दो से अधिक बैठकों मे समिति के सभापति की अनुज्ञा बिना अनुपस्थित रहता है, तो सदन प्रस्ताव पारित कर उसे समिति की सदस्यता से वंचित कर सकता है, किन्तु सभापति अपने द्वारा नियुक्त सदस्य (जिसे सभापति स्वयं करता है) को स्वविवेक से हटा सकता है।

परिषद् की नियमावली के अनुसार समिति का सभापति, जब तक कोई अन्यथा उपबन्ध न हो,[१] परिषद् के सभापति द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किये जाते हैं, किन्तु यदि उप सभापति किसी समिति के सदस्य हैं तो वे उस समिति के सभापति नियुक्त होते हैं।[२]

बैठक :- समिति की बैठक उस समय हो सकती है जब परिषद् की बैठक हो रही हो, परन्तु परिषद् में किसी प्रस्ताव पर विभाजन की माँग होने पर समिति का सभापति समिति की कार्यवाही को ऐसे समय तक के लिए निलम्बित कर सकता है जो उसकी राय में सदस्यों को विभाजन में मतदान करने का अवसर देने के लिए पर्याप्त हो।[३]

समिति की बैठक गोपनीय होती है। साक्ष्य, प्रतिवेदन और कार्यवाहियाँ तब तक गोपनीय समझी जाती हैं जब तक कि वह सदन की मेज पर रख नहीं दी जातीं। सभापति के आदेश से ऐसा साक्ष्य औपचारिक रूप से मेज पर रखे जाने से पहले परिषद् के सदस्यों को गोपनीय रूप से वितरित किया जाता है।

---

१. नियम पुनरीक्षण समिति तथा विशेषाधिकार समिति के सभापति परिषद् के सभापति होते हैं।

२. विधान परिषद् की नियमावली, नियम ८०, पृ० १६

३. विधान परिषद् की नियमावली, नियम ८७, पृ० १६

साधारणतया किसी समिति की बैठक विधान भवन में होती है किन्तु आवश्यकता होने पर बैठक के स्थान को सभापति के निर्णयानुसार अन्यत्र भी निश्चित किया जा सकता है।

गणपूर्ति :-- परिषद् की समिति की बैठक की कार्यवाही के लिए समिति के लगभग एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है।[१] गणपूर्ति के अभाव में समिति का सभापति गणपूर्ति पूरा होने के समय तक अथवा किसी अगले दिन तक के लिए बैठक को स्थगित कर देते हैं।

मतदान :--किसी समिति की किसी बैठक में समस्त प्रश्नों का निर्धारण उस बैठक में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से होता है।[२] परन्तु यदि किसी विषय पर समान मतदान किया गया हो तो समिति के सभापति को दूसरा या निर्णायक मत देने का अधिकार है।

समितियाँ :-- कोई भी समिति किन्हीं ऐसे विषयों की जो उसे निर्देशित किये जायँ, जाँच करने के लिए एक या अधिक उपसमितियाँ नियुक्त कर सकती हैं। इनमें से प्रत्येक उपसमिति को अविभक्त समिति की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इन समितियों के प्रतिवेदन सम्पूर्ण समिति की किसी बैठक में अनुमोदित होने के पश्चात् सम्पूर्ण समिति के प्रतिवेदन समझे जाते हैं।[३]

समिति का प्रतिवेदन :--यदि परिषद् ने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कोई समय नियत नहीं किया है, उस स्थिति में विषय को समिति में निर्दिष्ट किये जाने के दिनांक से दो महीने के भीतर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित

---

१. विधान परिषद् की नियमावली, नियम ८१(१), पृ० १६

२. वही, नियम ८३, पृ० १६

३. वही, नियम ८५(१), पृ० १६

है ।[१] किन्तु परिषद् प्रस्ताव पारित कर किसी समिति के प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के समय को बढ़ा भी सकती है ।

प्रतिवेदन समिति के सभापति या समिति के किसी सदस्य द्वारा परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । कोई सदस्य यदि चाहे तो बहुमत द्वारा स्वीकृत प्रतिवेदन पर विमति टिप्पणी देकर हस्ताक्षर कर सकता है, परन्तु सभापति के इसके विपरीत अनुज्ञा पर वह ऐसा नहीं कर सकता है ।[२]

परिषद् की वार्षिक समितियाँ :- वार्षिक समितियों से तात्पर्य उन समितियों से है जिनका संगठन प्रत्येक पञ्ची-वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में हो जाता है । ऐसी समितियों का कार्यकाल सामान्यतया १ वर्ष का होता है । जब तक नवीन समितियाँ गठित नहीं होती हैं, तब तक पुरानी समितियाँ ही कार्य करती रहती हैं । ऐसी स्थिति में कभी-कभी इन वार्षिक समितियों का कार्यकाल बढ़ भी जाता है । परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत निम्नलिखित वार्षिक समितियों का उल्लेख है :-

(१) आश्वासन समिति
(२) विशेषाधिकार समिति
(३) याचिका समिति
(४) कार्य परामर्शदात्री समिति
(५) नियम पुनरीक्षण समिति

आश्वासन समिति :-

परिषद् की आश्वासन समिति का गठन सर्वप्रथम १९५८ में हुआ था । विधान परिषद् सदस्य श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार ने १९५७ में सरकार द्वारा दिये गए आश्वासनों को कार्यान्वित करने के लिए एक आश्वासन समिति के निर्माण के लिए परिषद् में प्रस्ताव रखा था । २७ मार्च १९५८ को विधान परिषद्

---

१. विधान परिषद् की नियमावली, नियम ९६(१), पृ० २१
२. वही, नियम ९६(३), पृ० २१

द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव पारित किया गया था, लेकिन परिषद् का सत्रावसान हो जाने के कारण परिषद् की आश्वासन समिति का निर्माण ३१ जुलाई १९५८ को किया गया ।[१] विधान सभा की आश्वासन समिति का निर्माण लगभग तीन साल पूर्व अक्टूबर १९५५ में ही हो गया था ।[२]

परिषद् की कार्य संचालन तथा प्रक्रिया नियमावली के अनुसार आश्वासन समिति का कार्य मंत्रियों द्वारा समय-समय पर सदन के अन्दर दिये गए आश्वासनों को शीघ्र कार्यान्वियन के लिए प्रयास करना है ।[३]

परिषद् की आश्वासन समिति में ११ सदस्य होते हैं । इन सदस्यों की नियुक्ति परिषद् का सभापति स्वविवेक से करते हैं।दोनों सदनों की समितियों के सदस्य पुनर्नियुक्त हो सकते हैं, किन्तु व्यवहार में कुछ ही सदस्य ~~पुनः प्रयत्न करते हैं और~~ पुनर्नियुक्त हो पाते हैं । समिति के गठन के समय सभापति इस बात का प्रयत्न करते हैं कि सदन के विभिन्न राजनीतिक दलों को उनकी सदस्य संख्या के अनुपात में समिति में प्रतिनिधित्व मिल सके । व्यवहार में सत्तारूढ़ दल का ही समिति में बहुमत रहता है ।

समिति का कार्यकाल समिति के गठन के दिन से एक वर्ष है । यह कोई आवश्यक नहीं कि वर्ष के जिस तिथि को समिति का गठन किया जाय दूसरे वर्ष उसी तिथि को समिति का कार्यकाल समाप्त हो और उसी दिन दूसरे समिति का निर्माण हो ।[४]

---

१. समिति का प्रथम प्रतिवेदन, पृ० १

२. सईद मोहम्मद-रोल ऑफ दि कमिटीज इन यू०पी० लेजिस्लेचर, पृ० १९६

३. उ०प्र०वि०प० की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नियम ७५,पृ० १७

४. १९६०-६१ की आश्वासन समति का गठन जनवरी १९६० में हुआ था - (द्वितीय प्रतिवेदन - १९६१, पृ०-१)
१९६२ - ६३ की आश्वासन समिति का गठन १५मई १९६२ को हुआ था - चतुर्थ प्रतिवेदन मई १९६३, पृ० १ , तथा १९६४-६५ साल के लिए आश्वासन समिति का गठन १५ मई १९६४ को हुआ था - आश्वासन समिति का छठा प्रतिवेदन- [illegible] १९६[illegible] भूमिका ।

विधान परिषद् की आश्वासन समिति के कार्यकाल की तुलना में विधान सभा के आश्वासन समिति का गठन प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ में होता है और ३१ मार्च को इसका कार्यकाल समाप्त हो जाता है। सभा की आश्वासन समिति के कार्यकाल को परिषद् की आश्वासन समिति के कार्यकाल की तरह इसकी नियुक्ति के दिन से गिना नहीं जाता। सभा की समिति कभी-कभी अगस्त और सितम्बर में गठित हुई और एक वर्ष का कार्यकाल पूरा होने के पहले ३१ मार्च को वे समितियाँ समाप्त हो गईं।[१] इसके विपरीत परिषद् की आश्वासन समिति गठित होने के दिन से पूरे एक वर्ष तक बनी रहती है।

यद्यपि आश्वासन समिति का गठन परिषद् का सभापति करते हैं, किन्तु समिति का सभापति विरोधी दल के सदस्यों में से चुना जाता है।[२] विधान सभा की आश्वासन समिति का सभापति भी विरोधीदल के सदस्यों में से ही लिया जाता है।

परिषद् की आश्वासन समिति का कार्य-अधिकार सभा की आश्वासन समिति के समान होते हुए भी, दोनों सदनों की आश्वासन समितियों की कार्य-प्रक्रिया में थोड़ा सा अन्तर है। विधान सभा में दिये गए आश्वासनों को सचिवालय के कर्मचारी द्वारा सभा की हस्तलिखित कार्यवाही से चयन किया जाता है। सभा की समिति का कार्य मंत्री द्वारा दिये गए उत्तरों की जांच करना है। जिन आश्वासनों को कार्यान्वित किया जा चुका है तथा जिनका कार्यान्वयन नहीं हुआ है, दोनों की जांच सभा की आश्वासन समिति करती है। सभा की आश्वासन समिति ने आश्वासनों की जांच के लिए ~~की~~-३४ सूत्रीय सूची बना रखा है। इस सूची में उल्लिखित पंक्तियों को आश्वासनों की जांच के लिए आधार बनाया जाता है। उदाहरणार्थ "मैं इस मामले को देखूंगा" "मैं इस पर विचार करूंगा" आदि जैसे वाक्य ३४ सूत्रीय सूची में वर्णित हैं। इस ३४ सूत्रीय

---

१. सईद मोहम्मद-रोल ऑफ कमिटीज इन यू०पी०, (मिमियोग्राफ) पृ० ४१८

२. वही।

सूची मै उस प्रकार के वाक्यों का उल्लेख है जिनका प्रयोग मंत्री सभा में करते हैं तथा जिनसे आश्वासन दिये जाने का संकेत मिलता है ।

विधान परिषद् की आश्वासन समिति ने भी आश्वासनों की जांच के लिए कुछ वाक्यों को निर्धारित किया है, किन्तु वे वाक्य सभा की आश्वासन समिति के चौंतीस सूत्रीय वाक्यों से भिन्न हैं । परिषद् की आश्वासन समिति ने १३ सितम्बर १९५८ की बैठक में निम्नलिखित वाक्यों अथवा मुहावरों को आश्वासन की जांच के लिए स्वीकृत किया था ।

(१) विषय वस्तु के विचार के लिए आश्वासन,
(२) सूचना देने के लिए आश्वासन,
(३) किसी मामले अथवा विषय पर कार्यवाई करने के लिए आश्वासन,
(४) किसी मामले अथवा विषय को व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण या अन्वेषण करने के लिए आश्वासन,
(५) किसी विषय पर कानून बनाने के लिए आश्वासन,
(६) परिषद् के सामने किसी विषय के विचार के लिए रखे जाने के लिए आश्वासन,
(७) किसी विषय विशेष से सम्बन्धित कागजात को सदन की मेज पर रखने के लिए आश्वासन,
(८) किसी कार्य को करने के लिए सभापति द्वारा निर्देशन दिया जाना,

आश्वासन समिति की उपसमितियां :-

परिषद् की आश्वासन समिति प्रत्येक वर्ष गठित होने के बाद दो उपसमितियों में विभाजित हो जाती हैं । प्रत्येक उपसमिति में पांच सदस्य होते हैं । इन पांच सदस्यों में एक संयोजक भी होता है । संयोजक की नियुक्ति समिति का सभापति करता है । इन दो उपसमितियों में एक उपसमिति का कार्यकार्यालय द्वारा एकत्र किये गए आश्वासनों की जांच करना है कि वास्तव में वे आश्वासन हैं अथवा

नहीं । दूसरे उपसमिति का कार्य विभागों से प्राप्त उत्तरों की जांच तथा छान-बीन करना है तथा आश्वासनों को यथाशीघ्र कार्यान्वियन के लिए प्रयास करना है ।

उपर्युक्त कार्यों का सम्पादन विधान सभा में सभा की सम्पूर्ण आश्वासन समिति द्वारा किया जाता है ।

परिषद् की आश्वासन समिति के कार्यालय में दो सहायक होते हैं । ये सहायक परिषद् की प्रकाशित कार्यवाही से आश्वासनों को चयन करते हैं । सहायकों द्वारा प्रकाशित कार्यवाही से आश्वासनों को चयन किये जाने के बाद उन्हें आश्वासन समिति की एक उपसमिति को निर्दिष्ट किया जाता है । यह उपसमिति ऊपर वर्णित आश्वासनों की जांच के मापदण्ड के आधार पर यह निर्णय करती है कि कर्मचारियों द्वारा संकलित आश्वासन वास्तव में आश्वासन है अथवा नहीं । कर्मचारियों द्वारा संकलित आश्वासनों को उपसमिति बहिष्कृत कर सकती है, यदि वे समिति के विचार मे सही रूप से आश्वासन नहीं हैं । उन सभी आश्वासनों को जिसे उपसमिति एकमत होकर आश्वासन निश्चित करती है, उन्हें 'अ' श्रेणी के आश्वासन के अन्तर्गत रखा जाता है । इसके विपरीत उन आश्वासनों को जिनके आश्वासन होने के सम्बन्ध में उपसमिति के सदस्यों में मत-भेद है, 'ब' श्रेणी के आश्वासन के अन्तर्गत रखे जाते हैं । 'ब' श्रेणी के आश्वासन को जो संदेहात्मक आश्वासन हैं, सम्पूर्ण आश्वासन समिति के पास निर्णय के लिए भेजे जाते हैं ।

आश्वासनों की जांच तथा निर्णय होने के बाद उन्हें सम्बन्धित विभाग के पास आवश्यक कार्यवाही के लिए भेज दिया जाता है । सम्बन्धित विभाग से तीन महीने के भीतर उत्तर प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती है, परन्तु व्यवहार में शायद ही सम्बन्धित विभाग तीन माह के भीतर उत्तर दे पाता है ।

शासन से समुचित उत्तर प्राप्त करने के बाद, द्वितीय उपसमिति उन उत्तरों पर विचार करने के लिए समय-समय पर बैठती है । यह उपसमिति शासन द्वारा दिये गए उत्तरों को किस हद तक आश्वासनों का कार्यान्वियन समझा जाय, इसका निर्णय करती है । इसके अतिरिक्त जिन मामलों में आश्वासनों को कार्यान्वित करने के लिए आगे कार्यवाही की आवश्यकता होती है, इसका निर्णय भी यह उपसमिति करती है । 'अ' श्रेणी में रखे गये आश्वासनों की जांच के लिए उन्हें सम्पूर्ण आश्वासन समिति में विचारार्थ भेजा नहीं जाता । अत: 'अ' श्रेणी के आश्वासन के सम्बन्ध में उपसमिति का निर्णय ही अन्तिम समझा जाता है ।

उपसमितियों के कार्यों में विभाजन होते हुए भी यह आवश्यक नहीं कि एक उपसमिति जिस कार्य को करती है, उसी कार्य को सदा वह करती रहे । उदाहरणार्थ यदि नवीन आश्वासन संकलित नहीं किये गये हैं, तो जो उप-समिति आश्वासनों का संकलन अथवा चयन करती है, वह आश्वासन के सम्बन्ध में शासन द्वारा दिये गए उत्तरों की जांच भी कर सकती है । निष्कर्ष यह कि दोनों उपसमितियों के कार्यों के विभाजन के सम्बन्ध में कोई कठोर नियम नहीं है ।

समिति का प्रतिवेदन कार्यालय द्वारा तैयार किया जाता है और सम्पूर्ण समिति के समक्ष विचारार्थ रखा जाता है । सम्पूर्ण समिति द्वारा प्रतिवेदन को स्वीकार किये जाने के बाद समिति के सभापति द्वारा यह उसके द्वारा अधिकृत समिति के किसी सदस्य द्वारा परिषद् में उसे प्रस्तुत किया जाता है । प्रतिवेदन पर किसी सदस्य को विमति टिप्पणी लिखने की अनुमति नहीं दी जाती ।

आश्वासन समिति के प्रतिवेदन पर सदन में वाद-विवाद नहीं किया जाता । परिषद् द्वारा प्रतिवेदन पर बहस नहीं किये जाने के कारण समिति

की सतत संस्तुति तथा दबाव के बावजूद सरकार उन आश्वासनों के कार्यान्वियन के लिए ध्यान नहीं देती है ।

यद्यपि परिषद् की आश्वासन समिति का निर्माण १९५८ में हुआ था तथापि इसने प्रारम्भ से[१] परिषद् में दिये गए आश्वासनों की जांच करना प्रारम्भ किया था । समिति ने ३ जून १९५९ तक के प्राप्त उत्तरों के आधार पर प्रथम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था । इस काल तक परिषद् में ३१९ आश्वासन सरकार द्वारा दिये गये थे । समिति के प्रतिवेदन को तैयार किये जाने के समय तक १०९ आश्वासन कार्यान्वित किये जा चुके थे ।[२]

समिति का दूसरा प्रतिवेदन जुलाई १९५२ से फरवरी १९५९ तक सदन में दिये गए आश्वासनों से सम्बन्धित है । इस काल में समिति ने उन आश्वासनों को भी जांच के लिए लिया था जो पुराने समिति[३] द्वारा विचारार्थ लिया गया था । इस प्रकार के आश्वासनों की संख्या १८७ थी । १८७ पुराने आश्वासनों के अतिरिक्त समिति ने १०५ नये आश्वासनों को भी विचारार्थ लिया था ।

३१ जनवरी १९६१ तक प्राप्त उत्तरों के आधार पर समिति के प्रतिवेदन के अनुसार २०० आश्वासनों को कार्यान्वित किया जा चुका था, ८२ आश्वासनों का कार्यान्वियन नहीं हुआ था तथा ५ आश्वासनों के सम्बन्ध में सरकार की ओर से किसी भी प्रकार का उत्तर नहीं दिया गया था । समिति के प्रतिवेदन के अनुसार सदन में दिये गए अनेक आश्वासनों के सम्बन्ध में सात वर्ष का समय व्यतीत होने पर भी उनका कार्यान्वियन नहीं किया जा सका था ।[४]

---

१. ५ जनवर मई १९५२ से ३० सितम्बर १९५२ तक

२. प्रथम प्रतिवेदन- मार्च १९६०, पृ० -च

३. पुराने समिति से तात्पर्य ५ मई १९५२ के पूर्व के परिषद् की आश्वासन समिति से है ।

४. द्वितीय प्रतिवेदन, अप्रैल १९६१, पृ०- ग

१६६१-६२ के वित्तीय वर्ष के लिए आश्वासन समिति का गठन १ फरवरी १६६१ को १ वर्ष के लिए हुआ था, किन्तु इसका कार्यकाल १५ मई १६६२ तक बढ़ा दिया गया था।[1] समिति ने ४७० आश्वासनों को विचारार्थ लिया था। इनमें से २४५ आश्वासनों को कार्यान्वित किया गया था तथा ५ मई १६६० तक २२५ आश्वासनों का कार्यान्वयन नहीं हुआ था।[2]

परिषद् की आश्वासन समिति का चौथा प्रतिवेदन मई १६६३ में प्रस्तुत किया गया था। चौथे प्रतिवेदन में २४ अगस्त १६६२ तक परिषद् में दिये गए आश्वासनों का उल्लेख है। समिति ने ८४३ नवीन एवं पुराने आश्वासनों का परीक्षण किया था। इनमें से ३६५ आश्वासनों को समिति ने कार्यान्वित पाया तथा ३७ आश्वासनों को अकार्यान्वित। समिति के प्रतिवेदन के अनुसार २०३ आश्वासनों के सम्बन्ध में शासन से कोई उत्तर प्राप्त नहीं किया जा सका था। १६० आश्वासनों की जाँच के लिए समिति प्रारम्भिक कार्यवाही नहीं कर पायी थी तथा ४८ आश्वासनों को अन्य कारणवश समिति द्वारा समाप्त कर दिया गया था।[3]

इस प्रकार समिति ने ४८० आश्वासनों के कार्यान्वयन के लिए विचारार्थ लिया था। इनमें से ३६३ आश्वासन विचाराधीन थे जिन पर उत्तराधिकारी समिति द्वारा कार्यवाही होना था।

परिषद् की आश्वासन समिति का पाँचवां प्रतिवेदन १८ जनवरी १६५६ से नवम्बर १६६२ तक परिषद् में दिये गए आश्वासनों से सम्बन्धित है। प्रतिवेदन के अनुसार समिति ने ३६३ पुराने विचाराधीन आश्वासनों तथा १२७ नये आश्वासनों को विचारार्थ लिया था। प्रतिवेदन के अनुसार ३८० आश्वासन

---

१. तृतीय प्रतिवेदन, मई १६६२, भूमिका

२. वही

३. चतुर्थ प्रतिवेदन, मई १६६३, भूमिका

अभी भी कार्यान्वित होने के लिए विचाराधीन पड़े हुए थे।

उपर्युक्त वार्षिक प्रतिवेदनों के अतिरिक्त समिति द्वारा ६ विशिष्ट प्रतिवेदन भी प्रस्तुत किये गये थे। विशिष्ट प्रतिवेदन समिति द्वारा विभिन्न स्थानों और प्रोजेक्टों के निरीक्षण के बाद तैयार किया गया था। भगीरथ, गुरगांव, रंगवारी, रिहन्द डैम आदि स्थानों के निवास के सम्बन्ध में सरकार द्वारा दिए गए आश्वासनों का कार्यान्वियन कहां तक हो सका था, इसकी जानकारी के लिए समिति ने इन स्थानों का निरीक्षण किया था।

समीक्षा :—परिषद् की आश्वासन समितियों की भी वही त्रुटियां हैं जो सभा की आश्वासन समिति की त्रुटियां हैं। परिषद् की आश्वासन समिति द्वारा स्वीकृत वर्तमान प्रक्रिया भी दोषपूर्ण है।

परिषद् की आश्वासन समिति का गठन काफी विलम्ब से होने के कारण आश्वासन सम्बन्धी कार्यों की जांच अथवा उनके कार्यान्वियन के प्रयास नहीं हो सका। वर्तमान समय में भी परिषद् की आश्वासन समिति के कार्य परिषद् के वर्तमान कार्य से ४ वर्ष पीछे है।

परिषद् की कार्यवाही तत्क्षण नहीं प्रकाशित होने के कारण समिति सरकार द्वारा दिये गये आश्वासनों की तिथि से दो अथवा तीन वर्ष बाद जांच करती है। इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए परिषद् की आश्वासन समिति ने सभा की आश्वासन समति की प्रक्रिया का अनुकरण करने का निश्चय किया है जहां आश्वासनों को टंकित हस्तलिखित कार्यवाहीसेसंकलित करने की प्रक्रिया है, बनिस्बत इसके कि संकलन के लिए कार्यवाही के प्रकाशन के लिए प्रतीक्षा की जाय।[१]

---

१. सचिव, उ०प्र० विधान परिषद् से साक्षात्कार के आधार पर।

प्रतिवेदन के अनुसार सरकार द्वारा समिति को सूचना विलम्ब से दिये जाने तथा आश्वासनों का कार्यान्वियन विलम्ब से किये जाने के कारण समिति सरकार का आलोचक रही है। समिति ने प्रतिवेदनों में कई ऐसे आश्वासनों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनका वर्षों बाद भी कार्यान्वियन नहीं किया जा सका था। उदाहरणार्थ २४ मार्च १९५३ को स्वायत्त शासन मंत्री ने बांदा जिले के पाठा क्षेत्र में उचित पेय जल की व्यवस्था किये जाने का आश्वासन दिया था, जो ७ वर्ष बाद १९६० तक भी कार्यान्वित नहीं हो सका था।[१] समिति की द्वितीय प्रतिवेदन में इस उदाहरण का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार २४ फरवरी १९५६ को तत्कालीन शिक्षामंत्री द्वारा ५०० जूनियर हाई स्कूल खोले जाने का आश्वासन दिया गया था किन्तु १९६२ तक इस आश्वासन को कार्यान्वित नहीं किया जा सका था।[२]

आश्वासनों के कार्यान्वयन में अत्यधिक विलम्ब से आश्वासन समिति की उपयोगिता पर संदेह उत्पन्न होता है। अधिक समय बीत जाने पर भी यदि आश्वासनों का उचित रूप से कार्यान्वयन नहीं हो पाता तो वे आश्वासन व्यर्थ हो जाते हैं।

वर्तमान समय में समिति पुराने आश्वासनों के बोझ से दबी है, यद्यपि उनमें से बहुत से आश्वासनों के तीन चार वर्ष बीत जाने के कारण उनकी उपयोगिता नहीं रह गयी है। अतः विचाराधीन आश्वासनों को समिति द्वारा बदलती हुई परिस्थिति में जांच होना चाहिए तथा केवल उन्हीं आश्वासनों के कार्यान्वयन के लिए प्रयास किया जाना चाहिए जो वस्तुतः मुख्य एवं महत्वपूर्ण हैं।

आश्वासनों को परिचय की हस्तलिखित कार्यवाही से संकलित किये जाने की नवीन परम्परा से समिति के कार्य की गति में तीव्रता आने की आशा है।

---

१. द्वितीय प्रतिवेदन, पृ० च

२. वही, पृ० (ख)

विशेषाधिकार समिति :-

परिषद् की वार्षिक समितियों में विशेषाधिकार समिति भी है। विशेषाधिकार समिति का उद्देश्य ऐसी विशेषाधिकार की अवहेलनाओं की जांच करना है जो उसे निर्देशित की गई हों। यह समिति अवहेलना किये जाने के लिए, यदि अवहेलना की गई हो, तो प्रतिकार या दण्ड की भी सिफारिश कर सकती है।

परिषद् की विशेषाधिकार समिति में सभापति को छोड़ कर शेष १० सदस्य होते हैं। परिषद् का सभापति समिति का पदेन सभापति होता है।

समिति के सदस्यों की नियुक्ति प्रत्येक पंचीवर्ष के प्रथमसत्र के आरम्भ में परिषद् के सभापति द्वारा होता है।[१] सभापति की इच्छा पर सदस्य दूसरे कार्यकाल के लिए पुनर्नियुक्त हो सकते हैं।

परिषद् की विशेषाधिकार समिति में विशेषाधिकार के प्रश्न को उठाने की प्रक्रिया सभा की विशेषाधिकार समिति की प्रक्रिया के समान है।

विधान परिषद् के अभिलेख से ज्ञात होता है कि परिषद् में उठाये गये विशेषाधिकार के प्रश्नों की संख्या सभा से कम है। दो - एक अपवादों को छोड़कर शेष विशेषाधिकार के प्रश्न को नियमानुकूल नहीं होने के कारण अथवा यथेष्ट प्रमाण के अभाव में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी गई।

'विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया गया प्रथम मामला परिषद् के एक सदस्य द्वारा[२] 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' के विरुद्ध उठाये गये प्रश्न से सम्ब-

---

१. विधान परिषद की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नियम ७५, पृ०१७

२. हिन्दुस्तान दि स्टैन्डर्ड पर विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन, १६६० ई०
श्री राम कुमार शास्त्री

न्धित था । इस समाचार पत्र ने ७ अगस्त १६६० के समाचार पत्र में परिषद् के सभापति के आचरण पर आक्षेप किया था । समाचार पत्र के अतिरिक्त सर्वश्री ए०जे० फरीदी, कन्हैयालाल गुप्त, महाराज सिंह भारती और जयबहादुर सिंह (सभी विधान परिषद् सदस्य) के विरुद्ध भी विशेषाधिकार की अवहेलना का आरोप लगाया गया था । इन सदस्यों के विरुद्ध सभापति के आचरण पर आक्षेप के समाचार समाचार पत्र को भेजे जाने का आरोप लगाया था ।

विशेषाधिकार समिति ने ३० नवम्बर १६६० से ३ जुलाई १६६२ तक की अपनी ७ बैठकों में उपर्युक्त प्रश्न की जांच की तथा १७ दिसम्बर १६६२ को उसने परिषद् में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया । पर्याप्त प्रमाण के अभाव में समिति ने उपर्युक्त प्रश्न को समाप्त करने के लिए संस्तुति की थी ।[१]

विशेषाधिकार की अवहेलना का दूसरा प्रश्न १६६१ में विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया गया था । मूलत: अवहेलना का प्रश्न विधान सभा में श्री गौरीशंकर राय, विधान सभा सदस्य द्वारा लखनऊ विश्वविद्यालय के शिक्षक संघ के विरुद्ध लाया गया था । लखनऊ विश्वविद्यालय के शिक्षक संघ ने विधान सभा के कुछ सदस्यों द्वारा सदन में दिये गए भाषणों पर आक्षेप करते हुए प्रस्ताव पारित किया था । अत: इस प्रश्न को विशेषाधिकार की अवहेलना समझकर इसकी जांच तथा प्रतिवेदन के लिए सभा की विशेषाधिकार समिति को सुपुर्द किया गया था परिषद् के एक सदस्य भी जो लखनऊ विश्वविद्यालय के शिक्षक संघ के सदस्य थे उपर्युक्त मामले में सम्मिलित थे । अत: सभा की के नियम ८० के अन्तर्गत विधान परिषद् सदस्य के विरुद्ध उठाये गए विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न की जांच तथा आवश्यक कार्यवाही के लिए परिषद् की विशेषाधिकार समिति के सुपुर्द कर दिया गया ।

---

१. हिन्दुस्तान स्टैन्डर्ड के मामले पर विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन-१६६०

विधान सभा का सत्रावसान हो जाने के कारण, विशेषाधिकार समिति के प्रतिवेदन को सभा में विचारार्थ रखा नहीं जा सका । परिणामत: उपर्युक्त अवहेलना का प्रश्न अपने आप समाप्त हो गया । इसी प्रकार परिषद् की विशेषाधिकार समिति ने यह संस्तुति की कि कोई भी कार्यवाही इस मामले में वांछनीय नहीं है, क्योंकि प्रश्न जो मूलत: विधान सभा में उठाया गया था, समाप्त हो चुका है ।"[१] अत: परिषद् सदस्य के विरुद्ध भेजा गया अवहेलना का प्रश्न भी समाप्त कर दिया गया ।

१९५२ से १९६२ के बीच केवल एक ही विशेषाधिकार के प्रश्न के संबंध में परिषद् की विशेषाधिकार समिति ने दण्ड के लिए संस्तुति की थी । वस्तुत: परिषद् द्वारा कुछ ही विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न समिति को निर्दिष्ट किये जाने के कारण समिति कार्य के अभाव में प्राय: बेकार रही ।

विधान परिषद् की अपेक्षा उ०प्र० विधान सभा में १९५२ से १९६२ के बीच कुल ८ विशेषाधिकार के प्रश्न सभा की विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये गए थे । प्रथम विधान सभा में २८ विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न उठाये गये थे जिनमें से केवल तीन प्रश्न समिति को निर्दिष्ट किया गया था । द्वितीय विधान सभा में ८४ विशेषाधिकार की अवहेलना के प्रश्न प्रस्तुत किये गये थे । इनमें से केवल ५ प्रश्नों को जिन्हें प्रस्तावित करने की अनुमति दी गई, समिति को निर्दिष्ट किया जा सका ।

यद्यपि सभा की विशेषाधिकार समिति के पास पर्याप्त तो नहीं किन्तु परिषद् की विशेषाधिकार समिति की अपेक्षा अधिक कार्य थे, तथापि सभा की विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किये गए प्रश्नों में कुछ ऐसे प्रश्न थे जिन्हें समिति को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता नहीं थी और उन प्रश्नों पर अध्यक्ष ही अपनी व्यवस्था दे सकता था । उदाहरणार्थ ४ फरवरी १९५४ को

---

१. विशेषाधिकार समिति की फाइल

श्री नारायणदत्त तिवारी (विधान सभा सदस्य) की गिरफ्तारी भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत होने के कारण उसकी सूचना सभा को नहीं दी गई जिसके परिणामस्वरूप वह वित्तीय समिति की कार्यवाही में भाग लेने से वंचित रह गये थे । ११ मार्च १९५४ को श्री तिवारी ने इस प्रश्न को विशेषाधिकार की अवहेलना के रूप में सभा के समक्ष रखा । सभा की विशेषाधिकार समिति द्वारा इस प्रश्न पर विचार किये जाने के बाद यह निर्णय दिया गया कि गिरफ्तारी निवारक निरोध के अन्तर्गत होने के कारण उसकी सूचना अध्यक्ष को देने की आवश्यकता नहीं थी । अत: इससे विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नहीं उठता । सभा द्वारा प्रश्न को पुनर्विचारार्थ विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया गया, किन्तु इस बार भी समिति उपर्युक्त निर्णय पर ही पहुंची ।[१]

विधान परिषद् में भी उपर्युक्त प्रकार की घटना से मिलता-जुलता एक विशेषाधिकार का प्रश्न उपस्थित किया गया था, किन्तु परिषद् के सभापति ने उसे समिति को निर्दिष्ट किये जाने के लिए अनुमति नहीं दी थी, परिषद् सदस्य श्री प्रभुनारायण सिंह की गिरफ्तारी भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत हुई थी, किन्तु २४ घंटे के भीतर उन्हें निकटतम् मैजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित नहीं किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप वह सदन की कार्यवाही में भाग लेने से वंचित रह गये थे । सदस्य ने इसे विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न बनाना चाहा । परन्तु सभापति ने निर्णय किया कि सदस्य की गिरफ्तारी भारतीय दण्ड संहिता तथा अपराधिक प्रक्रिया के अन्तर्गत हुई थी । इसलिए विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न ही नहीं उठता ।

परिषद् तथा सभा के उपर्युक्त विशेषाधिकार के प्रश्नों की तुलना के आधार पर प्रश्न यह है कि सभा द्वारा उपर्युक्त घटना को विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट किया जाना उचित था अथवा परिषद् के सदस्य द्वारा प्रस्तुत

---

१. श्रीनारायणदत्त तिवारी, विधान सभा सदस्य की गिरफ्तारी पर विधान सभा की विशेषाधिकार समिति का प्रतिवेदन (सभा सचिवालय)

विशेषाधिकार के प्रश्न को परिषद् की विशेषाधिकार समिति को निर्दिष्ट न कर उस पर सभापति द्वारा दी गई व्यवस्था ही उचित थी । जब परिषद् की अपनी विशेषाधिकार समिति है, तो एक दृष्टिकोण से परिषद् सदस्य की गिरफ्तारी से उत्पन्न विशेषाधिकार के प्रश्न को समिति को ही निर्दिष्ट किया जाना चाहिए था, किन्तु दूसरे दृष्टिकोण से जब सभापति की दृष्टि में विशेषाधिकार की अवहेलना का प्रश्न नहीं है, तो विषय को समिति के सुपुर्द करने की आवश्यकता नहीं थी । समिति को सुपुर्द करने से धन तथा समय की बर्बादी होती । इस दृष्टिकोण से सभा की उपर्युक्त घटना को समिति को सुपुर्द कर अनावश्यक रूप से धन तथा समय का अपव्यय, किया गया जब कि अध्यक्ष भी परिषद् की सभापति के उपर्युक्त निर्णय की तरह निर्णय ले सकता था तथा समय एवं धन के अपव्यय को रोक सकता था ।

याचिका समिति
------- प्रत्येक पत्री वर्ष के प्रथम सत्र में परिषद् का सभापति एक याचिका समिति नियुक्त करता है जिसका सभापति परिषद् का उपसभापति होता है । याचिका समिति ऐसी याचिकाओं की जांच करती है जो उसे निर्देशित की गई हों और ऐसी याचिकाओं में की गई शिकायतों के उपायों के लिए सुझाव भी दे सकती है ।

याचिका समिति की सदस्य संख्या समिति के सभापति को लेकर १० है । समिति के सदस्य परिषद् के सभापति द्वारा परिषद् में विभिन्न राजनीतिक दलों से १ वर्ष के लिए मनोनीतकिये जाते हैं । समिति के सदस्य परिषद् के सभापति के स्वविवेक से पुनर्नियुक्त हो सकते हैं । व्यवहार में प्रत्येक वर्ष अधिकांश नवीन सदस्य ही नियुक्त किये जाते हैं जिससे परिषद् के सभी प्रमुख सदस्यों को समिति मे कार्य करने का अवसर मिल सके ।

याचिका किसी भी व्यक्ति, संस्था या संगठन द्वारा परिषदान्तर्गत विचाराधीन किसी भी विषय अथवा राज्य विधान मण्डल की व्याप्ति के अन्तर्गत किसी भी निश्चित सार्वजनिक महत्व के विषय के सम्बन्ध में उपस्थित किया

जा सकता है, परन्तु उन प्रत्येक विषय पर याचिका प्रस्तुत नहीं की जा सकती जो राष्ट्रीय धन के व्यय अथवा राज्य की संचित निधि पर कोई भार आरोपित करने से सम्बन्ध रखता हो ।[१]

प्रत्येक याचिका शिष्ट और नम्र भाषा में परिषद् को सम्बोधित की जानी चाहिए । याचिका प्रस्तुत करने वाले व्यक्तियों के हस्ताक्षर के अतिरिक्त याचिका पर परिषद् के उस सदस्य का भी हस्ताक्षर होना चाहिए जो इसे परिषद् में उपस्थित करता है ।[2]

प्राय: याचिका परिषद् के सचिव को हस्तगत कराया जाता है और सचिवालय द्वारा इसकी जाँच की जाती है । यदि याचिका नियमानुकूल है, तो इसको परिषद् में उपस्थित करने के लिए एक तिथि निश्चित कर दिया जाता है । इस प्रकार नियत की गई तिथि को सदस्य उसे नियमित रूप से परिषद् में प्रस्तुत करता है । याचिका प्रस्तुत करते समय प्रस्तावक उन पक्षों, जिन्होंने याचिका प्रस्तुत की हो, उसमें किये गये हस्ताक्षरों, उसमें लगाये गये आरोपों का विवरण देने और याचिका में की गई प्रार्थना तक ही अपने भाषण को सीमित रखता है ।

सभापति के आदेश मिलने पर सचिव परिषद् में सम्पूर्ण याचिका अथवा उसके सारांश को पढ़कर सदस्यों को सुनाते हैं । इस समय सभापति किसी सदस्य को उसके सम्बन्ध में भाषण देने अथवा वाद-विवाद करने के लिए अनुमति नहीं देते ।[3]

परिषद् की याचिका समिति की कार्य प्रक्रिया तथा कार्य क्षेत्राधिकार सभा की याचिका समिति के समान ही है ।

---

१. परिषद् की नियमावली, नियम ७५ (घ), पृ० १७
२. परिषद् की नियमावली, नियम २१३, पृ० ४५
३. परिषद् की नियमावली, नियम २१६

परिषद् के अभिलेख से ज्ञात होता है कि परिषद् मे याचिका प्रस्तुत करने की प्रथा विशेष प्रचलित नहीं है । १९५२ से १९६२ के बीच केवल एक ही याचिका प्रस्तुत की गयी थी । १९६१ के पहले परिषद् में कोई भी याचिका प्रस्तुत नहीं हुई है । सर्वप्रथम २८ मार्च १९६१ को सर्वश्री सत्यस्वरूप और मु० याह्या द्वारा बरेली में लोकपाल की गैर कानूनी नियुक्ति तथा पदोन्नति के आरोप में याचिका प्रस्तुत की गई थी । याचिका पर श्री प्रतापचन्द्र आजाद, विधान परिषद् सदस्य का हस्ताक्षर था ।

उपर्युक्त याचिका पर विचार के लिए समिति की ६ बैठकें हुई । समिति ने याचिका की जांच के लिए राजस्व विभाग के कुछ उच्च कर्मचारियों को प्रमाण प्राप्त करने के लिए आमंत्रित किया था । राजस्व विभाग के अभिलेख की जांच करने के उद्देश्य से याचिका समिति द्वारा एक उपसमिति भी बनायी गयी । १९६१-६२ और १९६२-६३ के वित्तीय वर्ष में याचिका पर विचार करने के पश्चात् समिति ने १३ मई १९६३ की बैठक में प्रतिवेदन को अन्तिम रूप से स्वीकार किया । ~~समिति~~ समिति के प्रतिवेदन के अनुसार याचिका मे लगाये गए आरोप आधारहीन थे । अत: याचिका समाप्त कर दी गयी ।[१]

यद्यपि समिति की केवल ६ बैठकें हुई थीं किन्तु इसने याचिका पर विचार के लिए दो वर्ष से भी अधिक समय लगाया । समिति द्वारा याचिका की जांच के लिए उपर्युक्त विलम्ब के कारण के लिए कोई औचित्य नहीं है ।

१९५२ से १९५७ के बीच सभा की याचिका समिति को केवल चार याचिकायें प्राप्त हुई थीं और १९५७ से १९६२ के बीच केवल ७ याचिकायें

---

१. सईद मोहम्मद - रोल ऑफ दि कमिटीज इन यू०पी० लेजिस्लेचर, पृ० ४३९

प्राप्त हुई थीं।

विधान सभा में प्रस्तुत की गयी याचिकाओं की तालिका

याचिका का विषय	१९५२	५३	५४	५५	५६	१९५७	१९५८	१९५९	१९६०	१९६१	१९६२
विधेयक से संबंधित याचिका	१	-	३	-	-	-	-	-	-	-	४
सार्वजनिक महत्व से संबंधित याचिका	-	-	-	-	-	-	१	-	२	-	-

सभा की याचिका

समिति द्वारा याचिका पर की गई संस्तुति की तालिका

	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५	५६	५७	१९५८	१९५९	१९६०	१९६१	१९६२
जमा की गयी याचिका की संख्या	१	-	३	-	-	-	१	-	२	-	४
अस्वीकृत या समाप्त की गयी याचिका	१	-	२	-	-	-	१	-	२	-	-
समिति द्वारा सिफारिश की गई याचिका	-	-	१	-	-	-	-	-	-	-	-४

सईद मोहम्मद ने अपने शोध प्रबन्ध" रोल आफ कमिटीज इन यू०पी० लेजिस्लेचर" मे यह प्रतिपादित किया है कि परिषद् की याचिका समिति के पास अधिक कार्य नहीं होने के कारण उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है । अत: उनकी राय में परिषद् की याचिका समिति को समाप्त कर देनी चाहिये ।[१] तथा इसके स्थान पर केवल सभा की याचिका समिति बनी रहनी चाहिए ।[२] उनका तर्क यह है कि सभा जनता का प्रतिनिधि सदन है अत: सभा ही जनता की शिकायतों को दूर करने में अधिक समर्थ हो सकती है ।[३]

सईद मोहम्मद के इस विचार से पूर्णत: सहमति प्रदान नहीं की जा सकती कि केवल विधान सभा की याचिका समिति को ही अस्तित्व में रहना चाहिए । उनके मतानुसार ही सभा की याचिका समिति ने अधिकांश याचिकाओं के सम्बन्ध में ठोस निर्णय नहीं लिया है ।[४] उन्होंने इस बात की भी पुष्टि की है कि सभा की याचिका समिति के सदस्यों ने अपनी भावनाओं को दबाकर सरकार के पक्ष में निर्णय दिया है । उदाहरण के लिए उन्होंने १९६२ के जोतकर विधेयक तथा १९६२ के भवन कर विधेयक के सम्बन्ध में प्रस्तुत याचिका पर समिति द्वारा की कार्यवाही को प्रस्तुत किया है ।[५] अत: उपर्युक्त

---

१. सईद मोहम्मद रोल आफ दि कमिटीज़ इन यू०पी० लेजिस्लेचर, पृ० ४३९-४४२

२. वही, पृ० ४४२

३. वही

४. वही, पृ० १३६

५. सईद मोहम्मद - रोल आफ दि कमिटीज इन यू०पी० लेजिस्लेचर, पृ० १३६ १९६२ ई० का उ०प्र० जोतकर विधेयक तथा १९६२ ई० का भवन कर विधेयक को वापस करने के लिए प्रस्तुत की गई याचिकाओं की समिति में निर्दिष्ट किये जाने पर समिति के अधिकांश सदस्यों ने जिनमें सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के सदस्य भी सम्मिलित थे, विधेयक को वापस किये जाने के लिए विचार व्यक्त किया था, परन्तु मत विभाजन के समय कांग्रेस सदस्यों ने सरकार की भावना का ध्यान रखते हुए विधेयक को वापस किये जाने के पक्ष में मत नहीं दिया । परिणामत: उपर्युक्त याचिकाएं असफल हो गयीं ।

आधार पर जब विधान सभा की याचिका समिति संतोषजनक ढंग से कार्य करने में असमर्थ है तो उस स्थिति में विधान परिषद् की याचिका समिति को निरस्त कर केवल सभा की याचिका समिति को बने रहने का सुझाव उपयुक्त नहीं है। वस्तुत: सभा की याचिका समिति के सदस्य सरकार के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मतदान करते हैं, चाहे उनकी भावना याचिका के पक्ष में ही क्यों न हो। परिणामस्वरूप समिति को निर्दिष्ट किये गए याचिकाओं का कोई महत्व नहीं रह जाता। इसके विपरीत परिषद् के सदस्य दलीय भावना से ऊपर उठकर कार्य करते हैं। अत: परिषद् की याचिका समिति के सदस्य भी निष्पक्ष भाव से जनमत की भावना के अनुकूल याचिकाओं पर कार्यवाही कर सकते हैं। इसलिए परिषद् की याचिका समिति को निरस्त करने की आवश्यकता नहीं।

परिषद् की याचिका समिति को अधिक सक्रिय तथा प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि परिषद् में अधिक से अधिक याचिकायें प्रस्तुत की जायं। इसके अतिरिक्त समिति के सदस्यों की नियुक्ति के समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि निर्दलीय निष्पक्ष तथा योग्य सदस्य ही नियुक्त हो सकें।

कार्य परामर्शदात्री समिति :-

परिषद की नियमावली के अनुसार उपसभापति के सभापतित्व में एक कार्य परामर्श दात्री समिति गठित की जाती है। यह समिति सदन-नेता के परामर्श से सभापति द्वारा उसको निर्देशित विधेयकों, प्रस्तावों या दूसरे कार्य को अथवा उनकी विभिन्न अवस्थाओं को निबटाने के लिए समय निर्धारित करने की सिफारिश करती है।[१]

---

१. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नियम ७५ (ग), पृ० १७

यद्यपि प्राय: कार्य परामर्शदात्री समिति की संतुति के आधार पर सदन का कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सदन उसके द्वारा निर्धारित कार्यक्रम को माने ही । उदाहरणार्थ समिति ने ४ जून १६६१ को परिषद् की बैठक ११ बजे सुबह के बजाय ५ बजे शाम से १० बजे रात तक चलने के लिए सिफारिश की थी, किन्तु परिषद् सदस्यों द्वारा परिषद् की बैठक का उपर्युक्त समय का विरोध किये जाने पर इसे पुन: कार्य परामर्शदात्री समिति को पुनर्विचारार्थ भेजा गया ।[१]

परिषद् की समिति में दस सदस्य होते हैं । समिति का कार्य-काल एक वर्ष है ।

समिति अपना प्रतिवेदन प्रकाशित नहीं करती । अत: इस समिति की बैठकों, कार्यवाहियों तथा प्रतिवेदन परिषद् के सचिवालय में उपलब्ध नहीं होने के कारण, इसके सम्बन्ध में विशेष चर्चा करना संभव नहीं ।

विधान सभा की नियमावली के नियम ३७५ के अन्तर्गत सभा के लिए भी एक कार्य परामर्शदात्री समिति की व्यवस्था है । विधान सभा में इस प्रकार की समिति की आवश्यकता उस समय महसूस हुई थी जब १६५४ में तत्कालीन राजस्व मंत्री ने एक विधेयक को शीघ्र पारित करने का प्रयास किया था ।[२] सदन के कुछ सदस्यों की इस प्रकार की भावना के परिणामस्वरूप सभा के तत्कालीन अध्यक्ष ने १३ सितम्बर १६५४ को कार्यपरामर्शदात्री समिति की स्थापना के प्रश्न पर सदन के विचार को जानना चाहा । कुछ सदस्यों ने कार्य परामर्श दात्री समिति के निर्माण किये जाने के विचार का विरोध किया था ।

---

१. उ०प्र० विधान परि० की कार्य०, खण्ड ८३, १६ मई, १६६१, पृ० १२६-१३५

२. विधान सभा (उ०प्र०) की कार्यवाही, खण्ड १४३, पृ० १७६, अक्टूबर १६५४

सभा की कार्य परामर्शदात्री समिति की प्रथम बैठक ३० सितम्बर १९५४ को अध्यक्ष के कमरे में समिति के कार्यसंचालनार्थ नियम बनाने के लिए हुई थी । १३ अक्टूबर १९५४ को समिति द्वारा निर्मित नियम को सभा में उद्घोषित किया गया ।[१] समिति ने सबसे पहले इलाहाबाद विश्व विद्यालय विधेयक पर बहस को १३ अक्टूबर १९५४ तक समाप्त करने का निर्णय किया था । ४ फरवरी १९५४ को अध्यक्ष ने "प्रिजन बिल और दण्ड विधि" १९५७ पर वाद-विवाद के लिए समिति द्वारा निर्धारित समय को सदन में बताया । समिति द्वारा निर्धारित किये गए समय परिसीमा का कुछ सदस्यों ने विरोध किया था । इस पर अध्यक्ष ने व्यवस्था देते हुए कहा "आप इसका विरोध नहीं कर सकते । आप पुन: प्रस्तावित कर सकते हैं कि विधेयक पर बहस के लिए समय का निर्धारण समिति द्वारा पुन: किया जाय ।"[२]

संक्षेप में सभा की कार्यपरामर्शदात्री समिति के समान ही परिषद् की कार्य परामर्शदात्री समिति ने सदन-नेता के परामर्श से विधेयकों तथा संकल्पों पर बहस को समय से निबटाने के लिए समय का निर्धारण किया है । दोनों सदनों की कार्य परामर्शदात्री समितियों की बैठकें औपचारिक होती हैं अत: इसकी कार्यवाही सचिवालय में नहीं रखी जातीं ।

नियम पुनरीक्षण समिति :-

परिषद् की वार्षिक समितियों में नियम पुनरीक्षण समिति भी है । इसके दस सदस्य होते हैं । इन सदस्यों की नियुक्ति परिषद् के सभापति द्वारा एक वर्ष के लिए होती है । समिति का सभापति परिषद् का सभापति ही होता है ।

नियम पुनरीक्षण समिति का कार्य किसी सदस्य द्वारा विधान परिषद् की प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली में उल्लिखित किसी नियम

---

१. विधान सभा (उ०प्र०) की कार्यवाही, खंड १४३,पृ० १७६, अक्टूबर १९५४
२. विधान सभा की कार्यवाही, ४ फरवरी,१९५८, पृ० ५३८

में प्रस्तावित उन संशोधनों पर विचार करना है जो परिषद् के नियम २११ के अधीन या सभापति के स्वविवेक से उसे निर्देशित किये गये हों ।[१]

स्थायी समितियां :-

स्थाई समितियों को स्टैन्डिंग कमिटी भी कहते हैं । इन स्थायी समितियों में दोनों सदनों के सदस्य एकल संक्रमण मत प्रणाली से चुने जाते हैं[२]। वास्तव में ये समितियाँ मंत्रियों को परामर्श देने वाली स्थायी समितियाँ हैं, किन्तु विशेष स्थिति में संबंधित मंत्री समिति से परामर्श नहीं भी ले सकता है । सभा और परिषद् की नियमावली के अन्तर्गत स्थायी समितियों की स्थापना के लिए कहीं भी उल्लेख नहीं है ।

स्थायी समितियों का कार्यकाल प्रत्येक वित्तीय वर्ष है । कार्यकाल पूरा होने के बाद भी ये समितियाँ तब तक कार्य करती रहती हैं जब तक नवीन समितियों का चुनाव नहीं हो जाता है । इन समितियों की अवधि समाप्त होने के बाद भी सदन की अनुमति से इनके कार्यकाल बढ़ाये जा सकते हैं । उदाहरणार्थ १९५७ के वित्तीय वर्ष में गठित स्थायी समितियों का कार्यकाल ३१ मार्च १९५८ को समाप्त हो रहा था, जिसकी अवधि बढ़ाकर ३० सितम्बर १९५८ तक कर दी गयी ।[३] १९५७-५८ के सत्र में गठित स्थायी समि-

---

१. परिषद् की नियमावली, नियम ७५(क) (जैसा कि विज्ञप्ति संख्या १४३८ विधान परिषद् द्वारा दिनांक ८ मई १९५७ को संशोधित हुआ ।

२. एम० जहीर और जगदेव गुप्त — दि औरगैनाइजेशन औफ दि गवर्नमेंट औफ उत्तर प्रदेश (एस०चन्द्र:१९७०), पृ० ३७

३. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की कार्यवाही , खण्ड २७-२९, १० अक्टूबर, १९५२

तियाँ जिनका कार्यकाल ३१ मार्च १९५८ को समाप्त हो रहा था, सदन में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि ये समितियाँ तब तक कार्य करती रहें, जब तक कि उनके स्थान पर नवीन समितियों का निर्वाचन न हो जाय ।

१९५२ से १९५८ तक स्थायी समितियों में परिषद् के तीन सदस्य निर्वाचित होते थे । १९५८ में विधान परिषद् की सदस्य संख्या में बढ़ोत्तरी होने के कारण स्थायी समितियों में परिषद के तीन सदस्यों के स्थान पर चार कर दिये गए । विधान सभा से १६ सदस्य इस समिति में लिये जाते हैं ।[1] विभाग से सम्बन्धित मंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव समिति के पदेन सदस्य होते हैं । सामान्यत: मंत्री समिति का सभापति होता है तथा वह समिति के एक सचिव को नियुक्त करता है ।[2]

स्थायी समितियों की संख्या बढ़ अथवा घट सकती है । १९५२-५३ के वित्तीय वर्ष में २३ स्थायी समितियाँ थीं । १९५४- ५५ के वित्तीय वर्ष में भी इनकी संख्या २३ ही थी । ५४-५५ के वित्तीय वर्ष में स्थायी समितियों की दो सूचियाँ तैयार की गईं । इनमें से प्रथम सूची में १७ समितियों के नाम थे जिसके प्रस्तावक श्री जगन्नाथ आचार्य, विधान परिषद् सदस्य और अनुमोदक कुंवर महावीर सिंह, विधान परिषद् सदस्य थे । दूसरी सूची के अन्तर्गत ६ समितियाँ थीं जिसके प्रस्तावक श्री परमात्मानंद सिंह और अनुमोदक श्री ज्योतिप्रसाद गुप्त (दोनों विधान परिषद्) सदस्य थे । वर्तमान समय में २५ स्थायी समितियाँ हैं । स्थायी समितियों का नामकरण मंत्रियों के कार्यविभाजन के आधार पर होता है ।[3]

वर्तमान समय में २५ स्थायी समितियाँ निम्नलिखित विषयों से संबंधित हैं :--हरिजन, शरणार्थी एवं राष्ट्रीय रोजगार सेवा, सामान्य प्रशासन

---

१. एम०जही० एण्ड जगदेव गुप्त, दि औरगैनाइजेशन ऑफ दि गवर्नमेंट ऑफ उत्तर प्रदेश, पृ० ३७

२. वही

३. वही

सार्वजनिक निर्माण , सिंचाई, विद्युत, शिक्षा, श्रम, वन, राजस्व, न्याय तथा विधायन, कृषि एवं पशुपालन, चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्थानीय प्रशासन, सूचना, खाद्य व रसद, पुलिस, उद्योग, परिवहन, नियोजन एवं विकास और सहकारी तथा समाज कल्याण ।

साधारणतया समिति के समक्ष निम्नलिखित विषय विचारार्थ रखे जाते हैं (१) सभी गैर सरकारी विधेयक तथा प्रस्ताव जिस पर संबंधित विभाग कार्यवाही करना सोचती है , (२) सामान्य नीति तथा मुख्य योजनाओं से सम्बन्धित मुख्य प्रश्न जिस पर सम्बन्धित मंत्री परामर्श लेना चाहते हों , (३) समितियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन (विभागीय समितियों के अप्रकाशित प्रतिवेदनों को छोड़कर) (४) वार्षिक प्रतिवेदन (५) समिति के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत किसी भी सार्वजनिक महत्व के प्रश्न जिसको कोई सदस्य सम्बन्धित मंत्री की अनुमति से समिति में विचार के लिए रखना चाहता हो । अभिलेख से पता चलता है कि उपर्युक्त समितियों में से कई समितियां वर्ष भर बेकार ही रहीं और उनकी कोई भी बैठक उनके कार्य काल में नहीं हुई है ।

तदर्थ अथवा प्रवर समिति :-

प्रवर समिति परिषद् की अस्थायी विधायन समिति है । प्रवर समिति परिषद् द्वारा निर्दिष्ट विधेयक पर विचार करती है । वस्तुतः यह परिषद् की मुख्य विधायिनी परन्तु तदर्थ समिति है ।

किसी विधेयक के लिए निर्मित प्रवर समिति के सदस्यों की नियुक्ति परिषद् द्वारा, विधेयक को प्रवर समिति को निर्दिष्ट किये जाने के प्रस्ताव को पारित होने पर की जाती है ।[१] विधेयक से सम्बन्धित विभाग के मंत्री और विधेयक-भार-साधक सदस्य प्रवर समिति के पदेन सदस्य होते हैं । यदि

---

१. एम० जहीर एंड जगदेव गुप्त, दि ओरगैनाइजेशन ऑफ दि गवर्नमेंट ऑफ उत्तर प्रदेश, पृ० ३७-३८

मंत्री परिषद् के सदस्य नहीं हों तो उनको समिति में मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होता, परन्तु यदि कोई मंत्री जो परिषद् का सदस्य नहीं हो, पर समिति का सभापति हो, वह समिति में बराबर बराबर मत विभाजन होने पर पुर्जी डालकर प्रश्नों का निर्णय कर सकते हैं ।[१]

परिषद् की प्रवर समिति की सदस्य संख्या के सम्बन्ध में नियम यह है कि जब विधेयक विधेयकभार-साधक मंत्री के अतिरिक्त किसी दूसरे सदस्य द्वारा पुरःस्थापित किया गया हो, तो समिति की सदस्य संख्या ६ होगी और अन्य दशा में १० ।[२] सभा की प्रवर समिति में १६ सदस्य होते हैं ।[३] सदस्यों का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व सिद्धान्त के एकल संक्रमण मत प्रणाली से होता है ।

परिषद् के सदस्य जो प्रवर समिति के सदस्य नहीं हैं, समिति द्वारा विचार विमर्श किये जाने के समय उपस्थित रह सकते हैं परन्तु न तो वे समिति को सम्बोधित कर सकते हैं और न उसके मध्य बैठ सकते हैं लेकिन कोई भी मंत्री समिति के सभापति की अनुज्ञा से समिति को, जिसके वे सदस्य नहीं हैं, सम्बोधित कर सकते हैं ।[४]

विधेयक के सम्बन्ध में यदि कोई संशोधन प्रस्ताव हो, तो उसकी सूचना विधेयक को प्रवर समिति द्वारा विचारार्थ लिये जाने के दिन से एक दिन पूर्व देना आवश्यक है अन्यथा संशोधन प्रस्ताव पर आपत्ति उठायी जा सकती है और वह आपत्ति तब तक मान्य समझी जाती है जब तक कि सभापति संशो-

---

१. परिषद् की नियमावली, नियम १५६, पृ० ३५

२. परिषद् की नियमावली, नियम १५८ का खण्ड (क) और (ख)

३. सभा की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमावली, नियम २५२ (२), पृ० ६७

४. परिषद् नियम १६०, पृ० ३५

धन को प्रस्तावित करने की अनुज्ञा न दें ।

जब कोई विधेयक प्रवर समिति को निर्दिष्ट कर दिया गया हो तो समिति के किसी सदस्य द्वारा विधेयक में संशोधन करने के लिए दी गई सूचना समिति को निर्दिष्ट की हुई समझी जाती है, किन्तु यदि संशोधन की सूचना ऐसे सदस्य द्वारा दी गई हो जो समिति का सदस्य नहीं है, तो ऐसा संशोधन समिति द्वारा विचाराधीन नहीं लिया जाता है जब तक कि वह समिति के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तावित नहीं किया जाय ।[१]

अन्य दशाओं में, प्रवर समिति की प्रक्रिया ऐसी व्यवस्थाओं के साथ चाहे परिष्कार, परिवर्धन अथवा लोपन की रीति से, जैसा भी समिति के सभापति आवश्यक या सुविधाजनक समझें, यथाशक्य वही रहती है जो परिषद् में किसी विधेयक पर विचार होने के प्रक्रम पर अनुसरण की जाती है ।

प्रतिवेदन :- विधेयक के प्रवर समिति को निर्दिष्ट किये जाने के प्रस्ताव के समय ही समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए एक निश्चित समय निर्धारित कर दिया जाता है । परिषद् की नियमावली में कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है कि समिति अधिक से अधिक कितने दिनों में प्रतिवेदन कर सकती है ।

इसके विपरीत सभा की प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदन के उपस्थापन के लिए समय निर्धारित है । जब सभा ने प्रतिवेदन उपस्थापन के लिए कोई समय निश्चित न किया हो तो प्रतिवेदन उस तिथि से तीन मास समाप्त होने से पहले उपस्थित कर दिया जाना चाहिए, जिस तिथि को सदन ने प्रवर समिति को विधेयक निर्दिष्ट किये जाने का प्रस्ताव स्वीकार किया था ।[२]

समिति प्रतिवेदन को निश्चित समय के भीतर[३] परिषद् में उपस्थित

---

१. परिषद् नियम १६२, पृ० ३६

२. विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमावली, नियम २५८, दूसरा पैरा, पृ० ६८

३. यदि सदन द्वारा पूर्व निश्चित समय को बढ़ाया न गया हो ।

करती है । यदि विधेयक में समिति द्वारा परिवर्तन किया गया है, तो उस परिवर्तन के कारण यदि उसके पुन: प्रकाशन की आवश्यकता होती है तो इसका भी उल्लेख प्रतिवेदन में कर दिया जाता है । प्रतिवेदन में उस तिथि का भी उल्लेख रहता है जिस तिथि को विधेयक गजट में प्रकाशित हुआ था ।[१]

जब कोई विधेयक परिवर्तित कर दिया गया हो और यदि प्रवर समिति उचित समझती हो तो वह अपने प्रतिवेदन में विधेयक भार-साधक सदस्य से इस बात के लिए सिफारिश कर सकती है कि उसका आगामी प्रस्ताव विधेयक को परिचालित करने के बारे में हो और यदि विधेयक पहले ही परिचालित किया जा चुका हो, तो पुन: परिचालित किये जाने के बारे में हो ।

परिषद् द्वारा विधेयक पर विचार करने का निर्णय किये जाने के पूर्व किसी भी समय, कोई प्रवर समिति पूरक प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकती है । प्रवर समिति का प्रतिवेदन प्राप्त होने पर यदि प्रवर समिति ने उसे पुन: प्रकाशन की सिफारिश की हो, तो सचिव द्वारा तुरंत संशोधित विधेयक सहित उसे गजट में प्रकाशित करवाया जाता है और मुद्रित प्रतिवेदन की एक प्रतिलिपि प्रत्येक सदस्य को भेजा जाता है ।[२]

प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् क्रिया :- किसी विधेयक पर प्रवर समिति का अन्तिम प्रतिवेदन कि प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् विधेयक - भार साधक निम्नलिखित में से कोई एक प्रस्ताव करता है :-

(१) विधेयक को, जैसा कि प्रवर समिति ने प्रतिवेदित किया है, विचारार्थ लिया जाय ।

(२) विधेयक को पूर्णतया अथवा केवल विशेष खण्डों या संशोधनों के सम्बन्ध में अथवा प्रवर समिति को, विधेयक में कोई विशेष या अतिरिक्त

---

१. १. परिषद् की नियमावली, नियम १६३(१), पृ० ३६

२. परिषद् की नियमावली, नियम १६६

उपबन्ध सम्मिलित करने के अनुदेशों के साथ, पुन: निर्दिष्ट कर दिया जाय,

(३) विधेयक को, जैसा कि प्रवर समिति ने प्रतिवेदित किया है, राय जानने के लिए परिचालित किया जाय अथवा पुन: परिचालित किया जाय ।

यदि विधेयक भार-साधक-सदस्य यह प्रस्ताव करे कि विधेयक पर विचार किया जाय, तो कोई सदस्य संशोधन के रूप में यह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को फिर से प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जाय या उस पर राय प्राप्त करने के लिए उसे परिचालित किया जाय या पुन: परिचालित किया जाय । इस नियम के अन्तर्गत यदि कोई विधेयक फिर से प्रवर समिति को निर्दिष्ट होने वाला हो तो, उसे फिर से उसी प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जाता है जब तक कि परिषद् इसके विपरीत न निर्णय दे । प्रवर समिति द्वारा संशोधित विधेयक को पुन: प्रकाशनार्थ प्रस्ताव किया जा सकता है । परिषद् के निर्णय पर सभापति उसके पुन: प्रकाशन के लिए निर्देश देते हैं ।[१]

संयुक्त प्रवर समिति :-

संयुक्त प्रवर समिति दोनों सदनों की अस्थायी तदर्थ विधायिनी समिति है । यद्यपि संयुक्त प्रवर समिति में विधान सभा के सदस्य अधिक होते हैं, तथापि यह दोनों सदनों की समिति है । संयुक्त प्रवर समिति का संगठन महत्वपूर्ण विधेयक पर विचार करने के लिए किया जाता है । किसी विधेयक के सम्बन्ध में यदि दोनों सदन यह समझती है कि उसे विचारार्थ दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए, तो प्रस्ताव द्वारा दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा संयुक्त प्रवर समिति गठित की जाती है और विधेयक को उक्त समिति को निर्दिष्ट किया जाता है ।

---

१. परिषद् की नियमावली, नियम १६८, पृ० ३७

परिषद् द्वारा किसी विधेयक को संयुक्त प्रवर समिति में भेजने के प्रस्ताव[१] की स्वीकृति देने पर इस आशय का संदेश सभा को भेजा जाता है। यदि सभा प्रस्ताव से सहमत है तो वह संयुक्त प्रवर समिति में कार्य करने के लिए सदस्यों का नाम निर्देशन करती है, परन्तु यदि सभा परिषद् के प्रस्ताव से असहमत है तो विधेयक को संयुक्त प्रवर समिति में नहीं भेजा जा सकता। ऐसी स्थिति में परिषद् उस विधेयक को परिषद् की प्रवर समिति को निर्दिष्ट करने का प्रस्ताव पारित कर सकती है।

परिषद् संयुक्त प्रवर समिति के कुल सदस्यों के कम से कम एक तिहाई सदस्यों को अपने प्रतिनिधियों के रूप में चुन सकती है। जब तक कि दोनों सदन परस्पर करार द्वारा अन्यथा कोई विनिश्चय न कर ले, संयुक्त प्रवर समिति के सदस्यों की संख्या निम्नप्रकार से २५ होगी।[२]

(क) विधेयक-भार-साधक-मंत्री
(ख) विधेयक-भार-साधक-सदस्य, यदि कोई हो,
(ग) वह सदस्य जिसके प्रस्ताव पर विधेयक संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किया गया हो,
(घ) परिषद् के आठ सदस्य
(ङ०) यथास्थिति सभा के १५ या १६ सदस्य।

विधेयक-भार-साधक सदस्य, विधेयक-भार-साधक मंत्री तथा संयुक्त प्रवर समिति के प्रस्तावक को छोड़कर शेष सदस्यों का निर्वाचन होता है, निर्वाचन एकल संक्रमण प्रणाली द्वारा होता है।

विधेयक-भार-साधक-मंत्री संयुक्त प्रवर समिति के सभापति होते हैं। समान मत विभाजन की अवस्था में वह निर्णायक मत देते हैं।

---

१. सभा द्वारा किसी विधेयक को संयुक्त प्रवर समिति में भेजने के प्रस्ताव की स्वीकृति मिलने पर उसे परिषद् में भेजा जाता है। अन्य प्रक्रिया परिषद् की तरह ही होती है।

२. उ०प्र०वि० सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन, नियमावली, नियम २६१, पृ० ६६(१९६७)

किसी विधेयक पर संयुक्त प्रवर समिति द्वारा अन्तिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् विधेयक भार-साधक-सदस्य यह प्रस्ताव कर सकते हैं कि विधेयक पर, जैसा कि वह संयुक्त प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित किया गया है, विचार किया जाय। वाद-विवाद समिति के प्रतिवेदन के विचार एवं प्रतिवेदन में निर्दिष्ट विषयों तक अथवा विधेयक के सिद्धान्तों से सुसंगत किन्हीं वैकल्पिक सुझावों तक ही सीमित रह सकता है।

संयुक्त समिति :-

संयुक्त प्रवर समिति के अतिरिक्त संयुक्त समिति की भी व्यवस्था है[1]। किसी विधेयक के अतिरिक्त परिषद् की कार्य सूची पर दिया हुआ कोई विषय दोनों सदनों की संयुक्त समिति को निर्दिष्ट करने के लिए प्रस्ताव किया जा सकता है। इसके लिए एक दिन की सूचना की आवश्यकता होती है। परिषद् के संयुक्त समिति के प्रस्ताव से सभा की सम्मति मिलने पर उससे अपेक्षित संख्या में सदस्यों के नाम निर्देशन के लिए कहा जा सकता है। यदि परिषद् ~~परिषद्~~ को यह संदेश प्राप्त हो कि विधान सभा संयुक्त समिति के प्रस्ताव से सहमत नहीं है तो बिना सूचना के एक प्रस्ताव किया जा सकता है कि उक्त विषय को परिषद् की समिति को सुपुर्द किया जाय।

विधान सभा की कुछ समितियों में भी परिषद् के कुछ सदस्य निर्वाचित किये जाते हैं। उदाहरणार्थ लोक लेखा समिति और प्रतिनिहित विधायन समिति/लोकलेखा समिति का सर्वप्रथम निर्माण (१९२१ में भारत सरकार अधियिनम १९१९ के नियम ३३ के अन्तर्गत हुआ था।[2]

१९६१ के पूर्व सभा की इस समिति में परिषद् के सदस्य नहीं होते थे। परिषद् सदस्यों की भावना को ध्यान में रखते हुए सभा के १९६१ में यह

---

१. परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमावली, नियम १०३, पृ० २२
२. भारत सरकार अधिनियम १९१९, सैक्शन ४१(२), रूल ३३

प्रस्ताव पारित किया कि लोक लेखा समिति में परिषद् के सदस्य भी लिए जावें । प्रस्तावानुसार परिषद् के ५ सदस्य लोक लेखा समिति में निर्वाचित किये जाते हैं ।

१९६१ के बाद भी सभा की नियमावली में लोकलेखा समिति में परिषद् के सदस्यों को निर्वाचित किये जाने का उल्लेख नहीं किया गया है। परिषद् की नियमावली में भी इसका उल्लेख नहीं किया गया है ।

सभा की नियमावली के नियम २२९ के उपखण्ड (२) के अनुसार लोक लेखा समिति में २१ से अनधिक सदस्य होंगे जो प्रत्येक वर्ष सदन द्वारा उसके सदस्यों में से अनुपाती प्रतिनिधित्व सिद्धान्त के अनुसार एकल संक्रमणा द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे ।[१] इन पंक्तियों में यह स्पष्ट उल्लेख है कि लोक लेखा समिति के सदस्य सदन द्वारा उसके सदस्यों में से निर्वाचित किये जायेंगे । कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि परिषद् के भी सदस्य लोक लेखा समिति में लिये जायेंगे ।

समिति के कृत्य :- लोक लेखा समिति के कृत्य निम्नलिखित हैं[२]:-

(१) राज्य के विनियोग लेखे और उन पर भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का निरीक्षण करते समय लोक लेखा समिति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपना समाधान कर ले कि

(क) जो धन लेखे में व्यय के रूप में प्रदर्शित किया गया है वह उस सेवा या प्रयोजन के लिए विधिवत उपलब्ध और लगाये जाने योग्य था जिसमें वह लगाया या भारित किया गया है,

(ख) व्यय प्राधिकार के अनुरूप है, जिसके वह अधीन है, और

---

१. उ०प्र० विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, वि०सभा सचिवालय, १९६२ , नियम २२९(२), पृ० ६२

२. वही, नियम २३०, पृ० ६२

(ग) प्रत्येक पुनर्विनियोग ऐसे नियमों के अनुसार किया गया है जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा निहित किये गये हों ।

उपर्युक्त कृत्यों के अतिरिक्त लोक लेखा समिति के अधोलिखित कर्तव्य भी हैं :-

(क) राज्य निगमों, व्यापार तथा निर्माण योजनाओं की आय तथा व्यय दिखाने वाले लेखा विवरणों की तथा संतुलन-पत्रों और लाभ तथा हानि के लेखों के ऐसे विवरणों की जांच करना जिन्हें तैयार करने की राज्यपाल ने अपेक्षा की हो या जो किसी विशेष निगम, व्यापार, संस्था या परियोजना के लिए वित्तीय व्यवस्था विनियमित करने वाले संविहित नियमों के उपबन्धों के अन्तर्गत तैयार किये गए हों और उनपर नियंत्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की जांच करना,

(ख) स्वायत्तशासी तथा अर्द्ध-स्वायत्तशासी निकायों की आय तथा व्यय दिखाने वाले लेखा विवरण की जांच करना, जिसकी लेखा परीक्षा भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा राज्यपाल के निदेशों के अन्तर्गत या किसी संविधि के अनुसार की जा सके, और

(ग) उन मामलों में नियंत्रक महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार करना जिसके सम्बन्ध में राज्यपाल ने उससे किन्हीं प्राप्तियों की लेखा-परीक्षा करने की या भंडार के और स्कन्धों के लेखों की परीक्षा करने की अपेक्षा की हो ।

लोक लेखा समिति के अतिरिक्त सभा की प्रतिनिहित विधायन समिति मे भी परिषद् के सदस्य होते हैं । १९६१ के पूर्व इस समिति में भी परिषद् के सदस्य नहीं थे ।

सभा की नियमावली के अन्तर्गत इस समिति के १५ से अधिक सदस्य नहीं होंगे । इस समिति में कोई मंत्री सदस्य नहीं होता । प्रतिनिहित विधायन समिति का गठन इस बात की छानबीन करने और सदन को प्रति-

प्रतिवेदित करने के लिए किया जाता है कि क्या संविधान द्वारा प्रदत्त या अन्य वैध प्राधिकारी द्वारा प्रत्यायोजित विनियम, नियम, उपनियम, उपविधि आदि बनाने की शक्ति का प्रयोग ऐसे प्रत्यायोग के अन्तर्गत उचित रूप से किया जा रहा है।[१]

उपर्युक्त समितियों के अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों की सिनेट, विभिन्न संस्थाओं की समितियों जैसे बद्रीनाथ टैम्पुल, हरबर्ट बटलर टैकनिकल इंस्टीट्यूट, उ०प्र० संस्कृत शिक्षा परिषद् आदि समितियों में परिषद के एक या दो सदस्य निर्वाचित होते आये हैं।

परिषद् की समितियों का मूल्यांकन :-

समिति सदन का अंग है। अंग होने के कारण समिति का कार्यक्षेत्राधिकार तथा उसकी प्रकृति सदन के कार्य क्षेत्राधिकार तथा उसकी प्रकृति पर निर्भर करती हैं। विधान परिषद् का अधिकार सीमित है। अत: उसकी समितियाँ भी सरकार तथा प्रशासन पर अधिक प्रभावी नहीं हो सकतीं। परिषद् की वर्तमान समितियों में कार्यपरामर्शदात्री समिति, नियम पुनरीक्षण समिति तथा विशेषाधिकार समिति प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं। इसलिए इन समितियों का विधायिनी तथा प्रशासकीय विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। सभा की उपर्युक्त समितियों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

आश्वासन समिति तथा याचिका समिति के कार्य भी संतोषप्रद नहीं कहे जा सकते। आश्वासन समिति का निर्माण विलम्ब से होने के कारण इसने विलम्ब से कार्य करना प्रारम्भ किया है। फलत: विलम्ब से कार्य प्रारम्भ करने के कारण यह समिति पुराने तथा नवीन आश्वासनों की जाँच तथा उसके कार्यान्वियन किये जाने के कार्य-भार से दबी है। आश्वासनों को संकलन करने

---

१. उ०प्र० विधान सभा की नियमावली, नियम २४४, विधानसभा सचिवालय (१९६७), पृ० ६४

की प्रक्रिया भी सुविधाजनक नहीं थी । परिषद् की प्रकाशित कार्यवाही से ही आश्वासन संकलित किये जाते थे । ~~इस प्रक्रिया के कारण कभी-कभी परिषद् की कार्यवाही से ही आश्वासन संकलित किये जाते थे~~ । इस प्रक्रिया के कारण कभी- कभी परिषद् की कार्यवाही विलम्ब से प्रकाशित होने पर आश्वासनों का संकलन विलम्ब से हो पाता था । परिणामस्वरूप परिषद् की आश्वासन समिति भी विलम्ब से कार्य प्रारम्भ करती थी । विलम्ब से कार्य प्रारम्भ होने के कारण बहुत से आश्वासनों का महत्व समाप्त हो जाता था । अत: उन आश्वासनों पर समिति के प्रयास तथा प्रतिवेदन भी कोई विशेष महत्व नहीं रखते थे । शेष आश्वासनों पर विलम्ब से कार्यारम्भ, होने के कारण समिति के प्रयास तथा उसकी संस्तुति अधिक प्रभावी नहीं होती थी ।

आश्वासन समिति के असंतोषप्रद कार्य के लिए सरकार भी उत्तरदायी है । सरकार ने समिति द्वारा मांगी गयी सूचनाओं तथा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर समय पर नहीं दिया है ।

आश्वासन समिति के उपर्युक्त त्रुटियों के कारण आश्वासनों के संकलन की प्रक्रिया बदल दी गयी है । अब परिषद् की आश्वासन समिति भी सभा की आश्वासन समिति की तरह परिषद् की हस्तलिखित अथवा टंकित कार्यवाही से आश्वासनों को संकलित करती है । समिति को अधिक उपयोगी बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि सरकार समिति द्वारा मांगी गयी सूचनाओं तथा प्रश्नों के उत्तर समय पर पर्याप्त रूप से दे ।

परिषद् की याचिका समिति भी अधिक सक्रिय तथा सफल नहीं रही है । परिषद् की याचिका समिति में कार्यों का अभाव रहा है, किन्तु इस आधार पर परिषद् की याचिका समिति को निरस्त किये जाने का विचार लाभप्रद नहीं है । वास्तव में १९५२ से १९६२ के बीच सभा की याचिका समिति के पास भी पर्याप्त कार्य नहीं थे । इस अवधि में सभा की याचिका समिति को केवल सात याचिकाएं ही निर्दिष्ट की गई थीं और इन याचिकाओं

के सम्बन्ध में भी समिति ने कोई ठोस निर्णय नहीं लिया है। समिति के प्रतिवेदनों से यह विदित होता है कि समिति ने उन याचिकाओं पर कार्यवाही सरकारी भावना के अनुकूल किया है। फलत: समिति की कार्यवाही में निष्पक्षता का अभाव सा दीखता है। इसके विपरीत परिषद् के सदस्य दलीय भावना से ऊपर उठकर अधिक निष्पक्ष भाव से कार्य करते हैं। अत: परिषद् की आश्वासन समिति में भी यदि निर्दलीय तथा योग्य सदस्यों को सम्मिलित किया जाय तो परिषद् की याचिका समिति से अधिक निष्पक्ष कार्य की अपेक्षा की जा सकती है। परिषद् की याचिका समिति को अधिक प्रभावी तथा कार्यरत बनाने के लिए यह आवश्यक है कि परिषद् में सभा की अपेक्षा अधिक याचिका प्रस्तुत की जाय।

सभा की लोक लेखा समिति और प्रतिनिहित विधायन समिति में परिषद् के सदस्य होते हैं, किन्तु किसी भी सदन की नियमावली में इसका उल्लेख नहीं किया गया है। वास्तव में इन दोनों समितियों में परिषद् का प्रतिनिधित्व सभा के स्वविवेक पर निर्भर है। सभा की यह परम्परा रही है कि इसने संकल्प पारित कर परिषद् से यह निवेदन किया है कि वह (परिषद्) सदस्यों को निर्वाचित कर इन समितियों में कार्य करने के लिए भेजे। १९६७ में सभा ने इस प्रयोजन से कोई भी संकल्प पारित नहीं किया था। फलत: १९६७-६८ के वित्तीय वर्ष में सभा की इन दो समितियों में परिषद् का प्रतिनिधित्व नहीं हो सका। वस्तुत: यदि परिषद् को इन समितियों में नियमित रूप से प्रतिनिधित्व दिया जाना है, तो इसका प्रावधान नियमावली में उल्लिखित होना चाहिए। सभा के कुछ कर्मचारी तथा कुछ सदस्य लोक लेखा समिति में परिषद् का प्रतिनिधित्व देना नहीं चाहते। उनका तर्क यह है कि संविधान के अन्तर्गत सभा परिषद् की अपेक्षा वित्तीय मामले में सर्वोपरि है। परिषद् में आय-व्ययक, विनियोग विधेयक तथा नियंत्रक महालेखा परीक्षक का प्रतिवेदन रखना केवल औपचारिक है। परिषद् विनियोग विधेयक में कोई परिवर्तन नहीं

कर सकती । एक मात्र सभा को सरकार द्वारा अनुदान की मांग पर स्वीकृति देने का अधिकार है । अत: केवल सभा को अधिकार है कि वह अपनी लोक लेखा समिति द्वारा यह जांच करे कि सरकार ने धन का व्यय उचित रूप से किया है अथवा नहीं । इन तर्कों के आधार पर सभा की लोक लेखा समिति में परिषद् का प्रतिनिधित्व दिया जाना, उनके अनुसार संविधान की भावना के विरुद्ध है ।

उपर्युक्त विचारधारा के समर्थक किसी भी प्रकार की दोनों सदनों की संयुक्त समिति के निर्माण के पक्ष में नहीं है । उनके अनुसार उच्च सदन के द्वारा सरकार के कार्य में विलम्ब होता है । अत: दोनों सदनों की संयुक्त समिति के निर्माण से भी शासन के कार्य में विलम्ब होगा । इस प्रकार की विचारधारा के समर्थकों की दृष्टि में संयुक्त समिति में परिषद् के प्रतिनिधित्व से समिति के कार्य में बाधाएं उत्पन्न होंगी । इस कथन की पुष्टि में तर्क यह दिया जाता है कि परिषद् में उस दल का बहुमत हो सकता है जिसका बहुमत सभा में नहीं है । इस परिस्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त समिति में दो विरोधी दलों के सदस्यों की उपस्थिति से समिति के कार्य में बाधा पहुंचना स्वाभाविक है ।

वस्तुत: जब तक विधानमंडल का स्वरूप द्विसदनीय है, उपर्युक्त विचार उचित नहीं है । सभा के समान परिषद् भी समितियों के निर्माण करने में पूर्ण रूप से सक्षम है और सभा उसकी क्षमता को नष्ट नहीं कर सकती । अत: यदि सभा की लोक लेखा समिति और प्रतिनिहित विधायन समिति में परिषद् का प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता तो परिषद् स्वतंत्र रूप से सभा की लोक लेखा समिति और प्रतिनिहित विधायन समिति से भिन्न स्वतंत्र रूप से लोक-लेखा समिति और प्रतिनिहित विधायन समिति का निर्माण कर सकती है । यदि परिषद् इस प्रकार का कदम उठाती है तो निश्चित रूप से सभा की लोक-

लेखा समिति तथा प्रतिनिहित विधायन समिति का महत्व घट जायगा । इसलिए यदि हम सभा की महत्ता को कायम रखना चाहते हैं तो नियमित रूप से सभा की उपर्युक्त दोनों समितियों में परिषद् का प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए ।

अध्याय-६

संविधानान्तर्गत विधान परिषद् का विधायिनी क्षेत्राधिकार :-

पारिभाषिक अर्थ में विधायन का अर्थ विधि निर्माण है। संसदीय अर्थ में इसका प्रयोग विधेयकों, संकल्पों, प्रस्तावों, नियमों तथा उपनियमों के पुर:स्थापन उन पर विचार तथा उनके पारण के लिए होता है। उत्तर प्रदेश विधान परिषद् भी विधायिनी निकाय के रूप में इन कार्यों का सम्पादन करती है।

संविधान के अनुसार, विधेयक का पुर:स्थापन अथवा आरम्भन विधान सभा अथवा विधान परिषद् किसी भी सदन में हो सकता है, किन्तु विधान सभा अथवा विधान परिषद् किसी भी सदन में विचाराधीन विधेयक अथवा उसके द्वारा पारित विधेयक जो विधान परिषद् में विचाराधीन पड़ा हुआ है, विधान सभा के भंग होने पर विधेयक समाप्त हो जाता है।[1] इसके विपरीत विधान परिषद् में विचाराधीन विधेयक जो विधान सभा द्वारा पारित नहीं हुआ है विधान सभा के भंग होने पर समाप्त नहीं होता है।[2]

किसी भी विधेयक को[3] द्विसदनीय विधान मण्डल द्वारा पारित समझे जाने के लिए उसे संशोधित अथवा असंशोधित रूप में दोनों सदनों द्वारा पारित होना आवश्यक है।[4] इस दृष्टिकोण से विधान परिषद् में पुर:स्थापित तथा उसके

---

१. अनुच्छेद १९६ (५)

२. अनुच्छेद १९६ (४)

३. अनुच्छेद १९७ और १९८ को छोड़कर

४. अनुच्छेद १९६ के अन्तर्गत।

द्वारा पारित विधेयक पर विधान सभा की स्वीकृति तथा विधान सभा में पुर: स्थापित तथा उसके द्वारा पारित विधेयक पर विधान परिषद् की स्वीकृति आवश्यक है ।

उपर्युक्त संवैधानिक उपबन्ध के बावजूद साधारण विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् का क्षेत्राधिकार विधान सभा की अपेक्षा सीमित है । दोनों सदनों के बीच किसी विधेयक पर मतभेद अथवा विवाद होने पर अन्तत: विधान सभा का निर्णय ही सर्वोपरि माना जाता है । इसके अतिरिक्त यदि विधान परिषद् विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को अस्वीकार करती है अथवा विधेयक विधान परिषद् की मेज पर रखे जाने के दिन से तीन महीने तक विधान परिषद् बिना उसे पारित किये हुए समय व्यतीत करती है, अथवा विधान परिषद् द्वारा किये गये संशोधन को विधान सभा स्वीकार नहीं करती है तो उसी सत्र में या उसके बाद के सत्र में विधान सभा संशोधन सहित अथवा संशोधन रहित विधेयक को पारित करती है और फिर विधेयक को विधान परिषद् के विचारार्थ भेजती है । यदि इस बार भी विधान परिषद् विधेयक को अस्वीकार करती अथवा विधेयक को विधान परिषद् की मेज पर रखे जाने के दिन से एक माह तक उसे पारित नहीं करती है [१] अथवा विधेयक विधान परिषद् द्वारा जिस रूप में संशोधित हुआ है, विधान सभा उसी रूप में उसे पारित नहीं करती, तो वैसी अवस्था में वह विधेयक जिस रूप में विधान सभा द्वारा पारित हुआ है, उसी रूप में विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जायेगा, किन्तु यदि विधान सभा विधान परिषद् के संशोधन को स्वीकार करती है, तो वह विधेयक संशोधित रूप में पारित समझा जायेगा ।

संक्षेप में, विधान सभा द्वारा पारित साधारण विधेयक को विधान परिषद् में पहली बार में तीन महीने तक और दूसरी बार में एक महीना तक रोक कर रख सकती है । विधान परिषद् द्वारा बिलम्ब करने की इस अवधि के व्यतीत होने के पश्चात् विधेयक विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है ।

---

१. अनुच्छेद १९७

विधायिनी प्रक्रियान्तर्गत साधारण विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों के अधिकार का यह संवैधानिक पक्ष है, व्यवहार में १६५२ से १६६२ के बीच साधारण विधेयक का एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जिसे विधान परिषद् ने क्रमश: तीन और एक महीने तक विलम्ब कर रोक रखा हो अथवा विधेयक अन्तिम रूप से विधान परिषद् द्वारा अस्वीकार कर दिया गया हो और वह विधेयक संविधान के अनुच्छेद १६७ के अन्तर्गत दोनों सदनों द्वारा पारित समझा गया हो। इसी प्रकार विधान परिषद् में पुर:स्थापित तथा उसके द्वारा पारित विधेयक का भी कोई ऐसा उदाहरण नहीं है जिसे विधान सभा ने अस्वीकार किया हो।

वित्त विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् का मात्राधिकार विधान सभा की तुलना में कम है। सर्व प्रथम वित्तविधेयक का पुर:स्थापन अथवा आरम्भन विधान परिषद् में नहीं हो सकता।[१] द्वितीयत:, कोई भी वित्तविधेयक जिसे विधान सभा पारित करती है, विधान परिषद् उसे संशोधन सहित अथवा संशोधन रहित १४ दिन के भीतर विधान सभा को वापस कर देती है। वित्त विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् की सिफारिश को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना विधान सभा की स्वेच्छा पर निर्भर है।[२] यदि १४ दिन के भीतर विधान परिषद् वित्त विधेयक को विधान सभा को वापस नहीं करती, उस स्थिति में वह विधेयक उसी रूप में जिस रूप में विधान सभा द्वारा पारित हुआ है, विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।[३] यदि विधान सभा विधान परिषद् के किसी संशोधन को स्वीकार कर लेती है, तो विधेयक उस रूप में जिस रूप में विधान परिषद् द्वारा संशोधित हुआ है, पारित समझा जाता है।

वित्त विधेयक को १४ दिन तक विधान परिषद् द्वारा विलम्ब किये जाने के अधिकार के सम्बन्ध में एक वैधानिक प्रश्न उठाया जा सकता है। इस चौदह दिन

---

१. अनुच्छेद १६८ (१)

२. अनुच्छेद १६८ (२)

३. अनुच्छेद १६८ (३)

से तात्पर्य कलेण्डर के चौदह दिन से है अथवा सदन की बैठक के चौदह दिन से ।
इस प्रसंग में उत्तरप्रदेश विधान परिषद् में उठाये गये एक वैधानिक प्रश्न पर सभापति द्वारा दी गयी व्यवस्था से विषय स्पष्ट हो जाता है । २५ जुलाई १९५८ को प्रश्नोत्तर के उपरान्त १९५८ ई० का उत्तर प्रदेश कोर्ट फीस (संशोधन) विधेयक पर विचार किये जाने से पहले श्रीमती सावित्री श्याम ने एक वैधानिक प्रश्न उठाते हुए कहा, "यह विधेयक विधान सभा में २६ मार्च, को पास हुआ और यहां पर ३१ मार्च को रखा गया है । यह एक वित्त विधेयक है और कायदा यह है कि जो वित्त विधेयक घोषित हो जाता है वह संविधान की धारा १९८ के अनुसार १४ दिन के अन्दर अगर विधान परिषद् के अन्दर पास नहीं होता तो वह जैसा विधान सभा से पास हुआ था वैसा ही समझा जायेगा । यह विधेयक अप्रैल में यहां से पास हो जाना चाहिए था लेकिन ऐसा नहीं हुआ । इस विधेयक की अवधि समाप्त होने के बाद फिर से विधान परिषद् में लाया गया है....... यह एक वित्त विधेयक है, अब इसको नहीं लिया जाना चाहिए ।"[१]

उपर्युक्त आपत्ति पर सभापति ने यह व्यवस्था दी कि"....... जो संवैधानिक उपबन्ध है, वह १४ दिन का है, लेकिन १४ दिन का मतलब दिनांक से नहीं है, बल्कि विधान परिषद् की १४ बैठकों से है।...... ... यह सदन उस दिन के बाद पिछले सत्र में केवल एक दिन बैठा था और इस सत्र में इसे बैठे हुए ३ या चार दिन ही हुए हैं, इसलिए यह आपत्ति ठीक नहीं है और मैं इसको अस्वीकार करता हूं ।"[२]

इसी प्रश्न को २८ जुलाई १९५८ को विधान सभा में भी विधान सभा सदस्य वीरसेन द्वारा उठाया गया । इस वैधानिक प्रश्न पर विधान सभा के अध्यक्ष ने निर्णय दिया कि इस सम्बन्ध में दो रायें हो सकती हैं ।" एक तो यह कि जिन १४ दिनों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद १९८ (२) में किया गया है वे कलेन्डर के

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५८, २५ जुलाई १९५८,पृ० २८५
२. वही ।

१४ दिन हो सकते हैं। दूसरी राय यह हो सकती है वे १४ दिन वर्किंग डेज होने चाहिए। इन दोनों रायों में दूसरी में कोई खतरा नहीं प्रतीत होता, क्योंकि दोनों सदनों में विधेयक पास हो जाने से वह अवैध नहीं हो सकता।"[१]

उपर्युक्त दोनों निर्णयों के आधार पर १४ दिन का तात्पर्य विधान परिषद् की १४ बैठकों से है। इस दृष्टि से विधान परिषद् किसी भी वित्तीय विधेयक को कलेन्डर के १४ दिन से अधिक उस समय तक रोक सकती है जिस समय तक उसकी १४ बैठकें पूरी नहीं होतीं।

वित्त विधेयक के अतिरिक्त आय-व्ययकके सम्बन्ध में भी विधान परिषद् का क्षेत्राधिकार सीमित है। विधान परिषद् आय व्ययक पर केवल साधारण बहस कर सकती है, किन्तु विधान सभा में आय व्ययक पर विचार दो प्रक्रमों में होता है :-

(क) साधारण चर्चा और

(ख) अनुदानों के लिए मांगों पर मतदान।

इसका यह अर्थ है कि विधान सभा आय-व्ययक पर साधारण चर्चा के अतिरिक्त अनुदानों के लिए मांगों पर मतदान के समय भी विचार प्रकट कर सकती है।

यद्यपि विधान परिषद् को अनुदानों की मांगों पर मतदान का अधिकार नहीं है, किन्तु वह समस्त आय-व्ययक अथवा अनुदानों के लिए अनुपूरक अथवा अतिरिक्त मांगों के विवरण पर या उसमें निहित सिद्धान्तों के किसी प्रश्न पर चर्चा कर सकती है।[२]

आय-व्ययक पर साधारण चर्चा के सम्बन्ध में भी विधान परिषद् का अधिकार विधान सभा से कम है। उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमावली के अन्तर्गत विधान परिषद् किसी भी आय-व्ययक पर पूरे

---

१. उत्तर प्रदेश विधान सभा के १९५८ के प्रथम सत्र में कृतकार्य का संक्षिप्त सिंहावलोकन खण्ड ३, पृ० २२

२. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नियम २११ (१), पृ० ४४

तीन दिन तक बहस नहीं कर सकती,[१] किन्तु व्यवहार में विधान परिषद् कठोरता पूर्वक इस नियम का पालन नहीं करती । परिणामस्वरूप कई आय-व्ययक पर विधान परिषद् में भी तीन दिन से भी अधिक बहस हुई है । उदाहरणार्थ १६५४-५५, १६५५-५६ और १६५६-५७ के आय-व्ययक पर प्रत्येक वर्ष विधान परिषद् में चार दिन तथा १६६०-६१ के आय-व्ययक पर ७ दिन बहस हुई है ।

उ०प्र० विधान सभा कार्य प्रक्रिया नियमावली के अन्तर्गत आय-व्ययक पर या उसमें निहित सिद्धान्तों के किसी प्रश्न पर साधारणतया ५ दिनों तक वाद-विवाद कर सकती है । चूंकि विधान सभा की नियमावली में साधारणतया ५ दिनों का उल्लेख है, अत: यदि विधान सभा उचित समझती हो तो विशेष परिस्थिति में आय-व्ययक या उसमें निहित सिद्धान्तों के किसी प्रश्न पर बहस पांच दिन पूरा होने के बाद भी जारी रख सकती है ।

आय-व्ययक पर साधारण बहस की कुछ प्रक्रियाओं में दोनों सदनों का अधिकार सीमित है । उदाहरणार्थ आय-व्ययक पर साधारण वाद-विवाद के समय किसी भी सदन में कोई भी प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता और न तो आय-व्ययक को किसी भी सदन में मतदान के लिए ही रखा जा सकता है ।

उपर्युक्त परिसीमाओं के अतिरिक्त व्ययों के उन प्राक्कलनों पर भी विधान सभा में मतदान नहीं हो सकता जो राज्य के संचित निधि पर भारित हो ।[२]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमावली, नियम २११ (१), पृ० ४४

२. अनुच्छेद २०२(३) के अन्तर्गत वर्णित व्यय मद पर मतदान नहीं हो सकता ।

राज्य की संचित निधि पर भारित व्ययों को छोड़कर, अन्य व्ययों को अनुदान की मांग के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।[1] विधान सभा उसे स्वीकृत अथवा अस्वीकृत कर सकती है या किसी मद को निकालने अथवा कटौती करने का प्रस्ताव कर सकती है,[2] किन्तु वह अनुदान की मांग में वृद्धि या उसके लक्ष्य में परिवर्तन के प्रस्ताव नहीं कर सकती ।[3]

---

१. अनुच्छेद २०३ (२)

२. किसी मांग की राशि कम करने के लिए उ०प्र० विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन रूप में कटौती का प्रस्ताव प्रस्तावित किया जा सकता है ।

(क) नीति अनुमोदन कटौती :- नीति अनुमोदन कटौती के द्वारा यह प्रस्ताव रखा जाता है " कि मांग की राशि घटा कर १ रुपया कर दी जाय -" ऐसे प्रस्ताव की सूचना देने वाले सदस्य उस नीति का ब्यौरा सुतथ्यतया दर्शाते हैं जिस पर वे चर्चा करना चाहते हैं । चर्चा सूचना में उल्लिखित विशिष्ट बात या बातें तक ही सीमित रहती हैं और सदस्य वैकल्पिक नीति या सुझाव दे सकते हैं । -(विधान सभा नियम १८६(क),पृ० ५२)

(ख) मितव्ययिता कटौती :- इस कटौती के द्वारा यह प्रस्ताव किया जासकता है कि मांग की राशि में उल्लिखित राशि की कमी की जाय -" जो कीजा सकने वाली मितव्ययिता को प्रदर्शित करे । ऐसी उल्लिखित राशि या तो मांग में से एक मुस्त घटाई जाने वाली राशि हो सकती है या मांग की किसी मद का विलोपन अथवा उसमें घटाई जाने वाली राशि हो सकती है ।.... सूचना में संक्षेप में वह विशेष विषय दर्शाया जाता है, जिस पर चर्चा उठानी होती है और भाषण इस बात की चर्चा करने के लिए ही सीमित होती है कि मितव्ययिता कैसे की जा सकती है । (विधान सभा नियम १८६(ख))

(ग) प्रतीक कटौती प्रस्ताव के द्वारा यह मांग की जाती है कि मांग की राशि में १००)रु.की कमी की जाय " ऐसी विशिष्ट शिकायत को प्रदर्शित करने के लिए जो शासन के उत्तरदायित्व के क्षेत्र में हो (विधान सभा नियम १८६ (ग) । दूसरे शब्दों में प्रतीक कटौती प्रस्ताव द्वारा प्रस्ताव शासन के उत्तरदायित्व के क्षेत्र में विशिष्ट शिकायत को प्रकट करने के लिए किया जाता है । प्रतीक कटौती में चर्चा प्रस्ताव में उल्लिखित विशिष्ट शिकायत तक ही सीमित रहती है ।
वि[illegible]नियम१८[illegible]) पृ०[illegible]

विधान सभा का वित्तीय अधिकार विधान परिषद् की अपेक्षा अन्य निम्नलिखित विषयों में भी अधिक है। विधान सभा को अनुच्छेद २०६ के अन्तर्गत अप्रत्याशित एवं अपवाद अनुदानों के लिए प्राक्कलित व्यय के सम्बन्ध में अग्रिम अनुदानों के प्रस्ताव का भी अधिकार है।[१] ऐसी मांगों पर विधान सभा में उसी प्रकार कार्यवाही होती है जिस प्रकार आय-व्ययक के सम्बन्ध में अनुदानों के मांगों पर कार्यवाही की जाती है।[२]

विधान सभा में लेखानुदान के प्रस्ताव भी रखे जा सकते हैं। लेखानुदान के प्रस्ताव में सम्पूर्ण अपेक्षित राशि व्यक्त की जाती है और विभिन्न धन राशियां जो प्रत्येक विभाग अथवा सेवा अथवा व्यय की मद के लिए आवश्यक हो जिनसे वह राशि बनती है प्रस्ताव में संलग्न अनुसूची में व्यक्त की जाती है।[३]

अनुच्छेद २०५ के अन्तर्गत विधान सभा को राज्यपाल की अनुमति से अनुपूरक अथवा अतिरेक अनुदान या अतिरिक्त व्यय के लिए अनुदान की मांग करने का भी अधिकार है।

उपर्युक्त वित्तीय अधिकारों के अतिरिक्त विधान सभा को प्रतीकानुदान की मांग का प्रस्ताव करने का अधिकार है। जब किसी नयी सेवा पर प्रस्थापित व्यय के लिए पुनर्विनियोग द्वारा धन उपलब्ध किया जा सकता हो, तो कोई प्रतीक राशि के अनुदान की मांग सदन के मतदान के लिए रखी जा सकती है और यदि सदन मांग की अनुमति दे दे तो धन इस तरह उपलब्ध किया जा सकता है।

वस्तुत: ऊपरलिखित जिन प्रक्रियाओं के अन्तर्गत विधान परिषद् का वित्तीय क्षेत्राधिकार विधान सभा से कम है, वे सभी संविधान तथा दोनों सदनों

---

१. उत्तर प्रदेश विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली, नियम १६२ (१), पृ० ५५

२. वही, नियम १६२(२)

३. वही, नियम १६४ (१)

की कार्य प्रक्रिया नियमावली के अन्तर्गत वित्तीय प्रक्रिया से सम्बन्धित है। अतः यहाँ यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि विधान परिषद् की वित्तीय प्रक्रिया सम्बन्धी अधिकार विधान सभा से कम है।

विधान परिषद् और पुनरीक्षण सम्बन्धी कार्य :-

वस्तुतः संविधान निर्माताओं का उद्देश्य विधान परिषद् को विधान सभा के समकक्ष अथवा उसका प्रतिद्वन्द्वी सदन बनाना नहीं था, अपितु इसे परिशोधक सदन के रूप में स्थान देना था। इसी उद्देश्य से संविधान तथा उसके अन्तर्गत निर्मित प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमावली के अन्तर्गत विधान सभा को विधायन में सर्वोपरिता दी गई तथा विधान परिषद् को वे ही अधिकार दिये गए जो पुनरीक्षण सम्बन्धी कार्य के लिए आवश्यक हैं।

परिशोधक सदन के रूप में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् ने प्रायः सभी विधेयकों पर पुनर्विचार किया है, किन्तु विधेयकों पर पुनर्विचार के अतिरिक्त इसने १९५२ से १९६२ के बीच लगभग एक दर्जन से अधिक विधेयकों को संशोधित भी किया है और उन संशोधनों को विधान सभा ने स्वीकार किया है।

विधान परिषद् द्वारा किये गये संशोधनों में शाब्दिक तथा बड़े संशोधन दोनों हैं। द्विसदनीय व्यवस्था के विरोधी विचारकों का सामान्य मत यह है कि द्वितीय सदन द्वारा किया गया अधिकांश संशोधन शाब्दिक होते हैं जो विशेष महत्त्व नहीं रखते। इस विचार से पूर्णतः सहमति प्रदान नहीं की जा सकती। वस्तुतः विधेयक की व्यवस्थाओं के लिए उचित शब्द का प्रयोग नहीं होने से विधेयक में अस्पष्टता रह जाती है जिसके परिणामस्वरूप कठिनाइयाँ (उत्पन्न) हो सकती हैं। उदाहरणार्थ १९५४ ई० का उत्तर प्रदेश पंचायत राज (संशोधन) विधेयक के खंड ५६ के मूल अधिनियम की धारा ७४ में 'केस' 'सूट' और 'प्रोसीडिंग्स' शब्द का प्रयोग हुआ था। इन तकनीकी शब्दों को गांव पंचायतें या न्याय पंचायतें आसानी से यह नहीं समझ सकती थीं कि 'केस' का तात्पर्य 'क्रिमिनल केस' से है, 'सूट'

का तात्पर्य 'सिविल सूट' से है तथा' प्रोसीडिंग का तात्पर्य 'रैवेन्यू' से है। अतएव इसके स्पष्टीकरण के लिए प्रतापचन्द्र आजाद , विधान परिषद् सदस्य ने इन शब्दों के स्थान पर क्रमश: 'क्रिमिनल' ,'सिविल' और 'रैवेन्यू' शब्दों के प्रयोग किये जाने का संशोधन प्रस्ताव रखा था ।[1] विधान परिषद् ने आजाद के इस संशोधन प्रस्ताव को स्वीकार किया जिससे विधान सभा भी सहमत थी ।

शाब्दिक संशोधन का दूसरा उदाहरण १९५५ई० के उ०प्र० होम्योपैथिक मैडिसिन (संशोधन) विधेयक में विधान परिषद् द्वारा किया गया संशोधन है । परिषद् सदस्य प्रतापचन्द्र आजाद ने विधेयक की धारा ५ की प्रस्तावित उप-धारा (६) में अन्तिम पंक्ति के अन्त में' जो होम्योपैथी के क्वाली फाइड डाक्टर हों' , को बढ़ाने का संशोधन प्रस्ताव रखा था ।[2] विधान परिषद् ने इस संशोधन को स्वीकार किया था जिससे विधान सभा भी सहमत थी । इस संशोधन का तात्पर्य यह था कि होम्योपैथिक औषधियों और औषधालयों के निरीक्षक नियुक्त होने वाले व्यक्ति होम्योपैथी के योग्य डाक्टर हों । यदि निरीक्षक होम्योपैथी के योग्य डाक्टर हैं तो वह निरीक्षण सम्बन्धी कार्य का सम्पादन ठीक से कर सकेंगे और औषधालय वाले या औषधि उत्पादक भी उन्हें किसी प्रकार का धोखा नहीं दे सकेंगे । मूल अधिनियम में इस प्रकार का उपबन्ध नहीं था जिसके परिणामस्वरूप वैसे व्यक्ति भी निरीक्षक नियुक्त हो सकते थे जो होम्योपैथी के योग्य डाक्टर न हों ।

निष्कर्ष यह कि उपर्युक्त दोनों संशोधन शाब्दिक होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं ।

१९५४ ई० के उ०प्र० जोत चकबन्दी (संशोधन) विधेयक के कुछ खण्डों की अस्पष्टता को दूर करने के लिए भी विधान परिषद् द्वारा महत्त्वपूर्ण संशोधन हुआ

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, सं० २६, १४ सितम्बर, १९५४, पृ० ५९२-५९३
२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, सं० ४१, पृ० २३७

है । मूल अधिनियम की धारा ३ के उपखण्ड (२) में "अपवाद" शब्द का अनुचित प्रयोग हुआ था जिसके परिणामस्वरूप कठिनाइयाँ उत्पन्न होने की संभावना थी[१]। विधेयक में बाग की भूमि को जोत चकबन्दी से अलग रखे जाने की व्यवस्था थी। विधेयक के इस उपबन्ध से यह संभावना थी कि चकबन्दी का कार्य प्रारम्भ होने के बाद भी लोग चकबन्दी से बचने के लिए अपनी भूमि में बाग रख सकते थे जिसके परिणामस्वरूप कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती थीं। अतएव चकबन्दी से बचने के लिए जोत की जमीन में लोग बाग नहीं रख सकें, इसी आवश्यकता को ध्यान में रख कर विधान परिषद् ने विधेयक में संशोधन किया था। विधान परिषद् के संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि विज्ञप्ति प्रकाशित होने के दिन जो भूमि बाग थी या जो जमींदारी उन्मूलन की धारा १२३ के अन्तर्गत आती थी, केवल उसके ऊपर चकबन्दी का इस्तेमाल नहीं हो।

इसी प्रकार १९५४ ई० का उ०प्र० नगरपालिका (संशोधन) विधेयक को भी विधान परिषद् ने संशोधन द्वारा विधेयक से वैधानिक त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ मूल अधिनियम की नई प्रस्तावित धारा ४९ इस प्रकार थी :- "Where a person who is already a member of the board is elected President he shall subject to the provisions of sub section(1) cease to be a member with effect from the date of ~~xxxxxxxx~~ commencement of his term as President."

उपर्युक्त धारा पर विचार करने से इसमें निहित त्रुटियाँ स्पष्ट मालूम पड़ती हैं। इस धारा के अन्तर्गत नगर पालिका का कोई सदस्य जो अध्यक्ष निर्वाचित हुआ है, किन्तु अध्यक्ष निर्वाचित होने के कुछ दिनों के बाद यदि उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो, तो उस स्थिति में वह अध्यक्ष पद से अपदस्थ होगा और उपर्युक्त धारा के अन्तर्गत उसकी सदस्यता भी समाप्त हो जायेगी।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०सं० ३६, पृ० ७९

अत: यह युक्ति संगत नहीं है कि कोई व्यक्ति जो अध्यक्ष होने के पूर्व नगरपालिका का सदस्य है, अध्यक्ष पद से हटने के बाद नगरपालिका की उसकी सदस्यता भी समाप्त हो जाय ।

द्वितीयत: प्रत्येक नगरपालिका की सदस्य संख्या सरकार द्वारा निर्धारित कर दी गई थी । उदाहरणार्थ बरेली नगरपालिका की सदस्य संख्या ४५ निश्चित की गई थी । इन पैंतालीस सदस्यों में जो कोई अध्यक्ष चुन लिया जाता है, तो विधेयक की उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार नगर पालिका की उसकी सदस्यता भी समाप्त हो जाती है । इसका सीधा सा अर्थ यह होगा कि उस नगर पालिका की सदस्य संख्या जो पैंतालीस निश्चित की गई है, चौवालीस ही रह जायेगी ।

अतएव इन दोनों त्रुटियों को दूर करने के लिए विधान परिषद् ने उपर्युक्त धारा ४६ में प्रस्तावित वाक्य खंड को हटाकर "if he is not already a member of the board" को रखे जाने का संशोधन पारित किया था जिसके अनुसार केवल उसी व्यक्ति की नगरपालिका की सदस्यता अध्यक्ष पद से हटने के बाद समाप्त होगी जो अध्यक्ष होने के बाद भी नगरपालिका का सदस्य नहीं है ।

विधेयक से अस्पष्टता तथा वैधानिक त्रुटियों को दूर करने के प्रयोजन से विधान परिषद् द्वारा पारित संशोधनों के अतिरिक्त कुछ ऐसे संशोधन भी पारित हुए हैं जिनका सम्बन्ध कृषक वर्ग के हित से है । उदाहरणार्थ १९५२ ई० के उ०प्र० जमींदारी उन्मूलन और भूमि व्यवस्था विधेयक के खण्ड २४ के बाद नया खण्ड २४-क मूल अधिनियम की धारा १२६ के रूप में बढ़ाया गया था जो इस प्रकार है :-
"१२६-क अस्थिर और अस्थायी कृषि के क्षेत्रों अर्थात् झांसी जिले के हाट तरैटा भूखण्डों और बुन्देल खण्ड में अवर श्रेणी की भूमि के खण्डों, के सम्बन्ध में इस अध्याय और अध्याय १० के प्रयोजनों के लिए शब्द "खाता" का आशय ऐसे क्षेत्र से होगा जिससे तत्समय कोई खातेदार तत्सम्बन्धी किसी आचार या प्रथा के अनुसार वास्तव में खेती करता हो ।"[१]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०,खं० ३०, पृ० २०७, प्रस्तावक श्री कुंवर महावीर सिंह

इस संशोधन का सम्बन्ध बुन्देल खण्ड और झांसी जिले से था । बुन्देलखण्ड की जमीन पथरीली तथा रेतीली होने के कारण उर्वरा नहीं है । अत: यदि किसी किसान के पास चार खेत है, तो वह एक समय में एक ही खेत जोतता है और तीन खेत पड़े रहने देता है । इस तरह से यह कभी नहीं होता कि वह चारों खेत एक साथ जोते और बोये । अत: यदि उपर्युक्त संशोधन नहीं किया जाता तो उसे सभी खेतों का लगान देना पड़ता, जबकि वह फायदा सभी खेतों से नहीं उठाता ।

उपर्युक्त संशोधनों के अतिरिक्त विधान परिषद् ने जिन विधेयकों को संशोधित किया है, उन संशोधनों को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है ।

विधान परिषद् द्वारा किये गये संशोधनों की तालिका

विधेयक	खण्ड या उपखण्ड जिसमें संशोधन किया गया है ।	संशोधन के वाक्य या शब्द	प्रस्तावक	खण्ड तथा पृष्ठ
१९५२ ई० का उ०प्र० जमींदारी के ऋण कम करने का विधेयक	(१) खंड २ के उपखंड(फ) की तीसरी और चौथी पंक्ति के शब्द	'एन एडवांस' के स्थान पर 'एण्ड एडवांस्ड' रख दिया गया	श्री जमीलुर्रहमान किदवई	उ०प्र०वि०परिषद् खंड २८,२९ अक्टू० १९५२, पृ० ९७
	(२) खंड २ के उपखंड(फ) (य) के शब्द	शब्द 'उद्देश्यों' के स्थान पर 'उद्देश्य' रख गया	श्री कुंवर महावीर सिंह	वही
	(३) खंड २ के उपखंड(७)में	शब्द 'किन्तु' निकाल दिया गया और आगे लिखे शब्दों के पहले शब्द 'यहांपर' और 'पीछे' मैं' निकाल दिये गये ।	कु०महा०	वही,पृ०९८
	(४) खंड ३ के उपखंड(२) (१) १ में	शब्द 'उक्त प्रकार के अधिकारी' के स्थानपर शब्द 'उन अधिकृत' रख दिया गया ।	कु०महावीरसिंह	वही,पृ०९९

विधेयक	खण्ड या उपखण्ड जिसमें संशोधन किया गया है।	संशोधन के वाक्य या शब्द
	५. खण्ड ३ के उपखण्ड ३(ख)	शब्द "बाद" के स्थान में शब्द "पश्चात् रखा गया।
	६ [२]खण्ड ६ के उपखण्ड २ में	शब्द "खण्डों और" और(डी)के बीच आये हुए शब्द (सी) के स्थान पर (बी) कर दिया गया
	७ अनुसूची १ के नियमै (चालीस के बराबर हो)"केबाद	निम्नलिखित जोड़ दिया गया-- "और जहां यह २० से कम है, यह २० के बराबर समझा जायगा।"
२. १९५२ ई० का उ०प्र०जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था विधेयक	८ खण्ड २४ के बाद नया खण्ड २४-क के रूप में बढ़ाया गया	"२४-क मूल अधिनियम की धारा १२६ के बाद निम्नलिखित, नई धारा १२६ क के रूप में बढ़ायागया "१२६-क अस्थिर और अस्थायी कृषि के क्षेत्रों अर्थात् झांसी जिले के हाट तरेटा भूखण्डों और बुन्देलखण्ड के अवर श्रेणी की भूमि के लिए शब्द" खाता " का आशय ऐसे क्षेत्र से होगा जिसमें तत्समय कोई खातेदार तत्सम्बन्धी किसी आचार या प्रथा के अनुसार वास्तव में खेती करता हो।
	६. खण्ड २६ के उपखण्ड (१) (क) की दूसरी पंक्ति में शब्द" प्रथम श्रेणी" को निकाला गया	
	खण्ड ३५ के स्थान पर निम्नलिखित रखा गया	"३५-मूल अधिनियम की धारा १५७ की उपधारा(१) में :- (१) शब्द और संख्या" धारा १३३ के खण्ड(क) के उपखंड(५)" के स्थान पर" धारा"११" रखा गया।

१. उ०प्र०वि०प०की कार्य०सं०३०,पृ०२०७से २१२ तक प्रस्तावक क०महावीर सिंह

विधेयक	खण्ड या उपखण्ड जिसमें संशोधन किया गया है।	संशोधन के वाक्य या शब्द
		(२) निम्नलिखित स्पष्टीकरण के अन्त में बढ़ाया गया :- स्पष्टीकरण- खण्ड (ङ) में प्रयुक्त 'स्वीकृत संस्था का आशय किसी शिक्षा संस्था या संस्थाओं के वर्ग से है जो सरकार द्वारा उक्त प्रकार की संस्था प्रख्यापित किये जायं।
	११.[१] खंड ५० के उपखंड (१)(ग) में प्रस्तावित खंड(ग) के स्थान पर निम्नलिखित रख दिया गया	"(ग) यदि वह धारा १८ की उप-धारा(२) के अधीन भूमिधर बना हो, तो निहित होने के दिनांक से ठीक पहले के दिनांक पर भूमि के संबंध में उसके द्वारा देय लगान के आधे के बराबर धनराशि का संयुक्त प्रान्तीय काश्तकार(विशेषाधिकार उपार्जन) विधान(एक्ट),१९४९ ई० की धारा ४ के अधीन उसके द्वारा देय समझा जाने वाला लगान। किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि यदि किसी संविदा की शर्तों या आधार के अनुसार जिसके अधीन उक्त दिनांक पर भूमि कब्जे में रही हो, उस भूमि के सम्बन्ध में किसी भूमिधर द्वारा देय लगान नियत अवधियों पर बढ़ता

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, खं० ३०, पृ० २२३-२२४, संशोधन संख्या नं० ११ से १३ तक सभी के प्रस्तावक कुंवर महावीर सिंह।

रहा हो , तो देय मालगुजारी वह धन राशि होगी जो नियत की जाने वाली रीति और सिद्धान्तों के आधार पर इस प्रकार असिस्टेंट कलेक्टर द्वारा अवधारित की जाय कि अवधारित धन राशि किसी भी समय पर लगान की उस अधिकतम धन-राशि से अधिक न हो, जो भूमिधर द्वारा उक्त संविदा या आचार के अनुसार देय होगी ।"[१]

१२. खंड ५० के बाद निम्नलिखित नये खंड ५०-क के रूप में बढ़ा दिया गया ।

"५० क मूल अधिनियम की धारा २४६ की उपधारा(१) में खंड (ग) के बाद निम्नलिखित प्रतिबंध के रूप में बढ़ा दिया गया --

"किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि यदि किसी संविदा की शर्तों या आचार के अनुसार, जिसके उक्त दिनांक पर भूमि कब्जे में रही हो, उस भूमि के सम्बन्ध में किसी सीरदार देय लगान नियत अवधियों पर बढ़ता रहता हो, तो देय मालगुजारी वह धनराशि होगी जो नियत की जाने वाली रीति और सिद्धान्तों के आधार पर असिसटेंट कलेक्टरों द्वारा इस प्रकार से अवधारित की जाय कि अवधारित धनराशि किसी भी समय पर लगान की उस अधिकतम्

१. इसका सम्बन्ध भूमिधरों से था ।

		धनराशि से अधिक नहीं हो जो सीरदार द्वारा उक्त संविदा या आचार के अनुसार देय होगी ।[१]
१३	खंड ५२-क मूल अधिनियम की धारा २५१ की उप-धारा(१) के रूप में पुन: परिगणित किया गया और निम्नलिखित को नई उपधारा(२) के रूप में रखा गया ।[२]	(२) सीरदार द्वारा देय मालगुजारी उसके खाते के क्षेत्रफल के घटने या बढ़ने के आधार पर परिवर्तित की जा सकेगी ।
१४	खंड ६२[३] उपखंड (१) के पहले निम्न-लिखित नये खंड के रूप में बढ़ा दिये गये	"क-१- क्रमसंख्या ६ के इन्दराज के स्तम्भ ४ मे शब्द "प्रथम श्रेणी" निकाल दिया गया ।
	बी. खण्ड ६२ उपखण्ड(१) के बाद नये खंड(१-क) के रूप में बढ़ा दिया गया	"(१-क) क्रमसंख्या ६ के इन्दराज के बाद निम्नलिखित क्रमसंख्या ६-ख नये इंदराज के रूप में बढ़ा दिया गया — ६- ख १४० रुपये की वापसी के लिए प्रार्थना | असिसटेंट कलक्टर / कमिश्नर
	सी. खण्ड २ के बाद निम्नलिखित नये खंड(२-क) और (२-ख) के रूप में बढ़ा दिया गया ।	" (२-क) क्रमसंख्या १६ के इंदराज के बाद निम्नलिखित नया इंदराज क्रम संख्या १६-क पर बढ़ा दिया गया — "१६-क-२३२ ऐसे अधिवासी द्वारा जिसमे परगना का अधिकारी, कमिश्नर, सबंध

१. इसका सम्बन्ध केवल सीरदारों से है ।
२. उ०प्र०विधान परि० की कार्य० खं०३०,पृ० २२५, प्रस्तावक कुंवर महावीर सिंह
३. वही, पृ० २२६, प्रस्ता० कुंवर महावीर सिंह

		में धारा २० क खंड(ख) लागू असिसटेंट कलक्टर, होता हो कब्जे की वापसी के लिए प्रार्थना पत्र
		*(२-ख) क्रमसंख्या १७ के इंदराज के बाद निम्न लिखित इंदराज क्रमसंख्या १७-क पर बढ़ा दिया गया ।
		*१७-क-२३३ लगान का नकदी में परिवर्तन असिसटेंट कलक्टर | कमिश्नर | करने का प्रार्थना पत्र
	१५ अनुसूची के क्रमसंख्या ५ के बाद निम्नलिखित नया इंदराज क्रम-संख्या ५-क के रूप में बढ़ा दिया गया[१]।	५-क-३९ वर्तमान धारा के स्थान पर निम्नलिखित रख दिया गया — "Notwithstanding anything contained in the U.P. Panchayat Raj Act 1947, the Collector may, on his own motion, and shall, on the application of any person, correct any error or omission in the annual register."
१९५२ ई० का उ०प्र०इलेक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) बिल	(१) उपखण्ड(डी) में "फार नैसेसरी यूज इन एग्रीकल्चर" "(For necessary use in agriculture)" को स्पष्ट करने के लिए[२]	"(d) by a cultivation in agricultural operations carried in or near his fields such as the pumping of water for irrigation, crushing, milling or treating the produce of these fields or chaff cutting."
	(२) तीसरे प्रतिबंध की दूसरी पंक्ति में "तो" शब्द के बाद का समस्त शब्द निकाल कर निम्नलिखित रख दिया गया ।[३]	"लगाई गई इलेक्ट्रिसिटी विघुत शुल्क(ड्यूटी) इतनी कम धनराशि होगी जो लगाई हुई दर से मिलकर ६ आना प्रति यूनिट से अधिक नहीं रख दिया जाय"
	(३) विधेयक के दूसरे प्रबन्ध में[४] रेट्स चार्ज के स्थान पर	"~~ववव~~ " यूनिट चार्ज्ड" रख दिया गया

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्य० सं० ३०, पृ० २३२, प्रस्तावक कुंवर महावीर सिंह
२. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०, सं० २७, ११ अक्टूबर १९५२, पृ० ३७४, प्रस्तावक - निर्मलचन्द्र चतुर्वेदी
३. वही, पृ० ३७७, प्रस्ता० श्री सत्यप्रेमी
४. वही, पृ० ३७६, प्रस्तावक निर्मलचन्द्र चतुर्वेदी

(४) विधेयक में स्पष्टीकरण की तीसरी पंक्ति के शब्द "जो" के बाद निम्न-लिखित शब्द बढ़ा दिये गये [१]	"उसके अपने" शब्द बढ़ाया गया ।
(५) खंड उपखंड २ की दूसरी पंक्ति में "द्वारा" शब्द के बाद समस्त शब्द निकालकर निम्नलिखित शब्द रख दिये गये । [२]	"एनर्जी (विद्युत शक्ति) की पूर्ति किये जाने से प्राप्य धनराशि पर प्रथम भार होगी और यह उसके ऊपर राज्य सर-कार का ऋण होगा"
(६) खंड ४ उपखंड(३) मे शब्द अंक (३०) के स्थान पर निम्न-लिखित शब्द रख दिया गया । [३]	"अंक ७ "
(७) खण्ड ६ के उपखण्ड २ की अंतिम पंक्ति में शब्द "नियुक्त" के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रख दिया गया । [४]	" निश्चित"
(८) धारा ७ के उपखंड ख की प्रथम पंक्ति में आदि के शब्द "किसी दूसरी" को निकालने का संशोधन प्रस्ताव तथा शब्द" की" के बाद "किसी अन्य शब्द का प्रस्ताव", [५]	"किसी दूसरे" को निकालने का संशोधन तथा "की" के बाद "किसी अन्य शब्द रखने का प्रस्ताव

१, उ०प्र०विधान परि०की कार्य० खंड २७, पृ० ३७७,प्रस्तावक सत्यप्रेमी

२, वही, पृ० ३७८, प्र० सत्यप्रेमी

३, वही

४, वही, पृ० ३७९, प्र० सत्यप्रेमी

५, वही, पृ० ३८०, प्र० सत्यप्रेमी

---

	(६) खंड १० के उपखंड `२` में शब्द विशेषत: के बाद कोमा लगा कर तथा शब्द `तथा` के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे गये[१]।	विशेषत: के बाद कोमा (,) लगाया गया शब्द `तथा` के स्थान पर `किन्तु` रखा गया ।
	(१०) खंड २ के उपखण्ड (क) (२) की पंक्ति ५ में [२] उपखण्ड३ ग(३) में,	`ऐसा` शब्द की जगह पर `ऐसे` कर दिया गया । जहाँ-जहाँ शब्द` धन` आया है, उसके स्थान पर `मूल्य` रखा गया ।
	उपखण्ड (ग) (५) के स्पष्टीकरण में आदि शब्द इकाई के बाद ,	`धन` बदल कर ` मूल्य रख दिया गया ।
६५४ ई० का उ०प्र० जोत चकबन्दी (सं०) विधेयक	(१) खण्ड नं० २ को खण्ड २ के उपखंड (१) के रूप में पुन: परिगणित किया गया और उसके बाद निम्नलिखित को उक्त खंड के एक नये उपखण्ड के रूप में रख दिया गया[३],	`(२) मूल अधिनियम की धारा ३ के उपखण्ड (२) में` अपवाद` के स्थान पर निम्नलिखित रख दिया गया ।` `स्पष्टीकरण` इस खंड में शब्द `जोत` में ऐसी भूमि का अंतरभाव है जो पशुचर भूमि के रूप में काम में लाई जाती हो या काम में लाई जाने के लिए अभिप्रेत हो, किन्तु उसमें ऐसी भूमि का अन्तभा[र्व] नहीं है जो अधिनियम की धारा ४ के अधीन जारी की गई विज्ञप्ति के दिनांक

---

१. उ०प्र० वि०परि० की कार्य०सं० २७,पृ० ३७१,प्रस्तावक सत्यप्रेमी

२. वही, पृ० ३६६, प्रस्ता० सत्यप्रेमी

३. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, सं० ३६, ३१ अगस्त १६५४, पृ० ७६, प्रस्तावक श्री रामलगन सिंह

	को बाग थी या जिसे १९५० ई० के जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम की धारा १३२ लागू होती है ।
(२) खंड ३[१] के पश्चात् निम्नलिखित को एक नये खंड क ३-क के रूप में बढ़ा दिया गया ।	"३-क मूल अधिनियम की धारा ७ के शब्द "सम्पूर्ण गांवों के खेत-खेत की पड़ताल करके" के स्थान पर शब्द "नियत की जाने वाली प्रक्रिया के अनुसार पड़ताल करके" रख दिये गये और दुबारा प्रयोग हुए शब्द "करेगा" और शब्द "जिसमें" के बीच में "या करेगी" रख दिये गये ।
(३) खंड ४ के प्रश्चात् निम्नलिखित नये खंड ४-क के रूप में बढ़ा दिया गया	"४-क मूल अधिनियम की धारा ९ में से शब्द "और उसकी एक प्रतिलिपि कलक्टर को भेज दी जायेगी" निकाल दिये जायं ।"
(४) खंड ४ के उपखण्ड(२) के पश्चात् निम्नलिखित नया उपखण्ड (३) के रूप में बढ़ा दिया गया ।	"७-ख---मूल (३) उपधारा (४) में संख्या ३० के स्थान पर संख्या २१ रख दी जाय ।
(५) नया खण्ड ४ के पश्चात् निम्नलिखित नये खंड ४-ख के रूप में बढ़ा दिया गया	"४-ख- मूल अधिनियम की धारा १० में शब्द "प्राप्त होने और शब्द" पर" के बीच में शब्द" और उसकी जांच कर लेंगे रख दिये जायं ।

१. उ०प्रदेश विधान परिषद् की कार्यवाही खण्ड ३६, ३१ अगस्त १९५५, पृ० ८० से ८६ तक, प्रस्तावक रामनन्दन सिंह

---

(६) निम्नलिखित खंड ६(१) के रूप में बढ़ा दिया गया और वर्तमान खंड ६ के ६(२) के रूप में पुनः परिगणित किया गया ।	६(१) - मूल अधिनियम की धारा ११ की उपधारा (१) में शब्द "तैयार करेगा" के पश्चात् शब्द "या तैयार करेगा"

(७) खंड ८ में प्रस्तावित धारा १५ की उपधारा (१) के खंड(ख) में शब्द "केवल उन्ही" के पूर्व निम्नलिखित शब्द रख दिया जाय " जहाँ तक संभव हो

१९५४ ई० का पंचायत राज (सं) विधेयक [१]	(१) खं० ४४- मूल अधिनियम की धारा ५३ मे - (१) उपधारा (२) में शब्द पर निम्नलिखित रखे गये	" constitute within three days a Bench to deal के स्थान पर " refer the matter to a Bench" रखे गये और अन्त के शब्द - " Provided that at least one Punch of the Bench shall belong to the Gaon Sabha in which the person resides." निकाल दिया गया । सैमीकौलन (;) के स्थान पर पूर्ण विराम (।) रखा गया ।
	(२) २. निम्नलिखित को नवीन उपधारा (३) के रूप में बढ़ा दिया गया[२]।	"(3) If the Person required to execute a bond as aforesaid under Sub-section (2) fails to do so, he shall be liable to pay a penalty up to five rupees as the Bench may fix for every day the default continues during the period fixed in the order."
	(३) खंड ५८ मूल अधिनियम की धारा ७४ में	जहाँ कहीं वाक्य खंड "कैस" , "सूट" और प्रोसीडिंग्स" आया हो उसके स्थान पर "क्रिमिनल", "सिविल" और "रैवेन्यू" रखे गये

---

१. उ०प्र०विधान परि० की कार्य० खं०३६,१४ सित० १९५४,पृ० ५९२

२. उ०प्र०विधान परि० की कार्य खं० ३६, १४ सितम्बर १९५४,पृ० ५९३,प्रस्ता० श्री इन्द्रसिंह नयाल

	(४) खंड ६१ के उपखण्ड (२) के अधीन धारा ७५ की प्रस्तावित उपधारा (२) की पहली पंक्ति में	शब्द "सिविल" तथा शब्द "क्रिमिनल" के बाद आने वाले शब्द "केस" को हटा दिया गया।
	(५) खंड ६४ में	"For the trial of" शब्द समूह के स्थान पर "for the trial of a case, suit or Proceedings" रखा गया।
	(६)२ खंड ६६ के अधीन प्रस्तावित धारा ८५ की(१) की आठवीं पंक्ति में	शब्द "क्रिमिनल" और "सिविल" के बीच आने वाले शब्द "केस" को हटा दिया गया।
	की उपधारा (२) की पहली और चौथी पंक्ति में	शब्द 'criminal' or 'civil' के बीच शब्द को हटा दिया गया।
१९५४ ई० का म्युनिसिपैलिटीज विधेयक	(१) १७ के मूलअधिनियम की नई प्रस्तावित धारा ४९ (२) को निकाल दिया गया।[2]	४९ (२) जिसे निकाल दिया गया है, इस प्रकार है :- "Where a person who is already a member of the board is elected President he shall subject to the provisions of Sub-section (1) cease to be a member with effect from the date of Commencement of his term as President."
	उपर्युक्त संशोधन के बाद निम्न लिखित बढ़ा दिया गया।[3]	निम्नलिखित बढ़ा दिया गया — "if he is not already, a member of the board."
	(२) प्रस्तावित धारा ५४-ए के खण्ड ७ के बीच निम्न-लिखित ७ ए के रूप में रखा गया।[4]	"7-(a) In case of equality of votes, the judicial officer shall decide by a lot which of the candidates having equal votes is to be declared elected."

१. संशोधन संख्या १ से ६ तक के सभी प्रस्तावक श्री प्रतापचन्द्र आजाद, उ०प्र०विधान परि०की कार्य०,खं० ३६,पृ० ५९६ से ६०४ तक

२. विधान परि० की कार्य० खं० ३७,२७सित०१९५४, पृ० ५११,प्रस्ता०प्रतापचन्द्रआजाद

३. वही, पृ० ५१२,प्रस्तावक श्री शान्तिस्वरूप , ४. वही,पृ०५१४,प्रस्ता०चन्द्रसिंह

	(३) खंड २० के उपखण्ड (३) को निकाल दिया गया[१]	उपखंड(३) के निकाले गये वाक्य :" "at the end of Sub-Section (14) the following shall be added as an exception: " Exception – Nothing here in shall apply to the case of a President elected at a general election held in the year 1954".
१९५४ ई० का उ०प्र० चलचित्र (विनियमन) विधेयक	(१) खंड संख्या २ भाग (क) की पंक्ति में[२]	" चित्र श्रेणियाँ " के स्थान पर चित्रावलियाँ रखा गया ।
१९५४ ई० का इलाहाबाद यूनिवर्सिटी (सं) विधेयक[३]	(१) खण्ड २ के अन्तर्गत मूल अधिनियम की धारा २ में	शब्द 'impart' के स्थान पर 'Provide' रखा गया
	(२) खंड १० के अन्तर्गत धारा १२ की उपधारा (६) के अन्त में	निम्नलिखित शब्द निकाल दिया गया :– " An order passed by the chancellor under this rule sub-section shall not be subject to arbitration under section 47."
	(३)ए. खण्ड १४ के अन्तर्गत धारा १७ की उपधारा (१) की मद (१३) में	" nominated by the State Government" निकाल दिये गये।
	बी खण्ड १४ के अन्तर्गत धारा १७ की उपधारा (१) की (१३) के अन्त में	निम्नलिखित बढ़ा दिया गया – " but such representatives shall be elected by the bodies and institutions themselves."

१. विधान परि० की कार्य०, खं १६, पृ० ५१५, प्रस्तावक श्री प्रतापचन्द्र आजाद

२. उ०प्र०वि०परि० की कार्य खण्ड ३८,२३ सित० १९५४, पृ० ५६६ , प्रस्ता०सत्यप्रेमी

३. उ०प्र०विधान सभा की कार्य०, खं० १४८, पृ० ४३८ से ४५५ तक

---

(४) खंड १४ के अन्तर्गत धारा १७ की उपधारा (१) की मद में (१७) के स्थान पर निम्नलिखित रखे गये।

" (XVII) Representatives of the registered graduates be elected according to the system of Proportional Representation by means of the single transferable vote, by registered graduates of such standing as may be prescribed by the statutes from among such registered graduates as are not in the service of the university, a College, an Associated College or a Hostel and whose names have been on the register of graduates for three years or if the statutes prescribe a longer period, for such period.

(५) खण्ड १६ के अन्तर्गत धारा २० की उपधारा (१) की मद में (८) के स्थान पर निम्नलिखित वाक्य रख दिये गए :-

"(VIII) Five persons to be elected according to the system of Proportional Representation by means of the single transferable vote by the Government from among such members as are not in the service of the university, a College, an associated College or a Hostel."

(६) "(६) विधेयक के खण्ड १६ के अन्तर्गत धारा २३ की उपधारा (१) की मद (३) के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रख दिया गया

(III) three members of the Court not being the members of the Executive Council, to be elected according to the system of Proportional Representation by means of the single transferable vote, of whom one should be a teacher of the university and the other two shall be persons not in the service of the university, a college, an Associated College or a Hostel"

(७) खंड २७ के बाद निम्नलिखित एक नया खंड २८ के रूप में जोड़ दिया गया।

मूल अधिनियम की धारा ३४ की उपधारा (३) के अन्त में प्रतिबन्धात्मक खंड के पूर्व निम्नलिखित जोड़ दिया गया--

" by an Authority of the university other than the Court."

(८) संक्रमणाकालीन खण्ड ४१ के स्थान पर

निम्नलिखित रख दिया गया :-

* ४१-(१) इस अधिनियम के सरकारी गजट में प्रथम प्रकाशन के पश्चात् किसी भी समय राज्य सरकार के लिए वैध होगा कि वह इस सम्बन्ध में ऐसा कोई भी कार्य करे जो इस अधिनियम द्वारा

संशोधित मूल अधिनियम के उपबन्धों को सप्रभाव बनाने के लिए सामान्यत: आवश्यक हो जिसके अन्तर्गत यूनिवर्सिटी के प्राधिकारियों का संगठन किसी नये परिनियम का बनाना या किसी परिनियम का संशोधन और ऐसे परिनियमों या संशोधनों के प्रचलित होने के दिनांक का नियत किया जाना भी हो ।

(२) उपधारा (१) के अधीन किसी परिनियम या संशोधन का वही बल और प्रभाव होगा जैसा कि मूल अधिनियम की धारा ३१ के अनुसार और उसके अधीन निर्मित परिनियम का संशोधन हो ।

(३) उपधारा (१) द्वारा प्रदत्त अधिकार का उपयोग जब जब आवश्यकता पड़े किया जासकता है पर इस अधिनियम के सरकारी गजट में प्रथम प्रकाशन के अठारह महीने के पश्चात् उपयोग नहीं किया जा सकता ।"

१९५४ ई० का हस्तिनापुर नगर विकास मंडल विधेयक	(१) खंड १३ के उपखण्ड में[१]	"विस्थापित व्यक्तियों" के स्थान पर शब्द "विस्थापित व्यक्ति तथा किसी अन्य व्यक्ति" रखा गया ।

१. उ०प्र० विधान परिषद् सभा की कार्य०, सं० १४८, फरवरी १४, १९५५, पृ० २५८

१९५५ ई० का उ०प्र० होम्योपैथिक मैडिसिन (सं) विधेयक	(१) खंड २ में प्रस्तावित धारा ५ की उपखंड(१) की दूसरी पंक्ति में[१]।	शब्द" धारा ४ से लेकर तीसरी पंक्ति में व्यक्तियों में" तक निकाल दिया गया और उसके स्थान पर" बोर्ड के सदस्यों में" रखा गया ।
	(२) धारा ५ की प्रस्तावित उपधारा (६) में अंतिम पंक्ति के अन्त में निम्नलिखित शब्द[२] और बढ़ा दिए गए ।	निम्नलिखित बढ़ा दिया गया— "जो होम्योपैथी के क्वालीफाइड डॉक्टर्स हों ।"
१९५५ ई० का उ०प्र० जोत चकबन्दी (तृतीय संशोधन विधेयक	(१) खण्ड ६ की उपधारा (१) (क)[३] के	प्रतिबन्धात्मक खण्ड की प्रथम पंक्ति में आये हुए शब्द "अनुकूल" के स्थान पर शब्द "बिना" रखा गया
१९५८ ई० का उ०प्र० कोर्टफीस (सं०) विधेयक	(१) खण्ड १ के उपखण्ड (३) के स्थान पर[४]	निम्नलिखित रख दिया गया— "(३) यह उस तिथि से प्रचलित होगा जो राज्य सरकार, सरकारी गजट में विज्ञप्ति करके निश्चित करे ।"

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० सं० ४१, पृ० २२५, प्रस्तावक श्री जगन्नाथ आचार्य

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० , पृ० २२७, प्रस्तावक, प्रतापचन्द्र आजाद

३. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०, सं० ४४,१६ जून १९५५, पृ०४१,प्रस्ता०पूर्णचन्द्र विद्यालंकार

४. उत्तरप्रदेश विधान परिषद् की कार्यवाही, सं० ५८, २५ जुलाई १९५८, पृ० २८६-९०, प्रस्तावक शिवनारायण लाल

१९५८ ई० का उ०प्र० स्टैम्प (सं०) विधेयक	(१) खंड १ के उपखण्ड (३) के स्थान पर[1]	निम्नलिखित रख दिया गया- "(३) यह उस तिथि से प्रचलित होगा, जो राज्य सरकार सरकारी गजट में विज्ञप्ति करके निश्चित करे।"
१९६० ई० का उ०प्र० क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद् विधेयक	(१) खण्ड २ के उपखण्ड (१२-क) की द्वितीय पंक्ति में[2]	शब्द "जिला बोर्ड" के स्थान पर 'डिस्ट्रिक्ट बोर्ड' रख दिया गया
	(२) खण्ड १३ के उपखण्ड(क) के अन्त में[3]	निम्नलिखित जोड़ दिया गया- "अथवा आज्ञा या सजा को पूरी किये उसे ५ वर्ष न बीत गये हों।"

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० सं० ५८, २५ जुलाई १९५८, पृ० २९६ (प्रस्तावक-शिवनारायण लाल

२. उ०प्र० वि०परि० की कार्य० सं० ७८, २७ अप्रैल १९६१, पृ० २३१, प्रस्तावक तेलूराम

३. वही, पृ० २५४, प्रस्तावक श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार तथा कैलाशप्रकाश

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि विधान परिषद् ने कई विधेयकों में अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधन किया है और विधान सभा ने उन संशोधनों को मंजूर किया है। तालिका में उल्लिखित संशोधनों के अतिरिक्त १९५४ ई० का बिक्रीकर विधेयक और "कैटिल ट्रैस पास संशोधन विधेयक", १९५७ ई० का उ०प्र० इन्टरमीडिएट शिक्षा संशोधन विधेयक तथा १९६१ ई० का अन्तरिम जिला परिषद् विधेयक भी विधान परिषद् द्वारा संशोधित हुआ है। विधेयकों के अतिरिक्त इसने कई नियमावलियों को भी संशोधित किया है। उदाहरणार्थ सर्वश्री कुंवर महावीर सिंह तथा ज्योति-प्रसाद गुप्त (दोनों विधान परिषद् सदस्य) ने उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश तथा भूमि व्यवस्था नियमावली, १९५२ से सम्बन्धित अनेक संशोधन प्रस्ताव रखे थे जिन्हें विधान परिषद् ने स्वीकार किया था।

यद्यपि विधान परिषद् का वित्तीय अधिकार विधान सभा से कम है तथापि इसने कई वित्तीय विधेयकों को संशोधित किया है और विधान सभा ने उन संशोधनों को स्वीकार किया है। उदाहरणार्थ १९५२ ई० का उत्तर प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी (ड्यूटी) विधेयक, १९५४ ई० का उ०प्र० बिक्रीकर विधेयक तथा १९५८ ई० का उ०प्र०कोर्टफीस संशोधन विधेयक।

मई १९५२ से १९६२ के बीच एक भी विधेयक का ऐसा उदाहरण नहीं है जो विधान सभा द्वारा पारित होकर विधान परिषद् में संशोधित हुआ हो, किन्तु विधान सभा ने उस संशोधन को अस्वीकार किया हो, लेकिन १९५२ के पूर्व १९५० ई० के उ०प्र० जमींदारी विनाश और भूमिव्यवस्था विधेयक के प्रतिबंधात्मक वाक्य में विधान परिषद् ने कुछ वाक्य बढ़ाये जाने का संशोधन प्रस्ताव पारित किया था, किन्तु विधान सभा विधान परिषद् के सिफारिश से असहमत थी।[१] साथ ही विधान सभा ने विधेयक की धारा ६ के प्रतिबंधात्मक

---

१. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में सभापति पद से दिये गए निर्णयों का संकलन, २ फरवरी १९५० से १२ अक्टू०१९६०तक, वि०प०सचिवालय(१९६६), पृ० ८३

वाक्य को निकाल दिये जाने का प्रस्ताव पारित किया तथा विधान परिषद् को भी ऐसा ही करने के लिए संदेश भेजा था ।[1] निष्कर्ष यह कि विधान परिषद् ने अनेक विधेयकों तथा नियमावलियों के सम्बन्ध में परिशोधक सदन के रूप में कार्य किया है ।

विधान परिषद् विचारोत्तेजक सदन के रूप में :-

पुनरीक्षण सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त विधेयकों पर दिये गये सुझावों के आधार पर उ०प्र० विधान परिषद् का स्थान विचारोत्तेजक सदन के रूप में है । यह एक अलग प्रश्न है कि इसके विचारों अथवा सुझावों को किस रूप में अथवा किस मात्रा में स्वीकार किया गया है किन्तु यह सप्रमाण है कि उसके लाभप्रद विचारों तथा सुझावों की उपयोगिता को सरकार ने सकारा है ।

विधान परिषद् में सदस्यों द्वारा अभिव्यक्त विचारों के दो रूप निरूपित किये जा सकते हैं --आलोचनात्मक विचार और सुझावपूर्ण विचार । आलोचनात्मक पक्ष के अन्तर्गत भी उनके विचारों के दो पहलू हैं - संवैधानिक दृष्टि से विधेयक की आलोचना तथा व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर विधेयक की आलोचना । प्राय: सभी अध्यादेशों की आलोचना तथा उस पर विचार संवैधानिक दृष्टि से हुए हैं । संविधान के अनुसार अध्यादेश केवल उस समय लागू किया जा सकता है जब विधान मण्डल का सत्र नहीं चल रहा हो और विशेष परिस्थिति के कारण राज्यपाल अधिनियम पारित करने की आवश्यकता समझता हो ।[२] संवैधानिक इस उपबन्ध के आधार पर आगरा

---

१. किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इमारत और उनसे सम्बद्ध क्षेत्र के विषय में यह समझा जायेगा कि उनका बन्दोबस्त इसलिए इस व्यक्ति के साथ हो गया है जिसके अध्यासन में उक्त इमारत है ।"

- उ०प्र०वि०परि० में सभापति पद से दिये गये निर्णयों का संकलन, पृ० ८३

२. अनुच्छेद २१३(१)

विश्वविद्यालय से सम्बन्धित अध्यादेश के सम्बन्ध में,[१] श्री बृजेन्द्रस्वरूप, विधान परिषद् सदस्य का कथन है कि सरकार आगरा विश्व विद्यालय की त्रुटियों से पूर्व अवगत थी, अत: वह अध्यादेश की अपेक्षा विधेयक लाकर उन त्रुटियों को दूर कर सकती थी ।[२] सरकार की ओर से यह तर्क दिया गया कि जिस समय अध्यादेश लागू हुआ था, उस समय विधान सभा का सत्र नहीं चल रहा था । इसी बीच आगरा विश्व विद्यालय के उपकुलपति का कार्यकाल समाप्त होने वाला था । इस स्थिति में उपकुलपति के कार्यकाल को बढ़ाने के लिए अध्यादेश लागू करने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं था । सरकार के इस तर्क का खण्डन करते हुए विधान परिषद् के सदस्यों का कथन यह था कि उपकुलपति की कार्यावधि की समाप्ति के पूर्व विधान सभा का सत्र चल रहा था । सरकार यह जानती थी कि उपकुलपति का कार्यकाल समाप्त होने वाला है । अत: विधान सभा के उस अधिवेशन में विधेयक द्वारा उपकुलपति के कार्यकाल को बढ़ाया जा सकता था ।[३] विधान परिषद् सदस्य कुंवर गुरुनारायणके अनुसार सरकार को यह ज्ञात था कि वह भविष्य में आगरा विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में विधेयक लाने वाली है । यह इस बात का द्योतक है कि स्थिति सामान्य थी, अत: अध्यादेश की आवश्यकता नहीं थी ।[४]

उपर्युक्त अध्यादेश की आलोचना एक दूसरे संवैधानिक आधार पर भी की गई । आगरा विश्वविद्यालय का सम्बन्ध उत्तर प्रदेश राज्य से बाहर मध्यप्रदेश तथा विन्ध्यप्रदेश में स्थित महाविद्यालयों से भी था । विधान परि-

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० २८, ६ नवम्बर, १९५२, पृ० ३२२ से ३५८ तक

२. वही, पृ० ३४१

३. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० २८, पृ० ३४४

४. वही, पृ० ३२८

षद् के सदस्यों की दृष्टि में राज्यपाल को केवल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश लागू करना चाहिए जो राज्य विधान मण्डल के विधायिनी क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं। इस दृष्टिकोण से राज्यपाल को आगरा विश्व विद्यालय के सम्बन्ध में जिनका क्षेत्राधिकार उत्तर प्रदेश से बाहर भी था, अध्यादेश लागू करने का अधिकार नहीं था।

यद्यपि उपर्युक्त दोनों आलोचनाओं का आधार सामान्यत: सही है, फिर भी दूसरी आलोचना के सम्बन्ध में विचार करना वांछनीय है। वस्तुत: उत्तर प्रदेश राज्य से बाहर का कोई महाविद्यालय यदि आगरा विश्व विद्यालय से सम्बन्धित रहा हो, तो आगरा विश्वविद्यालय से सम्बन्धित अध्यादेश उस महाविद्यालय पर स्वभावत: लागू होगा, किन्तु यदि अध्यादेश का सम्बन्ध केवल किसी महाविद्यालय विशेष से ही जो दूसरे राज्य में स्थित है, वैसी स्थिति में अध्यादेश लागू करने के पूर्व उस राज्य से सहमति लेना उपयुक्त होगा जिस राज्य में वह महाविद्यालय स्थित है।

अध्यादेश का एक दूसरा उदाहरण जिसकी आलोचना संवैधानिक आधारों पर की गई स्थानीय निकाय के प्रशासकों की नियुक्ति से सम्बन्धित है। स्थानीय निकाय के प्रशासकों की नियुक्ति के लिए लागू किये गये अध्यादेश की वैधानिकता पर विचार प्रकट करते हुए विधान परिषद् सदस्य डा० ईश्वरीप्रसाद, प्रो० मुकुट बिहारीलाल और श्री कुंवर गुरुनारायण ने[1] अध्यादेश को अवैधानिक प्रमाणित किया था। अध्यादेश के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए सरकार की ओर से यह स्पष्टीकरण दिया गया कि "कानपुर नगरपालिका[2] की स्थिति ऐसी हो गयी थी कि प्रशासकों की नियुक्ति के लिए अध्यादेश लागू करना

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० सं० ३२, २६ अगस्त १९५३, पृ० ३७ से ४१ तथा पृ० ५१ से ५४ तक

२. वही, पृ० ६४

आवश्यक था ।"[१]

उपर्युक्त अध्यादेश के सम्बन्ध में विधान परिषद् के सदस्यों की आलोचनाओं में यथार्थता को मापने के लिए विधान परिषद् के तत्कालीन उपाध्यक्ष श्री निजामुद्दीन का विचार उल्लेखनीय है । श्री निजामुद्दीन सत्तारूढ़ कांग्रेसदल से विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए थे तथा उपाध्यक्ष पद के लिए उनका नाम निर्देशन भी कांग्रेस दल की ओर से ही हुआ था । अत: यह संभव है कि अध्यादेश द्वारा स्थानीय निकाय के प्रशासकों की नियुक्ति के पीछे सरकार का दृष्टिकोण वही रहा हो जो निजामुद्दीन का दृष्टिकोण था । उनके अनुसार अध्यादेश जो जारी हुआ है, वह काम को जल्दी करने के लिए और इस तरीके से जो काम हो रहा है, वह जल्दी हो जायेगा ।"[२] यदि निजामुद्दीन के [illegible] अध्यादेश लागू करने का आधार माना जाय, तो वह निश्चित रूप से संवैधानिक दृष्टि से अनुचित है । उनके कथनानुसार तो प्रत्येक कार्य चाहे आवश्यक हो या अनावश्यक उसे जल्दी से पूरा करने के लिए अध्यादेश लागू किया जा सकता है, किन्तु संविधान के अनुसार विशेष परिस्थिति में जब कि विधान मण्डल का सत्र नहीं चल रहा हो तथा कानून की महत्व आवश्यकता हो वैसी स्थिति में ही अध्यादेश लागू करना उचित है । इस दृष्टिकोण से विधान परिषद् सदस्यों द्वारा की गयी आलोचनाएं सही हैं ।

अन्य अध्यादेश की आलोचनाएं भी उपर्युक्त संवैधानिक आधार पर की गई हैं, उदाहरणार्थ पंचायत राज अध्यादेश के सम्बन्ध में विधान परिषद् सदस्य कुंवर गुरुनारायण, मुकुटबिहारीलाल, प्रभुनारायण सिंह तथा ईश्वरीप्रसाद ने अध्यादेश की आलोचनाएं संवैधानिक ~~दृष्टिकोण के~~ आधार पर ही की थीं ।[३]

---

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०,खं० ३२, २६ अगस्त,१९५३,पृ० ४९

२. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०,खं० ३४,४ मार्च १९५८, पृ० ५४८-५६४

३. वही ।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से विधेयक अथवा विधेयक का खण्ड कहाँ तक उपयुक्त है, इस पर सदस्यों ने विचार व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ कुंवर गुरुनारायण ने १६५५ ई० का वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय विधेयक के उस खण्ड का विरोध किया था जिसके अनुसार कुलपति को संस्कृत का विद्वान होना आवश्यक था। उनके अनुसार यह कोई आवश्यक नहीं कि दूसरा उत्तराधिकारी राज्यपाल भी संस्कृत का विद्वान् हो। वस्तुत: कुंवर गुरुनारायण के उपरोक्त कथन पर विचार करने से उनकी आलोचना सही दृष्टिगोचर होती है।

विधेयक की व्यावहारिक दृष्टिकोण से आलोचना का दूसरा उदाहरण १६५४ ई० का जोत चकबन्दी विधेयक पर परिषद् सदस्यों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से उद्धृत किया जा सकता है। विधान परिषद् के कांग्रेस सदस्य प्रतापचन्द्र आजाद का कथन है कि "एक घर और एक स्थान एवं एक ही किस्म की जमीन में यह देखा गया है कि कहीं पर तो एक खेत का लगान ८ आने है और कहीं पर उसी किस्म के खेत का लगान १।।) (डेढ़) रुपया और तीन रुपये तक है।"[१]

वस्तुत: यदि एक ही किस्म की जमीन पर लगान की दो दरें हैं तो श्री आजाद की आलोचना तर्क संगत है। विधान परिषद् के कुछ शिक्षक सदस्यों ने बजट की आलोचना अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के आधार पर भी की है। उदाहरणार्थ १६५२-५३ के बजट के सम्बन्ध में प्रो० मुकुट बिहारीलाल का विचार है कि बजट में भौतिक विकास पर ध्यान दिया गया है किन्तु मानवता की उपेक्षा की गई है जो अलाभप्रद है। भौतिक विकास के सही सिद्धान्त के सम्बन्ध में डाल्टन को उद्धृत करते हुए प्रो० लाल ने यह तर्क दिया कि माननीय

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०सं० ३६, ३१ अगस्त, १६५४ , पृ० ६७

पूंजी या ज्ञान की कीमत पर भौतिकी पूंजी की वृद्धि करना अशुद्ध नीति है जो उत्पादन में वृद्धि के स्थान पर अवनति लाती है । इस सन्दर्भ में उनका सुझाव यह था कि उपभोग की कीमत पर भौतिक पूंजी के विकास की नीति उत्पादन को बढ़ाती है ।

विभागीय असावधानी के कारण विधेयक में जो दोष रह जाते हैं तथा जिसके परिणाम स्वरूप संशोधन विधेयक लाने पड़ते हैं, इसकी भी आलोचना विधान परिषद् सदस्यों ने की है । उदाहरणार्थ १९५७ के बिक्रीकर विधेयक पर विधान परिषद् के निर्दलीय सदस्य वीरेन्द्र स्वरूप का विचार इस प्रकार है "बिल के प्रोविजन से मतभेद नहीं है, परन्तु क्या वजह थी कि ३१ मार्च को नोटीफिकेशन आंख बंद करके कर दिया गया । जबकि औरिजनल एक्ट में पहली अप्रैल से था । यह एक फाइनेंसियल बिल है, सब जानते हैं कि एक अप्रैल से लागू होगा । लॉ डिपार्टमेन्ट ने क्यों जारी कराया, जिससे सरकार का भी खर्च हुआ और हाईकोर्ट को भी अपना वक्त खर्च करना पड़ा[1]।"

उपर्युक्त आलोचना का समर्थन करते हुए विधान परिषद् कांग्रेस दल के सदस्य प्रेमचन्द्र शर्मा का कथन है " यह सत्य है कि यह सरकार का इतना बड़ा लॉ-डिपार्टमेन्ट होते हुए भी इस तरह की भूल हुई, जिससे सरकार को इतनी दिक्कत उठानी पड़ी और टैक्सपेयर्स को भी हाईकोर्ट तक जाना पड़ा....... उनका भी पैसा खर्च हुआ और सरकार की भी काफी क्षति हुई ।[2]

निष्कर्ष यह कि विधान परिषद् कांग्रेस दल के सदस्य ने भी विभागीय असावधानी तथा सरकार की भूल के लिए प्रतिपक्षी सदस्यों की आलोचना का समर्थन किया है ।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०खं० ५७, पृ० ५४२

२. वही, पृ० ५४१-५४२

ऊपर के सभी उदाहरण भिन्न-भिन्न विधेयकों पर व्यक्त किये गये विचारों के आलोचनात्मक पक्ष हैं, किन्तु जिस कारण विधान परिषद् अधिक उपयोगी रही है, वह है विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् सदस्यों द्वारा दिये गये सुझाव। इस दृष्टिकोण से आलोचनात्मक विचार विधेयक की कमजोरियों को दूर करने में तथा सदस्यों द्वारा दिये गये सुझाव विधेयक को अन्तिम रूप देने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

कभी कभी दो विधेयकों की व्यवस्थाएँ प्राय: समान रहती हैं। इस प्रकार के विधेयकों में जो विधेयक पहले पारित हुआ होता है, उसके सम्बन्ध में दिये गये सुझाव तथा विचार से उसी प्रकार के दूसरे विधेयक के निर्माण तथा पारण में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ १९५४ ई० का इलाहाबाद विश्व विद्यालय विधेयक तथा १९५४ ई० का लखनऊ विश्वविद्यालय विधेयक की व्यवस्थायें प्राय: समान थीं। इन दोनों विधेयकों में इलाहाबाद विश्व विद्यालय विधेयक पहले पारित हुआ था। अत: इस विधेयक पर विधान परिषद् द्वारा दिये गये सुझाव को विधान सभा ने लखनऊ विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में स्वत: स्वीकार कर लिया। तत्कालीन नियोजन, स्वास्थ्य तथा उद्योग मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त के कथनानुसार भी "इस विधेयक में ऐसी कोई बात नहीं थी, जो कि १९५४ ई० के इलाहाबाद विश्व विद्यालय विधेयक से भिन्न हो। अत: जो-जो तजवीजें इस सदन ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में दी थीं, उसे सभा ने स्वयं ही लखनऊ विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में मंजूर कर लीं।"[१] यद्यपि इलाहाबाद विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् द्वारा दिये गये सुझाव को लखनऊ विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में विधान ~~परिषद् का~~ सभा ने स्वत: मान लिया था किन्तु इसके पश्चात् भी लखनऊ विश्वविद्यालय विधेयक पर विधान परिषद् में विचार विनिमय के समय सदस्यों

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० २९, पृ० ९८

द्वारा महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये हैं। तत्कालीन उ०प्र० के नियोजन एवं उद्योग मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त के अनुसार, "मैं आशा करता हूं कि जो बहुत से सलाह मशविरे आज इस सदन में दिये गए हैं वह इस विधेयक की तमाम कमजोरियों को हटा दें।"[१]

उपर्युक्त दोनों विधेयकों के सादृश्य ही १६५७ ई० का लखनऊ विश्वविद्यालय विधेयक और इलाहाबाद विश्व विद्यालय विधेयक की व्यवस्थायें समान थीं। दोनों विधेयकों का सम्बन्ध शिक्षकों की श्रेणियों का एकीकरण, सिनेट के चुनाव की प्रणाली आदि से था। विधान परिषद् के निर्दलीय सदस्य डा० ईश्वरीप्रसाद का कथन है कि "दोनों विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की यह इच्छा थी कि दोनों विश्वविद्यालयों की संविधि एक समान हो।"[२] इन दोनों विधेयकों में लखनऊ विश्वविद्यालय विधेयक पहले पारित हुआ था। अत: इस विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् द्वारा दिये गये सुझाव को इलाहाबाद विश्वविद्यालय (विधेयक) के सम्बन्ध में विधान सभा ने स्वत: स्वीकार कर लिया। दूसरे प्रकार के विधेयकों के सम्बन्ध में भी विधान परिषद् के सदस्यों के विचार महत्वपूर्ण थे। उदाहरणार्थ १६५८ ई० का जिला परिषद् संशोधन विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् की कांग्रेस सदस्या श्रीमती शिवराजवती नेहरू ने निम्नलिखित सुझाव दिया था :—(१) जिला परिषद् का कार्यकाल ४ वर्ष से बढ़ाकर ५ वर्ष कर दिया जाय, (२) निर्वाचन क्षेत्र को संकुचित तथा एक सदस्यीय बनाया जाय। देहात के लोग अनपढ़ होते हैं, अतएव द्विसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं को निशान लगाने में कठिनाई होती है, (४) मतदाता सूची को फिर से तैयार किया जाय और उनमें स्त्रियों के नाम भी दर्ज किये जायें। मतदाता सूची को बनाने के लिए स्त्रियां (भी) रखी जायें, (५) निर्वाचन के समय नामांकन शुल्क बीस रुपये से घटाकर पांच रुपये कर दिया जाय, तथा (६) जिला परिषद् से शिक्षा का भार हटालिया जाय।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, सं० ३६, पृ० ६६११

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० सं० ६०, २४ सितम्बर,१६५८, पृ० ४२५

निष्कर्ष यह कि विधान परिषद् ने विचारोत्तेजक सदन के रूप में कार्य किया है तथा सरकार ने बहुत अंशों में इसके सुझाव को स्वीकार भी किया है। विधान परिषद् द्वारा दिये गए सुझाव तथा उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश मंत्रिमण्डल के एक वरिष्ठ सदस्य का कथन है कि " कोई भी अगर इन भाषणों को पढ़ेगा और देखेगा तो यह नहीं कह सकता कि परिषद् कुछ कार्य नहीं करती है, तथा परिषद् को समाप्त कर देना चाहिए। यदि दूसरी जगह[1] जो बहस इन प्रश्नों पर हुई उससे इसकी तुलना की जाय तो अन्तर का पता चल जायेगा कि जिन लोगों ने इस पर विचार प्रकट किये हैं उससे अच्छी तरह यहाँ पर विचार प्रकट किये गये हैं।"[2]

विधान परिषद् का दृष्टिकोण तथा उसके वाद-विवाद का स्तर :-

विधान परिषद् की उपयोगिता, उसका दृष्टिकोण तथा उसके वाद-विवाद का स्तर निम्नांकित प्रकार के सरकारी विधेयकों पर परिषद् द्वारा व्यक्त विचारों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है।

शिक्षा सम्बन्धी विधेयक :-

शिक्षा सम्बन्धी विधेयकों में मुख्य रूप से विश्वविद्यालय विधेयक हैं। गोरखपुर विश्व विद्यालय तथा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय दो मूल विधेयकों को छोड़कर लगभग एक दर्जन से भी अधिक संशोधन विधेयक हैं जो उत्तर प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित हैं।

प्रश्न है कि विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयकों के सम्बन्ध में विधान परिषद् किस रूप में उपयोगी रही है तथा इसके किन सदस्यों के विचार महत्वपूर्ण रहे हैं। एक दृष्टिकोण से विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयक भी

---

१. दूसरी जगह से तात्पर्य विधान सभा से है।
२. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० खं० ४५, पृ० ६३५

तकनीकी विधेयक है । अत: विधान मण्डल के गैर शिक्षक सदस्य विश्वविद्यालय सम्बन्धी समस्याओं से उतनी अच्छी तरह अवगत नहीं हो सकते जितना कि शिक्षक सदस्य । शिक्षक सदस्यों में भी विश्वविद्यालय के शिक्षक सदस्यों से ही विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयकों पर अधिक लाभप्रद तथा सुलझे हुए विचार की आशा की जा सकती है । विधान परिषद् के अधिकांश शिक्षक सदस्य विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा प्राध्यापक थे जिन्हें विश्वविद्यालय सम्बन्धी समस्याओं का व्यावहारिक ज्ञान विशेष रूप से था । उदाहरणार्थ इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में प्रतापचन्द्र आजाद, विधान परिषद् सदस्य का कथन है कि "इस सदन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखने वाले बहुत से शिक्षित सदस्य हैं जो शिक्षक तथा प्रबन्ध दोनों की हैसियत से विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हैं ।"[१] फलस्वरूप इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखने वाले सदस्यों के विचार तथा सुझाव इलाहाबाद विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं ।

दूसरा प्रश्न है कि इन विधेयकों पर विधान परिषद् के सदस्यों का दृष्टिकोण किस प्रकार था । विधान परिषद् के स्नातक तथा शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों ने विश्वविद्यालय को पूर्ण स्वायत्तता दिये जाने के पक्ष में विचार किया है । इन निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्यों का इस प्रकार का दृष्टिकोण स्वाभाविक है और वह कई बातों पर निर्भर है । प्रथमत: स्नातक तथा शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित अधिकांश सदस्य निर्दलीय तथा स्वतंत्र विचार के थे । निर्दलीय तथा स्वतंत्र विचार के होने के कारण उनकी दृष्टि में विश्वविद्यालयों को पूर्ण स्वायत्तता देकर ही सुधारा जा सकता

---

१. १९५६ ई० का गोरखपुर विश्वविद्यालय विधेयक तथा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय विधेयक

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०,खं० ३८,१५ दिसम्बर १९३४,पृ० १३७,इलाहाबाद वि०विद्या० से संबंधित कुछ सदस्यों के नाम - डा० ईश्वरीप्रसाद , डा० प्यारे लाल श्रीवास्तव, श्री शिवप्रसाद सिन्हा ।

द्वितीयतः शिक्षक सदस्यों के समक्ष शिक्षकों का हित भी था।
ह था । शिक्षक विश्व विद्यालयों में बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहते थे । यह तभी संभव हो सकता था जबकि विश्व-विद्यालयों को पूर्ण स्वायत्तता दी जाती । अतः शिक्षक के हितों को ध्यान में रखते हुए भी विधान परिषद् के शिक्षक सदस्यों ने विश्व विद्यालय को पूर्ण स्वायत्तता दिये जाने के पक्ष में विचार दिया था ।

विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयकों पर एक ही दल के शिक्षक तथा गैर शिक्षक सदस्यों के विचारों में भी भिन्नता मिलती है । उदाहरणार्थ १९५३ ई० का आगरा विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में विधान परिषद् के कांग्रेस सदस्य डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव ने मूरियन समिति की संस्तुति के आधार पर विश्वविद्यालय को पूर्ण स्वायत्तता दिये जाने का सुझाव दिया था ।[१] इसी दल के गैर शिक्षक सदस्य प्रतापचन्द्र आजाद ने विश्वविद्यालय की स्वायत्तता को पाठ्यक्रम तथा अध्यापन तक सीमित रखने का विचार प्रस्तुत किया था । प्रतापचन्द्र आजाद विश्वविद्यालय के खर्च तथा उसके सुधार के प्रश्न पर सरकार को हस्तक्षेप चाहते थे ।[२]

कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि प्रथम सदन तथा द्वितीय सदन के एक दल के सदस्यों का दृष्टिकोण तथा विचार एक ही होता है । इस आधार पर आलोचकों ने द्वितीय सदन को प्रथम सदन का प्रतिरूप सदन कहा है, किन्तु उत्तर प्रदेश विधान मण्डल के दोनों सदनों के बहुत से सदस्य जो एक ही दल से सम्बद्ध थे, उनमें से कुछ सदस्यों के दृष्टिकोण एक दूसरे से भिन्न हैं ।

वस्तुतः एक ही दल के सदस्यों का विधान सभा और विधान परिषद् में दो प्रकार के दृष्टिकोण का कारण दोनों सदनों के निर्वाचन की अलग अलग प्रणाली है जो उनके दृष्टिकोण को प्रभावित करती है । विधान

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० खं० ३२-३३, २७ अगस्त, १९५३, पृ० ११८
२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०खं० ३८, १५ दिसम्बर १९५४, पृ० ११०

परिषद् का संगठन विधान सभा से भिन्न है। विधान परिषद् में वर्ग तथा व्यवसायों के हितों का प्रतिनिधित्व होता है। परिणामतः एक ही दल के सदस्य जो विधान सभा के सदस्य हैं सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उसी दल के दूसरे सदस्य जो विधान परिषद् के सदस्य हैं, वर्ग तथा विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस दृष्टिकोण से विधान परिषद् के कांग्रेस शिक्षक सदस्यों का दृष्टिकोण यदि शिक्षकों के हित के पक्ष में है तो वह स्वाभाविक ही है।

विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयकों पर विधान परिषद् के कांग्रेस दल के सदस्यों ने स्वतंत्रता पूर्वक विचार विमर्श किया है। वस्तुतः दलीय सदस्य होते हुए भी दलीय प्रतिबन्ध से स्वतंत्र होकर विचार व्यक्त करना विधान परिषद् की मर्यादा को बढ़ाना है। विधान परिषद् के सदस्यों से निष्पक्ष एवं स्वतंत्र विचार की आशा की जाती है। यदि सदस्य दल में रहते हुए भी किसी विषय पर विचार विमर्श के समय दलीय प्रतिबन्ध से स्वतंत्र होकर विचार व्यक्त करते हैं तो विधान परिषद् के सदस्यों के लिए भी दल से सम्बन्ध बनाये रखना बुरा नहीं है। विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयकों पर विधान परिषद् में विचार विनिमय के समय कांग्रेस दल के सदस्यों के प्रति सरकार का दृष्टिकोण इस प्रकार था :-" आप लोग इंडेपेंडेंट हैं, पार्टी के अन्दर रहते हुए भी हरहाल की आपको स्वतंत्रता है। आप जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं...।[१] वस्तुतः विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयकों के सम्बन्ध में सरकार का दृष्टिकोण यह था कि दलीय सदस्य भी विधेयक पर स्वतंत्रता पूर्वक विचार प्रकट करें। श्री हाफिज मुहम्मद, सदन नेता का दृष्टिकोण भी इसी प्रकार था।[२]

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्यवाही खण्ड २८, तत्कालीन शिक्षामंत्री हरगोविन्द सिंह

२. वही, पृ० ५३१

स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी विधेयक :--

१९५२ से १९६२ के बीच स्थानीय स्वायत्त संस्था से सम्बन्धित लगभग दो दर्जन विधेयक विधान मण्डल के दोनों सदनों में उपस्थित तथा उसके द्वारा पारित हुए हैं। विधान परिषद् में सूत्रपात किये गए स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी विधेयकों की संख्या ९ है और विधान सभा में १४। इनमें से एक तिहाई विधेयक उत्तर प्रदेश पंचायत राज से सम्बन्धित है जिनमें ५ विधेयकों का सूत्रपात विधान परिषद् में हुआ है तथा तीन विधान सभा में।

संख्या के दृष्टिकोण से नगरपालिका तथा महानगरपालिका से सम्बन्धित विधेयकों का दूसरा स्थान है। इस प्रकार के कुल पांच पारित विधेयकों में तीन विधान परिषद् में सूत्रपात हुये थे तथा दो विधान सभा में। क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद् से सबंधित तीन विधेयकों में एक विधान परि- में तथा दो विधान सभा में सूत्रपात किये गए थे। शेष अन्य विधेयकों में दो अन्तरिम जिला परिषद् विधेयक, एक टाउन एरिया विधेयक तथा दो स्थानीय निकायों के लिए प्रशासकों की नियुक्ति सम्बन्धी विधेयक हैं जिन सब का सूत्रपात विधान सभा में हुआ था।

उपर्युक्त आंकड़े के आधार पर विधान परिषद् में सूत्रपात किये गए विधेयकों में पंचायत राज तथा नगरपालिका विधेयकों की संख्या सबसे अधिक है। इन विधेयकों को सभा की अपेक्षा विधान परिषद् मे सूत्रपात किये जाने के दो कारण हैं। प्रथमत: विधान परिषद् में स्थानीय स्वायत्त संस्था के प्रतिनिधि भी होते हैं। इन प्रतिनिधियों का निर्वाचन स्थानीय स्वायत्त संस्था के ~~प्रतिनिधि भी होते हैं~~ द्वारा होता है। अत: सरकार का दृष्टिकोण यह था कि स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के हितों तथा उसकी समस्याओं को अच्छी तरह व्यक्त कर सकेंगे। द्वितीयत: विधानमण्डल पर विधेयकों का भार अधिक होने के कारण सभी विधेयकों पर समुचित रूप से विचार कर उन्हें समय से पारित करना विधान सभा

के लिए संभव नहीं था । अत: विधान सभा के पास समयाभाव रहने के कारण तथा विधेयकों को समय से पारित करने के प्रयोजन से कुछ विधेयकों को विधान-परिषद् में सूत्रपात करना आवश्यक था ।

उपर्युक्त दोनों कारणों में पंचायत राज तथा नगरपालिका विधेयकों को विधान परिषद् में सूत्रपात किये जाने का दूसरा कारण ही वास्तविक है । यदि विधान परिषद् में इन विधेयकों को सूत्रपात किये जाने का प्रयोजन स्थानीय स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों के विचार तथा दृष्टिकोण जानने के लिए होता, तो निश्चित रूप से अन्य स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी विधेयक जैसे क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद् विधेयक तथा अन्य विधेयकों को भी जिन्हें विधान सभा में सूत्रपात किया गया था उन्हें पहले विधान परिषद् में ही आरम्भ किया जाता ।

विधान परिषद् में सूत्रपात किये गये अधिकांश विधेयक संशोधन विधेयक हैं । मूल विधेयक प्राय: विधान सभा में ही आरम्भ हुआ है । संशोधन विधेयकों में भी केवल छोटे संशोधन विधेयक विधान परिषद् में पुर:स्थापित हुए हैं । अत: यदि विधान परिषद् में केवल छोटे संशोधन विधेयक ही आरम्भ किये गये हैं तो इस दृष्टिकोण से विधान परिषद् विधान सभा से कम महत्त्व-पूर्ण है, किन्तु एक दूसरे दृष्टिकोण से छोटे संशोधन विधेयकों को विधान सभा की अपेक्षा विधान परिषद् में आरम्भ किया जाना उचित है । कुछ विद्वानों का तो मत है कि वे संशोधन विधेयक जो छोटे किन्तु अविवादास्पद हों द्वितीय सदन में सर्वप्रथम पुर:स्थापित किये जायें । विधान परिषद् का स्थान विधान सभा के समकक्ष होते हुए भी संविधान निर्माताओं का उद्देश्य विधान परिषद् को विधान सभा का प्रतिद्वन्द्वी सदन बनाना नहीं था, अपितु सभा को विधायन में सहयोग देने के लिए सहयोगी सदन के रूप में स्थान देना था । इस दृष्टिकोण से यदि छोटे संशोधन विधेयक विधान परिषद् में आरम्भ किये गये हैं तो वह संविधान निर्माताओं की भावना के अनुकूल ही है ।

स्थानीय स्वायत्त संस्था से सम्बन्धित कुछ अध्यादेशों को सर्वप्रथम

विधान सभा में प्रस्तुत किया गया था । अध्यादेशों को विधान सभा में सर्व प्रथम प्रस्तुत करना स्वाभाविक है । सरकार अध्यादेश द्वारा पहले ही प्रयोजन सिद्ध कर लेती है, तथा बाद में उसे विधान मण्डल के समक्ष उसके अनुमोदन के लिए रखती है । संविधान के अनुसार विधान मण्डल के सत्रारम्भ के दिन से ६ सप्ताह समाप्त होने से पूर्व विधान सभा यदि अध्यादेश को अस्वीकृत करने के प्रयोजन से संकल्प पारित करती है और यदि विधान परिषद् विधान सभा के उस संकल्प से सहमति प्रदान करती है तो अध्यादेश छ: सप्ताह के बाद समाप्त हो जाता है ।[१] दूसरी ओर सरकार विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है अत: यदि वह विधान परिषद् की अपेक्षा विधान सभा में अध्यादेशों को पहले पुर:स्थापित करती है तो यह अस्वाभाविक नहीं, वरन् संसदीय परम्परा के अनुकूल ही है ।

अधिकांश स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी विधेयक अधिनियम से वैधानिक अथवा तकनीकी दोषों को दूर करने के प्रयोजन से प्रस्तावित हुए थे । उदाहरणार्थ १९५५ ई० का टाउन एरिया विधेयक, १९५८ ई० का नगरपालिका विधेयक तथा अन्तरिम जिला परिषद् विधेयक, १९६१ ई० का पंचायत राज विधेयक तथा नगर पालिका विधेयक । अत: इस प्रकार के संशोधन विधेयकों पर विधान सभा अथवा विधान परिषद् किसी भी सदन में विशेष रूप से वाद-विवाद नहीं हुआ है । विभागीय असावधानी के कारण विधेयक में जो त्रुटियां रह गई थीं उसके लिए विधान परिषद् के पक्ष तथा प्रतिपक्ष के सदस्यों ने आलोचना की । स्थानीय स्वायत्त संस्था संबंधी विधेयकों त्रुटियों के रह जाने का कारण उतावला विधायन तथा विधि विभाग की ~~स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी विधेयकों में~~ असावधानी ही थी । विधान परिषद् का स्थान परिशोधक सदन के रूप में है । इसके लगभग एक तिहाई सदस्य वकील तथा विधि विशेषज्ञ थे । अत: सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोण से विधान परिषद् उन विधि

---

१. अनुच्छेद २१३(२) (ए)

विशेषज्ञ सदस्यों की सहायता से वैधानिक त्रुटियों को दूर करने में समर्थ थी, किन्तु वह इस कार्य को तभी कर सकती थी जब उन्हें उस पर विचार करने के लिए पूर्व सूचना तथा पर्याप्त समय दिया जाता । विधान परिषद् कांग्रेस दल के सदस्य प्रतापचन्द्र आजाद का विचार भी इसी प्रकार था । उन्हीं के शब्दों में "रुल्स और नियमों में जितनी कमियां रह जाती हैं वह या तो विभाग को देखनी चाहिए या हमें यहां डिस्कस करनी चाहिए । सदन को इस सम्बन्ध में अधिकार भी है । अत: यहां जरूर उस पर चौदह दिनों की सूचना के बाद डिस्कस होना चाहिए और डिपार्टमेन्ट्स को भी कुछ सक्रिय होना चाहिए ।"[१]

जिला परिषद् तथा क्षेत्र समिति से सम्बन्धित दो एक विधेयकों पर विधान परिषद् के सदस्यों के दृष्टिकोण तथा विचार एक दूसरे से भिन्न थे । उदाहरणार्थ १९५८ ई० के जिला परिषद् संशोधन विधेयक पर विधान परिषद् सदस्यों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के सम्बन्ध में विधान परिषद् सदस्य श्री राजाराम शास्त्री का कथन है कि " इस विधेयक में न तो विरोधी दल के लोगों की एक राय है और न सरकारी दल के लोगों की एक राय है और न महिलाओं की एक राय है ।"[२] जिला परिषद् का निर्वाचन मई १९५२ से इस विधेयक के पारित होने के पूर्व तक नहीं हुआ था । अत: विधेयक का सम्बन्ध जिला परिषद् के उपनिर्वाचन से था । जिला परिषद् के उपनिर्वाचन के सम्बन्ध में विधान परिषद् के सदस्यों की दो रायें थीं । कुछ सदस्यों की दृष्टि में जिला परिषद् का चुनाव कराया जाना अनिवार्य था । इसके विपरीत परिषद् सदस्य अब्दुलस्सलाम ने चुनाव के विरोध में विचार प्रकट किया था ।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद कार्य०,खण्ड ४१,२६ सितम्बर १९५५,पृ० ५६० टाउन एरिया संशोधन विधेयक ।

२. उ०प्र०विधान परिषद् कार्य०खण्ड ५६, ३ मार्च १९५८, पृ० ६६५

जिन सदस्यों ने जिला परिषद् के निर्वाचन के पक्ष में राय दी थी, उनके बीच भी दो प्रकार के मत थे। सर्वश्री तेजनारायण तिवारी और गणेशदत्त पालीवाल ने जिला परिषद् के अविलम्ब निर्वाचन के पक्ष में राय दी थी, किन्तु कुंवर रणंजय सिंह का विचार था कि जिला परिषद् का निर्वाचन विलम्ब से कराया जाय। कुंवर रणंजय सिंह का तर्क यह था कि नवीन जिला परिषद् की स्थापना के बाद चुनाव कराना उपयुक्त होगा अन्यथा उपनिर्वाचन के बाद नवीन जिला परिषद् के निर्माण के पश्चात् भी निर्वाचन कराने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार दो बार निर्वाचन कराने से धन का अपव्यय होगा।[१]

जिला परिषद् में महिलाओं के लिए स्थान के संरक्षण के प्रश्न पर विधान परिषद् की महिला सदस्याओं में भी एक राय नहीं थी। सर्वश्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव तथा तारा अग्रवाल ने जिला परिषद् में महिलाओं के लिए स्थान संरक्षण के तर्क का विरोध किया था।[२] महिलाओं के लिए स्थान संरक्षित करने के बदले श्रीमती तारा अग्रवाल का विचार था कि यदि महिलायें निर्वाचन में निर्वाचित नहीं हो सकीं, तो कम से कम पांच महिलाएं जिला परिषद् के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित किये जावें।[३] विधान परिषद् की कांग्रेस सदस्या श्रीमती शिवराजवती नेहरू का विचार एवं दृष्टिकोण उपर्युक्त दोनों सदस्याओं के विचार एवं दृष्टिकोण से भिन्न था। श्रीमती शिवराजवती नेहरू ने दस वर्ष तक जिला परिषद् में महिलाओं के स्थान संरक्षित किये जाने के लिए राय दी थी। उनका तर्क था कि स्त्रियां पुरुषावलम्बी होती हैं, धन उनके पास नहीं होता, अत: वे स्वतंत्ररूप से चुनाव नहीं लड़ सकती हैं।[४] श्रीमती सावित्री श्याम ने इस प्रश्न के पक्ष अथवा विपक्ष में प्रत्यक्ष रूप से किसी भी प्रकार की राय व्यक्त नहीं की थी, यद्यपि उनकी भावना सरकार के साथ थी।[५]

---

१. उ०प्र०विधान परि० की कार्य०,खं० ५६, पृ० १०४०-४१

२. वही, पृ० १०३८ से १०४० तक

३. वही, पृ० १०३७-१०३८

प्रतिपक्षी सदस्यों में श्री प्रभुनारायण सिंह नेता समाजवादी दल का विचार जिला परिषद् में स्त्रियों के स्थान संरक्षण के प्रश्न पर इसके पक्ष में था[१] किन्तु दूसरी ओर प्रतिपक्ष के सदस्यों में ही श्री अब्दुर रऊफ का विचार इससे भिन्न था । श्री रऊफ के मतानुसार "जब मुसलमानों के लिए रिजर्वेशन खत्म हो रहा है तो अनुसूचित जाति और औरतों के लिए आरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है ।"[२] विधान परिषद् सदस्य अब्दुलस्सलाम का दृष्टिकोण भी इसीप्रकार था ।[३]

निष्कर्ष यह कि क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद् विधेयक पर विधान परिषद् के सदस्यों ने बिना किसी दलीय बंधन के स्वतंत्रता पूर्वक विचार व्यक्त किये हैं । विधान परिषद् के स्वतंत्र विचार के सम्बन्ध में आचार्य श्री दीपंकर कामत है कि "..... क्षेत्रीय समिति और जिला परिषद् विधेयक के सम्बन्ध में इस सदन के माननीय सदस्यों ने अपनी राय प्रकट करने में किसी भी प्रकार के राजनीतिक दीवार के बंधन को स्वीकार नहीं किया । ...... पूरे सदन ने बिना इस बात का ख्याल किये हुए कि कौन कांग्रेस पार्टी का है और कौन विरोधी पक्ष का है, जनहित में जितनी आलोचना होनी चाहिए थी, वह की ।"[४]

यद्यपि स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी कुछ विधेयकों पर परिषद् सदस्यों ने दलीय प्रतिबन्ध से स्वतंत्र होकर विचार व्यक्त किया है जिसके परिणामस्वरूप विधान परिषद् का वाद-विवाद का स्तर ऊंचा हुआ है किन्तु अधिकांश सदस्यों के विचार वर्ग अथवा व्यवसाय के हितों से सम्बद्ध था । यदि

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५६, पृ० ६६४
२. वही, पृ० ६७६
३. वही, पृ० १०३२
४. वही

महिला सदस्याओं ने महिलाओं के हितों का प्रतिनिधित्व किया है, तो शिक्षक सदस्यों ने शिक्षक के हितों का ।

जमीन सम्बन्धी विधेयक :-

सामान्य रूप से द्वितीय सदन को धन का गढ़ कहा जाता है । आलोचकों का कथन है कि उच्च सदन में धनी वर्गों का प्रतिनिधित्व होता है और उनके हितों की रक्षा होती है;परन्तु प्रश्न है कि यह आलोचना उत्तर प्रदेश विधान मण्डल के द्वितीय सदन के सम्बन्ध में कहां तक सत्य है ? क्या विधान परिषद् में विधान सभा की अपेक्षा धनी वर्गों का अधिक प्रतिनिधित्व है ? क्या विधान परिषद् के सदस्यों का दृष्टिकोण रूढ़िवादी है ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है ।

उत्तर प्रदेश का विधान परिषद् द्वितीय सदन अवश्य है, परन्तु उसका संगठन राज्य सभा तथा संसार के अन्य देशों के द्वितीय सदन के गठन से भिन्न है । संगठन के आधार पर तो उसे धनीवर्गों का प्रतिनिधि सदन नहीं कहा जा सकता । संविधान निर्माताओं का उद्देश्य भी प्रत्यक्षत: विधान परिषद् के सृजन में धनीवर्गों के प्रतिनिधित्व से नहीं नहीं था । पुन: उत्तर प्रदेश कृषि प्रधान प्रदेश है और प्रदेश के वासियों के जीविका के मुख्य साधन खेती ही है । जमींदारी उन्मूलन अधिनियम लागू होने के बाद प्रदेश में न तो कोई जमींदार रहा और न रइयत । अत: जमींदारों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी पैदा नहीं होता जिसके आधार पर विधान परिषद् को जमींदारों का प्रतिनिधि सदन कहा जाय ।

तीसरे अध्याय में यह स्पष्ट हो चुका है कि विधान परिषद् में वर्ग और पेशाओं का प्रतिनिधित्व हुआ है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अन्य वर्गों की तरह कृषक भी एक वर्ग है तथा अन्य पेशेकी तरह कृषि भी एक पेशा है । अन्य वर्गों की अपेक्षा प्रदेश में कृषक वर्ग के लोगों की

संख्या अधिक है । यद्यपि विधान परिषद् के शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र की तरह विधान परिषद् में कृषक निर्वाचन क्षेत्र नहीं है, तथापि परिषद् सदस्यों द्वारा कृषकों के हितों के सम्बन्ध में भी विचार व्यक्त किये गए हैं ।

जमीन सम्बन्धी विधेयकों पर परिषद् सदस्यों के दृष्टिकोण को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है :-

(१) जमींदारी उन्मूलन विधेयक तथा जमीदारों के ऋण कम करने का विधेयक

(२) जोत चकबन्धी विधेयक तथा

(३) भूमि संरक्षण और भूमि व्यवस्था विधेयक ।

जमींदारी उन्मूलन तथा जमींदारों के ऋण कम करने का विधेयक :-

जमींदारी उन्मूलन विधेयकों के अन्तर्गत कुमायूं, नागर क्षेत्र तथा जौनसार बाबर क्षेत्र जमींदारी उन्मूलन विधेयक भी सम्मिलित हैं । उत्तर प्रदेश में प्रथम जमींदारी उन्मूलन विधेयक नवीन विधान परिषद् गठित होने के पूर्व पारित हुआ था । अतः उस विधेयक के सम्बन्ध में पुराने विधान परिषद् के विचार तथा दृष्टिकोण का विश्लेषण करना यहां न तो प्रासंगिक है और न आवश्यक ही । नवीन विधान मण्डल द्वारा सर्वप्रथम १९५२ ई० में जमींदारों के ऋण कम करने का विधेयक पारित हुआ है ।[१] इस विधेयक पर विधान परिषद् में विचार के समय श्री कुंवर गुरुनारायण नेता विरोधी दल का दृष्टिकोण इस प्रकार था :-" इस विधेयक के द्वारा सरकार ने जो कुछ किया है, उससे जमींदारों को कोई खास फायदा नहीं होगा ।"[२] सदस्य के इस कथन से दो प्रकार के निष्कर्ष निकलते हैं । प्रथमतः सदस्य की सहानुभूति जमींदारों के

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य० सं० २८, २९ अक्टूबर १९५२, पृ० ६८

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य० ,सं० वही, पृ० ७१-७२

प्रति है। द्वितीयत: सदस्य की दृष्टि में विधेयक अनुपयोगी है। उनके मतानुसार जिस उद्देश्य से विधेयक लाया गया है उस उद्देश्य की पूर्ति विधेयक के द्वारा पूर्णत: नहीं होती।

दूसरी ओर सोशलिस्ट सदस्य सर्वश्री प्रभुनारायण सिंह और राजाराम शास्त्री ने बड़े-बड़े जमींदारों का विरोध किन्तु छोटे जमींदारों का समर्थन किया है। दोनों सदस्यों ने विधेयक की भावना का समर्थन करते हुए छोटे जमींदारों के ऋण को कम किये जाने को उचित कहा है।

सोशलिस्ट सदस्यों के उपर्युक्त दृष्टिकोण से यह संदेह होना स्वाभाविक है कि दोनों सदस्यों द्वारा छोटे जमींदारों का समर्थन उनके रूढ़ि-वादी प्रवृत्ति का द्योतक है। सोशलिस्ट होते हुए भी जमींदारों का समर्थन करना कहाँ तक युक्तिसंगत है ? क्या वे छोटे जमींदारों के हित की रक्षा करना चाहते थे ?

विधेयक के कारण एवं उद्देश्यों पर दृष्टिपात करने से उपर्युक्त संदेह का निवारण बहुत अंशों में हो जाता है। जमींदारी उन्मूलन के बाद छोटे-छोटे जमींदारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। वे ऋण चुकाने में असमर्थ थे। अत: यदि उनसे जमींदारी ले ली गयी तो उनके ऋण को कम करने के लिए कोई न कोई स्रोत निकालना ही पड़ता। इसी भावना से प्रेरित होकर ऋण कम करने का विधेयक पारित किया गया था। विधेयक की इस भावना के आधारों पर ही दोनों सदस्यों ने छोटे जमींदारों के ऋण को कम करने के प्रसंग को उचित कहा था। अतएव सदस्यों के इस प्रकार के दृष्टिकोण को मानवीय कहा जायगा न कि रूढ़िवादी अथवा पूंजीवादी।

विधान सभा के कुछ सदस्यों का दृष्टिकोण भी इसी प्रकार था। श्री गेंदा सिंह, विधान सभा सदस्य के अनुसार "छोटे छोटे जमींदारों की बहुत अधिक तादाद है और शायद २० लाख में से १७ लाख से कुछ कमवेश उनकी तादाद होगी, स्वाभाविक तौर पर जो कर्ज की रकम है वह बड़ी रकम उन्हीं लोगों पर होगी।........... लेकिन छोटी रकम वाले, जो मुआविजा वगैरह

पावेंगे उनमें तीन चौथाई रकम कर्ज में दे दी जायेगी और केवल चौथाई उनके पास छोड़ी जायेगी तो उनकी मुसीबत हो जायेगी ।"[१]

विधान सभा के एक दूसरे सदस्य श्री राजावीरेन्द्र शाह के अनुसार "बहुत कर्ज देने-वालों ने यह जानकर कि कर्जा घटने जा रहा है अपनी डिग्रियां कराईं और जमींदारों की जायदादें कुर्क करा लीं ।" वह आगे कहते हैं , "जब तक जमींदारों के कर्ज घटने का कोई सवाल न आ जाय तब तक उनकी कुर्क न की जाय ।"[२]

यहाँ यह स्पष्ट कर देना वांछनीय है कि विधान सभा और विधान परिषद् दोनों सदनों में सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के सदस्यों ने दलीय नीति के आधार पर विधेयक का समर्थन किया था, किन्तु दोनों सदनों के विरोधी पक्ष के सदस्यों का विधेयक के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार था । विधान परिषद् के प्रतिपक्षी सदस्यों ने एक स्वर से छोटे जमींदारों का समर्थन तथा बड़े जमींदारों का विरोध किया था । दूसरी ओर विधान सभा के कुछ प्रतिपक्षी सदस्यों ने केवल छोटे-छोटे जमींदारों के ऋण को कम करने का सुझाव दिया था, किन्तु कुछ सदस्यों ने छोटे बड़े दोनों प्रकार के जमींदारों के ऋण को कम करने का विचार प्रकट किया था ।

जमींदारों के ऋण को कम किये जाने के सन्दर्भ में विधान परिषद् के कुछ सदस्यों ने व्यापारियों के हितों की रक्षा के दृष्टिकोण से विधेयक को अनावश्यक कहा था । श्रीमान पाल गुप्त, विधान परिषद् सदस्य, के अनुसार विधेयक के द्वारा जमींदारों और साहूकारों के बीच द्वेषात्मक भाव उत्पन्न होने की संभावना है । श्री गुप्त के मतानुसार जिन व्यापारियों ने जमींदारों को

---

१. उ०प्र०वि० सभा की कार्य०, खण्ड १०६,५ सितम्बर, १९५३, पृ० ३३३-३४
२. उ०प्र०वि०सभा की कार्यवाही, खंड १०६, पृ० ३३५

ऋण दिया है, उनका ऋण वापस हो जाना चाहिए ।[१]

श्री बेनीप्रसाद टंडन , विधान परिषद् सदस्य ने भी जमींदारों का विरोध तथा व्यापारी वर्ग के हितों की रक्षा के लिए अपना भाव प्रकट किया था । श्री टंडन जी के शब्दों में ".... .... इन्कम्बर्ड इस्टेट्स ऐक्ट से जमींदारों ने फायदा उठाया । फिर उनके ऋण को कम करने की क्या आवश्यकता पड़ी थी । इन फारमूलों से साहूकारों के बीच मतभेद होगा ।"[२]

विधान परिषद् के उपर्युक्त दोनों सदस्यों की विचाराभिव्यक्ति में व्यापारी वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व हुआ है । श्री टंडन जी की दृष्टि में तो सूदखोरी भी उचित है । उनके इस भाव का प्राकट्य इस वाक्य से स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है : --" अगर ब्याज खाना पाप होता तो संविधान में लिखा होता कि यह पाप है और किसी से कर्ज न ले ।"[३]

उपर्युक्त संदर्भों में सदस्यों की भावाभिव्यक्ति के आधार पर विधान परिषद् को पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन कहा जाय अथवा वर्ग हितका प्रतिनिधि सदन । वस्तुत: विधान परिषद् को पूंजीपतियों का प्रतिनिधि सदन नहीं कहा जा सकता । कारण उपर्युक्त प्रकार के पूंजीवादी दृष्टिकोण वाले सदस्यों की संख्या दो-एक ही है । अगर निष्पक्ष रूप से इस प्रश्न पर विचार किया जाय तो विधान परिषद् को वर्ग तथा पेशे का प्रतिनिधि सदन ही कहा जा सकता है । उपर्युक्त विधेयक पर विचार के समय सदस्यों ने जमींदारों के हित की बात कही है, किन्तु कुछ ने व्यापारियों के हितों की । इससे यह विदित होता है कि विधेयक पर वाद-विवाद

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, सं० २८, १६ अक्टूबर १९५२,पृ० ५२
२. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०सं० २८, पृ० ८३-८४
३. वही

वर्ग हित के आधार पर ही हुआ है।

जमींदारी उन्मूलन के सम्बन्ध में अन्य कई छोटे संशोधन विधेयक वैधानिक त्रुटियों को दूर करने के लिए पारित हुए हैं। उन विधेयकों पर दोनों सदनों में वाद-विवाद या तो नहीं हुआ है और यदि कुछ पर हुआ भी है तो बहुत संक्षेप में। उदाहरणार्थ १९५२, १९५५[1] और १९५८ ई० का जमींदारी उन्मूलन और भूमि व्यवस्था विधेयक पर विधान परिषद् में एक मात्र वक्ता प्रभुनारायण सिंह थे।[2]

जोत चकबन्दी विधेयक :-

जोत चकबन्दी विधेयक १९५३,१९५४,१९५५ और १९५६ में पारित हुए हैं। विधान परिषद् कांग्रेस दल के सदस्यों ने प्राय: सभी जोत-चकबन्दी विधेयकों के सम्बन्ध में सरकार की नीति का अनुमोदन किया था। प्रतिपक्षी सदस्यों ने सहकारी खेती के लिए सुझाव दिया तथा उतावले विधायन के लिए सरकार की आलोचना की। प्रतिपक्ष के कुछ सदस्यों ने चकबन्दी से किसानों के बीच झगड़ा तथा मतभेद होने की संभावना प्रकट की थी।

वस्तुत: चकबन्दी के परिणामस्वरूप गांवों में किसानों के बीच जो झगड़े तथा मुकदमें हो रहे हैं, उससे प्रतिपक्षी सदस्यों के संदेहों की यथार्थता प्रमाणित होती है।

भूमि व्यवस्था तथा भूमि संरक्षण विधेयक :-

भूमि व्यवस्था तथा भूमि संरक्षण सम्बन्धी विधेयक क्रमश: १९५२, १९५३ और १९५४ में पारित हुआ है। विधेयक पर विचार-विनिमय के समय कुछ सदस्यों ने कृषक वर्ग के हित की बात कही है। उदाहरणार्थ

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य० सं० ३६, १६ फरवरी,१९५५, पृ० ३०४ से ३०८

२. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०सं० ५७, ६ अप्रैल १९५८, पृ० ३६५

१६५३ ई० का भूमि संरक्षण विधेयक पर विधान परिषद् जब विचार कर रही थी, उस समय परिषद् सदस्य कुंवर गुरुनारायण ने विधेयक की भावना को कार्यरूप देने के लिए किसानों तथा काश्तकारों को अनुदान तथा ऋण देने के लिए सरकार से आग्रह किया था।[१]

भूमि व्यवस्था तथा भूमि संरक्षण विधेयक के सम्बन्ध में परिषद् के कुछ सदस्यों का दृष्टिकोण समाजवादी भी था। दो एक सदस्यों की यह राय थी कि -" जिन लोगों के पास जमीन ज्यादा है और वह उसका ठीक इंतजाम नहीं कर पा रहे हैं तो पहले उन जमीनों का बंटवारा और व्यवस्था होनी चाहिए और उनको तकसीम किया जाना चाहिए।"[२]

भूमि संरक्षण बोर्ड के निर्माण के प्रश्न पर विधान परिषद् के सदस्यों की एक राय नहीं थी। कुछ सदस्यों ने बोर्ड में निर्माण के सुझाव का समर्थन किया था, किन्तु दो-एक सदस्यों की राय थी कि भूमि संरक्षण परिषद् के स्थान पर प्रान्त में और प्रत्येक जिला में एक-एक सरकारी अधिकारी नियुक्त किये जावें।[३]

निष्कर्ष यह कि जमीन सम्बन्धी विधेयकों पर सामान्य रूप से परिषद् सदस्यों का दृष्टिकोण न तो रूढ़िवादी था और न पूंजीवादी ही। यद्यपि कुछ सदस्यों ने जमींदारों के हित के आधार पर जमींदारी उन्मूलन विधेयक का तथा व्यापारी वर्ग के हित के आधार पर जमींदारों के ऋण कम करने के विधेयक का विरोध किया है, किन्तु इस प्रकार के सदस्यों की संख्या दो-एक ही थी। अतएव दो एक सदस्यों के आधार पर विधान परिषद् को पूंजीपतियों का प्रतिनिधि सदन नहीं कहा जा सकता। जोत चकबन्दी विधेयक तथा भूमि संरक्षण और भूमि व्यवस्था विधेयक पर विधान परिषद् में मुख्यरूप से कृषक वर्ग के हित का प्रतिनिधित्व हुआ है।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०सं० ३५, पृ० ६७से ६६

२. वही

३. वही, पृ० १०३ ज्योतिप्रसाद गुप्त, विधान परिषद् सदस्य

कर सम्बन्धी विधेयक :-

कर सम्बन्धी विधेयकों में मुख्य रूप से विक्रीकर विधेयक तथा कृषि-कर विधेयक है। सामान्यरूप से विधान परिषद् के प्रतिपक्ष की ओर से कर सम्बन्धी विधेयकों का विरोध जनता पर कर भार पड़ने के आधार पर किया गया है, किन्तु कुछ ऐसे सदस्यों ने भी कर विधेयक का विरोध किया है जिनकी दृष्टि में कर का भार मालिकों पर पड़ने वाला है। इस प्रकार के दृष्टिकोण रखने वाले सदस्यों में सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के दो-एक सदस्य हैं। उदाहरणार्थ १६५६ ई० के बिक्री कर विधेयक पर विचार व्यक्त करते हुए विधान परिषद् कांग्रेस दल के सदस्य श्री प्रेमचन्द्र शर्मा का कथन है कि "उत्तर प्रदेश कपड़े पर दिल्ली या अन्य प्रदेशों की अपेक्षा अधिक सेल्स टैक्स है जिससे मालिकों को काफी नुकशान हुआ है।"[१] इसका यह तात्पर्य है कि विधान परिषद् कांग्रेस दल के दो-एक सदस्यों ने मालिकों के हितों का प्रतिनिधित्व किया है। इसी प्रकार कुछ सदस्यों ने शिक्षकों तथा वकीलों के हितों का भी प्रतिनिधित्व किया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त बिक्रीकर विधेयक के सम्बन्ध में पुष्करनाथ भट्ट, ने विचार व्यक्त करते हुए कहा " गरीब के ऊपर बोझ न डालिये, मैं लायर्स,टीचर्स और बाबुओं को रिप्रेजेन्ट करता हूं।[२]

कर सम्बम्धी विधेयकों पर विचार विनिमय के समय कभी-कभी दोनों सदनों के कुछ सदस्यों का दृष्टिकोण एक समान था। उदाहरणार्थ विधानसभा सदस्य सर्वश्री जगदीशचन्द्र अग्रवाल तथा शिवप्रसाद नागर का विचार था कि खाद्य वस्तुओं पर कर नहीं लगाया जाय।[३] विधान परिषद् सदस्य श्री इसहाक

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ४७, २६ मई, १६५६ ,पृ० ४७७
२. वही, पृ० ४८३
३. उ०प्र०विधान सभा की कार्य०, खं० २०१, १६ फरवरी १६५६, पृ० ३६७

संभली[१] तथा परिषद् सदस्या श्रीमती शिवराजवती नेहरू का दृष्टिकोण भी इसी प्रकार था ।[२]

गैर सरकारी विधेयक :-

सरकारी विधेयकों के अतिरिक्त विधान परिषद् में गैर सरकारी विधेयक भी प्रस्तावित हुए हैं । १९५३ से १९६१ के बीच लगभग ८० गैर सरकारी विधेयकों की सूचना विधान परिषद् को दी गई किन्तु मई १९५२ से दिसम्बर १९५२ तक एक भी गैर सरकारी विधेयक की सूचना नहीं दी गई थी । इसी प्रकार १९६२ में कोई भी गैर सरकारी विधेयक विधान परिषद् में प्रस्तावित नहीं हुआ था । विधान परिषद् को सूचना दिये गये विधेयकों तथा उसके परिणामों को निम्नांकित तालिका में दिखाया गया है :-

१	२	३	४	५	६	७	८	९
वर्ष	सूचना दी गई विधेयकों की संख्या	वे विधेयक जो गैर सरकारी विधेयकों की सूची से हटा दिये गये	नियमानुकूल नहीं होने के कारण सभापति ने जिन विधेयकों को प्रस्तावित करने की अनुमति नहीं दी	सूचित किये गये विधेयक जिसे प्रस्तावक ने प्रस्तावित नहीं किया	बहस के उपरांत प्रस्तावक द्वारा वापस लिया गया विधेयक	बहस के उपरान्त सदन द्वारा अस्वीकृत विधेयक	स्थगित	अश.
१९५२	—	—	—	—	—	—	—	—
१९५३	—६	—	१	—	—	५	-	-
१९५४	१०	१	—	—	५	३	१	-
१९५५	६	१	१	१	३	२	-	१
१९५६	११	-	१	१	८	-	-	१
१९५७	५	-	-	-	४	-	१	-

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, सं० ६५, पृ० ५४

२. वही, पृ० ५५-५६

१९५८	६	-	-	-	३	२	१	-
१९५९	१३	-	-	-	११	२	-	-
१९६०	६	-	-	-	६	-	-	-
१९६१	१४	-	-	-	४	२	१	७
१९६२	-	-	-	-	-	-	-	-
योग	८०	२	३	२	४४	१६	४	९

गैर सरकारी विधेयकों की सबसे अधिक संख्या १९६१ में तथा सबसे कम १९५७ में थी । प्रस्तावित विधेयकों में अधिकांश बहस के उपरान्त प्रस्तावक द्वारा वापस ले लिये गये । वापस लिये गए विधेयकों में अधिकांश श्री प्रतापचन्द्र आजाद के विधेयक हैं । संख्या के आधार पर वापस लिये गए विधेयकों के बाद दूसरा स्थान अस्वीकृत विधेयकों का है । सदन द्वारा अस्वीकृत विधेयकों में अधिकांश कुंवर गुरुनारायण और हृदयनारायण सिंह द्वारा प्रस्तावित विधेयक हैं ; जिन्हें सदन में बहस के पश्चात् अस्वीकृत कर दिया है ।

<u>प्रस्तावक के अनुसार गैर सरकारी विधेयकों की तालिका</u>

प्रस्तावक	१९५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	योग
श्रीप्रतापचन्द्र आजाद	-	-	३	४	९	१	२	७	४	३	-	३३
श्री कुं०गुरुनारायण	-	६	६	४	२	-	१	-	-	-	-	१९
श्रीहृदयनारायणसिंह	-	-	-	-	-	४	१	५	१	५	-	१६
श्री प्रेमचन्द्र शर्मा	-	-	-	-	-	-	१	-	-	२	-	३
श्रीशफीक अहमद	-	-	-	-	-	-	-	-	-	३	-	३
श्री रामेश्वर सिंह	-	-	-	-	-	-	१	-	१	-	-	२
श्री ए०जे०फरीदी	-	-	-	-	-	-	-	१	-	१	-	२
श्री गोविन्दसहाय	-	-	१	-	-	-	-	-	-	-	-	१
अज्ञात	-	-	-	१	-	-	-	-	-	-	-	१
योग	-	६	१०	९	११	५	६	१३	६	१४	-	८०

१९५२ से १९६२ के बीच विधान परिषद् में केवल आठ सदस्यों ने गैर सरकारी विधेयकों की सूचना दी है जिनमें सरकारी पक्ष के प्रतापचन्द्र आजाद और प्रतिपक्ष से निर्दलीय सदस्य कुंवर गुरुनारायण और हृदयनारायण सिंह ने सर्वाधिक गैर सरकारी विधेयकों को प्रस्तावित किया था ।

प्रतापचन्द्र आजाद और कुंवर गुरु नारायण द्वारा प्रस्तावित अधिकांश विधेयक सामाजिक सुधार अथवा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने से संबंधित है । उदाहरणार्थ कुंवर गुरुनारायण द्वारा प्रस्तावित १९५२ ई० का अश्लील चलनाव निषेध तथा असमान विवाह निषेध विधेयक, प्रतापचन्द्र आजाद द्वारा प्रस्तावित १९५५ ई० का हिन्दू दत्तक व्यवस्था सुधार विधेयक, भिखमंगी निरोध विधेयक तथा उ०प्र० बच्चों का सिगरेट, बीड़ी तथा तम्बाकू निषेध विधेयक । हृदयनारायण सिंह द्वारा प्रस्तावित अधिकांश विधेयक विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयक हैं । इसके अतिरिक्त भूमि सुधार तथा स्थानीय निकायों से सम्बन्धित गैर सरकारी विधेयक भी प्रस्तावित हुए हैं, यद्यपि इनमें से एक विधेयक भी स्वीकृत नहीं हुआ है ।

निष्कर्ष यह कि विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों ने मुख्य रूप से जनहित से सम्बन्धित विधेयक प्रस्तावित किये हैं तथा शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों ने मुख्यत: शिक्षा सम्बन्धी विधेयकों को । इसका यह अर्थ है गैर सरकारी विधेयकों के सम्बन्ध में विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों ने जनहित का प्रतिनिधित्व किया है तथा शिक्षक सदस्यों ने शिक्षा तथा शिक्षक के हितों का ।

गैर सरकारी संकल्प :-

गैर सरकारी विधेयकों के अतिरिक्त १९५२ से १९६२ के बीच लगभग दो सौ गैर सरकारी संकल्पों की सूचना विधान परिषद् को दी गई जिनमें से अधिकांश प्रस्तावक द्वारा वापस ले लिये गये अथवा वाद-विवाद के उपरान्त वे परिषद् द्वारा अस्वीकृत कर दिये गए । इसके अतिरिक्त सभापति ने कुछ वैसे संकल्पों को प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जो नियमानुकूल नहीं थे, किन्तु कुछ वैसे संकल्प जो नियमानुकूल

थे तथा सभापति द्वारा ग्राह्य कर लिये गए थे, प्रस्तावक ने प्रस्तुत नहीं किया ।

विधान परिषद् द्वारा पहला गैर सरकारी संकल्प ४ अगस्त १९५३ को स्वीकृत हुआ था । इस संकल्प के द्वारा यह प्रस्तावित किया गया कि "किसी भी "चिकित्सा स्नातक को चिकित्सा का काम करने देने की अनुमति के पूर्व किसी ग्रामीण चिकित्सालय में पांच वर्ष तक नौकरी करना जरूरी है ।"[1] विधान परिषद् द्वारा स्वीकृत दूसरा गैर सरकारी संकल्प इस प्रदेश की आर्थिक दशा सुधारने के सम्बन्ध में था । इस संकल्प का मन्तव्य यह था कि "राज्य में जमींदारी विनाश के पश्चात् पूंजीवाद का अन्त करने के लिए उत्पादन, विनिमय और वितरण के मुख्य साधनों का समाजीकरण करने के लिए आवश्यक कार्यवाही किये जायें ।"[2] इसी प्रकार विधान परिषद् द्वारा स्वीकृत एक अन्य गैर सरकारी संकल्प में उत्तर प्रदेश की जनसंख्या, क्षेत्रफल और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार से पंचवर्षीय योजनाओं में अधिक अनुदान देने के लिए अनुरोध किया गया था ।"[3]

विधान परिषद् द्वारा पारित उपर्युक्त गैर सरकारी संकल्पों से दो बातें स्पष्ट होती हैं :-(१) विधान परिषद् का दृष्टिकोण पूंजीवादी नहीं था, अपितु समाजवादी और (२) विधान परिषद् प्रदेश की आर्थिक प्रगति के लिए प्रयत्नशील थी ।

कुछ गैर सरकारी संकल्प जो विधान परिषद् द्वारा स्वीकृत हुआ था, प्रदेश की दो-एक ऐसी कुरीतियों को रोकने के लिए था । उदाहरणार्थ जहां सौचालयों से ड्रेन नहीं लगी थी, वहां गन्दगी फेंकने के लिए लोहे की हाथ गाड़ियों का प्रबन्ध और सिर पर रखकर टोकरी रखने की प्रथा का तुरन्त बन्द किये जाने का संकल्प पारित किया गया था ।

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ३२, ४ अगस्त,१९५३
२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०,खं० ४२, २३ अगस्त,१९५५
३. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५२,१८ अप्रैल,१९५७

इसके अतिरिक्त बालगृह की स्थापना के लिए सांकेतिक या किसी और प्रकार की भूख हड़ताल को रोकने के लिए भी गैर सरकारी संकल्प पारित हुए थे। विधान परिषद् की आश्वासन समिति का निर्माण भी सर्वप्रथम एक गैर सरकारी संकल्प द्वारा ही हुआ था।

निष्कर्ष :-

विधान परिषद् ने विधान सभा से कम महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया है। परिशोधक सदन के रूप में इसने अनेक साधारण तथा वित्तीय विधेयकों को संशोधित किया है तथा विचारोत्तेजक सदन के रूप में इसने प्राय: सभी महत्वपूर्ण विधेयकों पर सुझाव दिया है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से अन्य विधेयकों की अपेक्षा शिक्षा सम्बन्धी विधेयकों पर विधान परिषद् के शिक्षक सदस्यों के विचार तथा सुझाव अधिक लाभप्रद सिद्ध हुए हैं।

विधान सभा की अपेक्षा विधान परिषद् में वाद-विवाद का स्तर ऊँचा रहा है। विधान परिषद् के उच्चस्तरीय वाद-विवाद का कारण इसके निर्दलीय सदस्यों का स्वतंत्र विचार था। कई अवसरों पर विधान परिषद् कांग्रेस दल के सदस्यों ने भी दलीय प्रतिबन्ध से हटकर स्वतंत्रतापूर्वक विचार व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त विधेयक पर संतुलित विचार तथा बहस के समय भाषण को विषय वस्तु तक ही सीमित रखना भी इसके उच्चस्तरीय वाद-विवाद का कारण है। पर इसके विपरीत विधान सभा में व्यापक विधेयकों पर संतुलित रूप से विचार नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ १९६० ई० के क्षेत्रसमिति तथा जिला परिषद् (संशोधन) विधेयक पर विचार के लिए विधान सभा द्वारा लिये गये समय तथा धन के व्यय के सम्बन्ध में मंत्री श्री विचित्रनारायण शर्मा का कथन है," आठ दिन में इस विधेयक के केवल ४० खण्ड ही पास किये गये और बाकी खण्डों को एक दिन में पास किया गया।"[१] वह आगे कहते हैं "जिस तरह से ४० खण्ड पास किये गये थे यदि उस

---

१. उ०प्र०विधान सभा की कार्य०, १४ सितम्बर १९६०, पृ० १९८

२.

तरह से काम होता तो १४ आने भर काम के लिए ७० दिन और कुछ काम के लिए ८० दिन होने चाहिए थे। ...... एक सदस्य ने कहा कि ५०-६० हजार रुपया इस विधेयक पर खर्च हो गया तब भी कुछ नहीं हुआ। अगर ऐसा करते तो लाखों रुपया खर्च होता।"[१]

निष्कर्ष यह कि व्यापक विधेयकों पर विधान सभा में अधिक समय लगा है तथा अधिक व्यय भी हुआ है, फिर भी विधेयक पर संतुलित रूप से विचार नहीं हो पाया है।

विधान परिषद् के सदस्यों की तुलना में विधान सभा के सदस्यों ने अक्सर बहस के समय विषय की सीमा से बाहर होकर विचार व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ १९५३ ई० का आगरा विश्वविद्यालय अध्यादेश उपकुलपति के कार्य काल को एक साल बढ़ाये जाने के लिए लागू किया गया था। विधान परिषद् में इस पर विचार-विनिमय के समय सदस्यों ने अध्यादेश की वैधानिकता पर विचार प्रकट किया है तथा विधान सभा के सदस्यों ने विश्वविद्यालय की स्वायत्तता पर। चूंकि उपकुलपति का कार्यकाल अध्यादेश द्वारा बढ़ाया गया था, इसलिये अध्यादेश की वैधानिकता पर विचार प्रकट किया जाना अप्रासंगिक नहीं कहा जा सकता; किन्तु दूसरी ओर इसका सम्बन्ध विश्वविद्यालय की स्वायत्तता से नहीं था, अत: विश्वविद्यालय की स्वायत्तता पर बोलकर, सभा सदस्यों ने सदन का समय नष्ट किया है। इस सम्बन्ध में विधान सभा के प्रति तत्कालीन शिक्षामंत्री हरगोविन्द सिंह की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी -- "क्या सम्बन्ध इसका था कि इसमें स्वायत्तता पर एक लम्बा भाषण दिया जाता। ...... इस स्वायत्तता शब्द का प्रयोग भी मैंने नहीं किया इसलिये कि मैं वाद विवाद में इसके लिए कोई स्थान नहीं समझता था।"[२]

---

१. उ०प्र०विधान सभा की कार्य०, १४ सितम्बर,१९६० ई०, पृ० १९८

२. उ०प्र०विधान सभा की कार्य०खं० ११६-११७, पृ० २३१-२३२

अधिकांश विधेयकों पर विधान परिषद् में विचार-विनिमय के समय परिषद् सदस्यों ने सामान्य हित तथा विधेयकों के गुण-दोषों के आधार पर विचार व्यक्त किये हैं, किन्तु कुछ विधेयकों पर कुछ सदस्यों द्वारा व्यक्त किये गए विचारों में वर्ग हित की भावना प्रधान है। परिषद् सदस्य के इन विचारों में जिन विभिन्न वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व हुआ है, वे हैं कृषक, शिक्षक, वकील, महिला, मजदूर तथा व्यापारी वर्ग का हित।

विधान परिषद् को पूंजीपतियों का प्रतिनिधि सदन नहीं कहा जा सकता, यद्यपि दो-एक विधेयकों पर विचार-विनिमय के समय दो चार सदस्यों ने व्यापारी अथवा धनी वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व किया है। उदाहरणार्थ १६५३ ई० के जमींदारों के ऋण कम करने के विधेयक के सम्बन्ध में परिषद् के कुछ सदस्यों की राय थी कि जमींदारों को ऋण कम करने से व्यापारियों को आर्थिक नुकशान होगा। किन्तु इस प्रकार के दो चार सदस्यों के दृष्टिकोण के आधार पर विधान परिषद् के दृष्टिकोण को पूंजीवादी नहीं कहा जा सकता।

सामान्य रूप से विधान परिषद् का दृष्टिकोण रूढ़िवादी भी नहीं था, किन्तु जब कभी किसी वर्गहित का प्रश्न आया है उस समय दो-एक सदस्यों का दृष्टिकोण रूढ़िवादी भी प्रमाणित हुआ है। उदाहरणार्थ पब्लिक गैम्बलिंग बिल पर विचार विनिमय के समय विधान परिषद् के दो-एक सदस्यों की राय थी कि दीपावली के अवसर पर बनियों तथा व्यापारियों के जुआ खेलने पर रोक नहीं लगाया जाय। उनका तर्क यह था कि व्यापारी दीपावली के अवसर पर जुआ खेलने को शुभ मानते हैं तथा इसके हार-जीत के आधार पर वे व्यापार में लाभ-हानि का अनुमान लगाते हैं। परिषद् सदस्यों के इस प्रकार का दृष्टिकोण समाज के एक वर्ग विशेष का दृष्टिकोण है जो दीपावली में जुआ खेलना शुभ मानता है। यह एक अलग प्रश्न है कि इस प्रकार का रूढ़िवादी दृष्टिकोण कहाँ तक उचित अथवा मान्य है, किन्तु यदि विधान परिषद् में वर्ग तथा पेशे के हितों का प्रतिनिधित्व हुआ है तो वैसे विधेयक पर सदन में विचार विनिमय के समय उस वर्ग

विशेष के दृष्टिकोण को भी रखना आवश्यक है जिस विधेयक से उसके हित पर प्रभाव पड़ने की संभावना है। पुन: इस प्रकार के दृष्टिकोण वाले सदस्यों की संख्या दो एक ही थी। अत: दो-एक सदस्यों के इस प्रकार के दृष्टिकोण के आधार पर विधान परिषद् के दृष्टिकोण को रूढ़िवादी कहना उचित नहीं है।

संक्षेप में १९५२ से १९६२ के बीच विधायन के मामले में विधान परिषद् का योगदान विधान सभा से कम नहीं है। इस अवधि के बीच दोनों सदनों में सत्तारूढ़ कांग्रेस दल का पर्याप्त बहुमत बना रहने के कारण एक तो दोनों सदनों के बीच विधायिनी सम्बन्ध अच्छा बना रहा, साथ ही किसी भी सरकारी विधेयक को पारित होने में कठिनाई नहीं हुई है।

अध्याय–७

विधान परिषद् और मंत्रिमंडल :–

फ्रायडरिक के अनुसार कार्यपालिका के नेतृत्व का प्रभाव बढ़ने के कारण मुख्य कार्यपालिका और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच का सम्बन्ध बदल गया है। इसलिए यह कोई आश्चर्य नहीं यदि मंत्रि मंडल विधान मण्डल से अलग एक स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखता है।[१] मंत्रिमण्डल के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण ही रैमजेम्योर ने भी ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सम्बन्ध में कहा है कि संसद द्वारा मंत्रिमण्डल नियंत्रित नहीं होती है बल्कि मंत्रिमण्डल द्वारा ही संसद नियंत्रित होती है।

फ्रायडरिक और रैमजेम्योर का मत संसदीय व्यवस्था में संसद् और मंत्रिमण्डल के बदलते हुए आपसी सम्बन्ध पर आधारित है। अत: यदि मंत्रिमण्डल का प्रभाव प्रथम सदन पर बढ़ता जा रहा है तो मंत्रिमण्डल पर द्वितीय सदन के प्रभाव को गौण समझा जाना स्वाभाविक है। संसदीय व्यवस्था में मंत्रिमण्डल द्वितीय सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होता, अत: यह सदन मंत्रिमंडल को भंग भी नहीं कर सकती।

विधान मण्डल और मन्त्रिमण्डल के इस बदलते हुए सम्बन्ध के सन्दर्भ में प्रश्न है कि उत्तर प्रदेश विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल के बीच पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार रहा है? विधानपरिषद् और मंत्रिमण्डल ने किस प्रकार से एक दूसरे को प्रभावित किया है? उ०प्र० का मंत्रिमण्डल विधान परिषद् के

---

१. कार्ल जे० फ्रायडरिक, कंस्टीच्युशनल गवर्नमेंट एन्ड डेमोक्रेसी (फर्स्ट इंडियन एडिशन, कलकत्ता १९६६), पृ० ३५४–३५५

प्रति उत्तरदायी नहीं है । अतः प्रश्न है कि क्या सभा और मंत्रिमण्डल के आपसी सम्बन्ध की तरह विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल का सम्बन्ध नहीं था ?

संसदीय शासन व्यवस्था में मंत्रिमण्डल का गठन और नेतृत्व प्रथम सदन के बहुमत दल के नेता तथा सदस्यों द्वारा होता है । इस दृष्टिकोण से प्रथम सदन मंत्रिमण्डल की जननी है ।

भारतीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री को प्रथम सदन के बहुमत दल का नेता होना सिर्फ एक संसदीय परम्परा है । संविधान के अन्तर्गत इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है ।

संविधान के अनुसार प्रधानमंत्री अथवा मंत्री पद पर नियुक्त होने के ६ महीने के भीतर संसद के किसी सदन का सदस्य होना आवश्यक है ।[१] राज्य विधान मण्डल के मंत्रिमण्डल के सम्बन्ध में भी संविधान में उपर्युक्त प्रकार का ही उपबन्ध है ।[२] संविधान के इन उपबंधों का यह अर्थ है कि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल का कोई सदस्य संसद के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है । इसी प्रकार राज्य मंत्रिमण्डल का कोई भी मंत्री विधान मण्डल के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है । यह कोई आवश्यक नहीं कि वह लोक सभा या विधान सभा का ही सदस्य हो । संवैधानिक इसी उपबंध के आधार पर श्री राजगोपालाचारी जब मद्रास के मुख्यमंत्री नियुक्त हुए उस समय वह मद्रास विधान परिषद् के ही सदस्य थे । इसी प्रकार स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमण्डल के विघटन के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री नियुक्त होने के बाद राज्यसभा की सदस्या बनी थीं और १९६७ के चतुर्थ आम चुनाव के पहले तक वह राज्यसभा की ही सदस्या बनी रहीं । उ०प्र०विधान परिषद् के १० वर्ष के इतिहास में

---

1. Art.75 (5) "A Minister who for any period of six consecutive months is not a member of either house of Parliament shall at the expiration of the period cease to be a Minister".
2. Art. 164(4) "A Minister who for any period of six consecutive months is not a member of the State Legislature of the State shall at the expiration of that period cease to be a Minister".

भी इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं । ७ दिसम्बर १९६० को जब श्रीचन्द्र भानुगुप्त मुख्यमंत्री हुए थे, उसके बाद उन्होंने विधान परिषद् की ही सदस्यता प्राप्त की थी, यद्यपि विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो जाने पर उन्होंने विधान परिषद् से त्यागपत्र दे दिया था ।

१९५२ से १९६२ के बीच उ०प्र०विधान परिषद् के कई सदस्य मंत्रि-परिषद् में थे, यद्यपि यह सत्य है कि द्वितीय आमचुनाव के पहले तक परिषद् का कोई भी सदस्य मंत्रिमण्डल में नहीं था । १९५२ में कुछ सदस्यों ने (विधान परिषद् के) यह इच्छा व्यक्त की थी कि परिषद् के सदस्य भी मंत्री, उपमंत्री तथा सभा सचिव बनाये जायं । पुन: १९५६ में जब विधान परिषद् की सदस्य संख्या को बढ़ाये जाने के प्रस्ताव पर विचार हो रहा था, उस समय परिषद् सदस्य ~~षद् की सदस्य संख्या को बढ़ाये जाने के प्रस्ताव पर विचार हो रहा था,~~ शान्तिस्वरूप अग्रवाल ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि परिषद् के सदस्य भी मंत्रिमण्डल में लिये जायं ।[१]

परिषद् सदस्यों के उपर्युक्त मांगों का सरकार पर कितना प्रभाव पड़ा, इसे निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता, किन्तु यह सत्य है कि १९५२ में परिषद् का कोई भी सदस्य मंत्रिपरिषद् में नहीं था, और इसके बाद ही (१९५६ के बाद) ठाकुर परमात्मानन्द सिंह और कुंवर महावीर सिंह (दोनों विधान परिषद् के कांग्रेस सदस्य) क्रमश: उपमंत्री तथा अवैतनिक सभा सचिव बनाये गये थे ।

द्वितीय आमचुनाव के बाद ठा० हरगोविन्द सिंह और श्री अलगूराय शास्त्री विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् मंत्रिमण्डल में सम्मिलित किये गए थे । इसके अतिरिक्त विधान परिषद् के अन्य सदस्य सर्वश्री

---

१. उ०प्र० वि०परि० की कार्यवाही, खण्ड ५१, २८ दिसम्बर १९५६, पृ० २०६

प्रेमचन्द्र शर्मा, रामनारायण पांडे, कैलाश प्रकाश, एउफ़ जाफरी भी मंत्रि-परिषद में थे । १९६२ के तृतीय आमचुनाव के बाद तृतीय मंत्रिमण्डल में ठाकुर हरगोविन्द सिंह के अतिरिक्त विधान परिषद् के अन्य सदस्य सर्वश्री कुंवर देवेन्द्र प्रताप , मुहम्मद शाहिद फाखिरी और शिवप्रसाद गुप्त मंत्रिपरिषद् में उपमंत्री के पद पर थे ।

1957 की अपेक्षा १९६२ के तृतीय मंत्रिपरिषद् में विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या बढ़ी है । विधान परिषद् सदस्यों का मंत्रिमण्डल या मंत्रिपरिषद् में नियुक्त किये जाने के परिणामस्वरूप उन मंत्रियों के माध्यम से मंत्रिमण्डल और विधान परिषद् में सीधा सम्बन्ध बना हुआ था ।

विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल के बीच पारस्परिक सम्बन्ध मंत्रियों द्वारा विधान परिषद् की बैठक में भाग लेने से भी बढ़ा है । विधान परिषद् की बैठक में मंत्रियों तथा उपमंत्रियों द्वारा नियमित रूप से भाग लिया जाता रहा है । १९५२ से १९६२ के बीच केवल एक बार विधान परिषद् की बैठक में मंत्रियों की अनुपस्थिति पर डा० ए०जे० फरीदी, विधान परिषद् सदस्य ने आपत्ति की थी । सरकार की ओर से श्री चरण सिंह तत्कालीन मालमंत्री ने विधान परिषद् में मंत्रियों की अनुपस्थिति के लिए विधान परिषद् के समक्ष क्षमा याचना की थी ।[१] विधान परिषद् की कार्यवाही चलते समय उपस्थित मंत्रियों (उपमंत्री भी सम्मिलित थे) की औसतन संख्या दो से चार के बीच थी, यद्यपि इसकी कई बैठकों में ६ से भी अधिक मंत्री उपस्थित थे ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि १९५८ के पहले उपमंत्री अथवा सभासचिव विधान परिषद् की बैठक में सरकार का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे क्योंकि १९५८ के

---

१. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की कार्यवाही, खण्ड ८०, १६ नवम्बर १९६१ पृ० २५०

पहले तक उपमंत्री तथा सभा सचिव मंत्रि परिषद् के सदस्य हैं या नहीं, यह विवादास्पद था । १६५८ में जब यह विवाद समाप्त हुआ और उपमंत्री तथा सभासचिव को मंत्रिपरिषद् में सम्मिलित समझा जाने लगा, उसके बाद से उपमंत्री तथा सभा सचिव विधान परिषद् की बैठक में सरकार के प्रतिनिधि के रूप में बैठने लगे तथा सरकार की और से उत्तर देने लगे थे ।

विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल का पारस्परिक सम्बन्ध विधान परिषद् के सदन नेता ~~मंत्रि~~ द्वारा भी बढ़ा है । १६५२ से १६६२ के बीच विधान परिषद् के सदन नेता मंत्रिमण्डल के वरिष्ठ सदस्य थे । प्रथम सदन नेता वित्तमंत्री श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम थे और दूसरे श्री हुकुमसिंह थे । दोनों विधान सभा के सदस्य थे । दोनों सदन नेताओं ने सरकार की नीति तथा उद्देश्य को विधान परिषद् के समक्ष रखा है तथा विधान परिषद् की भावनाओं से सरकार को अवगत कराया है । उदाहरणार्थ १६५५-५६ के बजट पर विधान परिषद् सदस्यों द्वारा व्यक्त किये गए विचारों तथा भावनाओं को तत्कालीन सदन नेता श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम ने सरकार तक पहुंचाने का आश्वासन दिया था । उन्हीं के शब्दों में " मैं अर्ज करूंगा कि मैं मेम्बरों का बड़ा मश्कूर हूं । उन्होंने बहुत ही सजेस्टिव स्पीचेज दीं और मैं उनसे जरूर फायदा उठाऊंगा । मैं कोशिश करूंगा कि जिन साहबान ने जो सुझाव दिये हैं सब विभाग के मंत्रियों तक पहुँचे जायं और उनके ऊपर गौर कर लें ।"[१]

वस्तुत: विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल का सम्बन्ध बहुत कुछ सदन नेता पर निर्भर था, प्रथम सदन नेता श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम का विधान परिषद् के साथ अच्छा सम्बन्ध था । अनेक अवसरों पर विधान परिषद् सदस्यों द्वारा सरकार की की गई आलोचनाओं को श्री इब्राहिम ने धैर्य से सुना तथा उन आलोचनाओं का उत्तर उन्होंने बड़े ही समन्वयात्मक तथा मैत्रीय ढंग से दिया है ।

---

१. उ०प्र०विधान परि० की कार्यवाही, खण्ड ४०, मार्च १, १६५५, पृ० १५०

विधान परिषद के प्रति श्री इब्राहिम के इस दृष्टिकोण को डा० ईश्वरी-प्रसाद विधान परिषद सदस्य ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है :—

"Hafiz Mohammad Ibrahim, who is always conciliatory, always sweet and always reasonable, and even in the midst of provocative attacks upon the Congress Policy and Congress Ministers.. ...... he always keeps his smile and always replies in a beautiful manner."[1]

उपर्युक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि विधान परिषद् के प्रति सदन नेता श्री इब्राहिम का दृष्टिकोण क्या था ? उन्हीं के शब्दों में —" मैं तो इस बात का इकरार करता हूं कि इस हाउस से हमको बड़ी मदद मिलती है । यह बात किसी मंत्री के दिमाग में नहीं है या किसी सरकार के सदस्य के दिमाग में नहीं है कि इस सदन के सदस्यों को वह दर्जा न दिया जाय जो कि दर असल उनका है ।"[२]

द्वितीय सदन नेता श्री हुकुम सिंह का विधान परिषद् के प्रति दृष्टिकोण श्री हाफिज जी की तरह न तो अधिक समन्वयात्मक था और न उनकी भावना सदन के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण ही थी । संभवत: इसी कारण दो-एक अवसरों पर परिषद् के कुछ सदस्यों ने यह आवाज उठाई थी कि विधान परिषद् के सदन नेता मंत्रिमण्डल के वे ही सदस्य हों जो विधान परिषद् के सदस्य भी हों ।[३]

यद्यपि उपर्युक्त परम्परा से विधान परिषद् को मंत्रिमण्डल के सन्निकट आने में सहायता मिली है, किन्तु यह सन्निकटता और भी बढ़ सकती है यदि विधान परिषद् के सदन नेता विधान परिषद् के ही सदस्य

---

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्यवाही, खं० ३८, १६ दिसम्बर १९५४, पृ० २४७-४८, संदर्भ १९५४ ई० का इलाहाबाद यूनिवर्सिटी (सं०) विधेयक ।

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खं० ४७, पृ० ७२३

३. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ८१, ४ अप्रैल १९६२, पृ० ३२१-२२

जो मंत्री हैं, बनाये जायं ।

यह युक्ति संगत भी नहीं मालूम पड़ता है कि विधान परिषद् के सदन नेता विधान सभा के सदस्य हों । ४ अप्रैल १९६२ को श्री इसहाक संभली विधान परिषद् सदस्य ने सदन के समक्ष यह विचार रखा था कि "जब हमारे सदन के माननीय सदस्य मंत्रिमण्डल के फुलफ्लैज्ड मिनिस्टर हैं, तब उनको नेता सदन होना चाहिए ।[1] उनके अनुसार यह सम्मान के विपरीत है कि किसी दूसरे मंत्री जो विधान सभा के सदस्य हैं विधान परिषद् के सदन नेता बनाये गए ।

वस्तुत: नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि नेता को समान व्यवहार, समान दृष्टिकोण तथा समान गुण का हो ।[2] यदि फ्रायडरिक के उपर्युक्त मत तथा फाइनर के इस विचार से सहमति प्रकट की जाय कि दो प्रकार के निर्वाचन प्रणाली से निर्वाचित सदस्यों के दो दृष्टिकोण होते हैं,[3] तो प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से निर्वाचित विधान सभा के सदस्य को विधान परिषद् के सदन नेता के रूप में नियुक्त करना उचित नहीं है ।

विधान परिषद् का मंत्रिमण्डल पर प्रभाव :-

विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल के उपर्युक्त सम्बन्धों के बावजूद विधान परिषद् का मंत्रिमण्डल के साथ उस प्रकार का सम्बन्ध नहीं है जिस प्रकार सभा का सम्बन्ध मंत्रिमण्डल से है । विधान सभा मंत्रिमण्डल को समाप्त कर सकती है और मंत्रिमण्डल (मुख्यमंत्री के नेतृत्व में) विधान सभा को भंग करवा सकता है, किन्तु विधान परिषद् मंत्रिमंडल को समाप्त नहीं

---

१. उ०प्र० वि०परिषद् की कार्य०, खं० ८१, ४ अप्रैल १९६२, पृ० ३२-३२२
२. कार्ल जे. फ्रायडरिक, कंस्टीच्यूशनल गवर्नमेंट एन्ड डेमोक्रैसी, पृ० ३५७
३. वही, पृ० ३५७

कर सकती है और मंत्रिमण्डल भी विधान परिषद् को भंग नहीं कर सकता। विधान परिषद् एक स्थायी सदन है। अत: इसके भंग करने का प्रश्न नहीं उठता। हाँ, यदि विधान सभा मंत्रिमण्डल के किसी मंत्री द्वारा प्रस्तावित विधान परिषद् को निरस्त करने के संकल्प को बहुमत सदस्यों द्वारा तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दे तो संसद अधिनियम द्वारा विधान परिषद् को निरस्त कर सकती है।[१] वस्तुत: मंत्रिमंडल को यदि विधान सभा के बहुमत से सदस्यों का समर्थन प्राप्त है तो वह विधान परिषद् को निरस्त करने के संकल्प को सभा द्वारा आसानी से पारित करवा सकती है, तथापि यह उल्लेखनीय है कि मंत्रिमण्डल प्रत्यक्ष रूप से स्वयं विधान परिषद् को निरस्त नहीं कर सकती। सभा द्वारा इस प्रयोजन के संकल्प पारित होने के उपरान्त ही संसद् परिषद् को निरस्त करने के लिए अधिनियम पारित कर सकती है।

संवैधानिक उपर्युक्त उपबन्धों द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल एक दूसरे पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव नहीं रखती हैं, किन्तु यह संवैधानिक तथा सैद्धान्तिक पक्ष है। व्यवहार में विभिन्न क्रिया-कलापों द्वारा विधान परिषद् और मंत्रिमण्डल एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। राज्यपाल के अभिभाषण के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव के समय तथा बजट एवं विधेयक पर बहस के समय विधान परिषद् सरकार की नीति की आलोचना तथा उसकी त्रुटियों को दर्शाने का प्रयत्न करती है। इसके

---

१. Art. 169(1) Notwithstanding any thing in article 168, Parliament may by law provide for the abolition of the Legislative Council of a State having such council, if the Legislative Assembly of the State passed a resolution to that effect by a majority of the total membersnip of the Assembly and by a majority of not less than two-thirds of the members of the Assembly present and voting."

अतिरिक्त प्रश्न, आधे घंटे की बहस तथा कार्यस्थगन प्रस्ताव द्वारा भी विधान परिषद् मंत्रिमण्डल को प्रभावित तथा नियंत्रित करने का प्रयास करती है।

राज्यपाल के अभिभाषण के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव पर बहस :-

विधानपरिषद् सदस्य धन्यवाद प्रस्ताव के माध्यम से राज्यपाल के अभिभाषण की त्रुटियों को इंगित करते हुए सरकार की आलोचना करते हैं। विधान परिषद् की यह प्रथा लोक सभा, राज्यसभा तथा प्रान्तीय विधान सभा के समान ही है।

संसदीय परम्परा के अनुसार तथा संविधान के अनुच्छेद १७१ के अन्तर्गत विधान सभा के प्रत्येक आम चुनाव के बाद प्रथम सत्र के प्रारम्भ में और प्रत्येक वर्ष विधान मण्डल का प्रथम सत्र का आरम्भ होने पर राज्यपाल दोनों सदनों की समवेत उपवेशन में अभिभाषण करते हैं। तदुपरान्त दोनों सदन अपने-अपने सदन में राज्यपाल द्वारा दिये गए अभिभाषणों में निर्दिष्ट विषयों पर बहस करते हैं।[१]

राज्यपाल के सम्बोधन में सरकार द्वारा किये गए गत वर्ष के कार्यों का उल्लेख तथा नये वर्ष में सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों का एक सामान्य परिचय रहता है। विधान परिषद् में राज्यपाल के अभिभाषण के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव पर बहस के समय सदस्यों ने अभिभाषण की त्रुटियों तथा सरकार की आलोचना की है। उदाहरणार्थ १९५२ में राज्यपाल द्वारा दिये गए अभिभाषण पर टिप्पणी करते हुए श्रीगोविन्द सहाय विधान परिषद् सदस्य कहते हैं -" इस किस्म के सम्बोधन जिसमें किसी किस्म की नीति या किसी बुनियादी उसूल का जिक्र नहीं है और सिर्फ एक चलते फिरते मन की एक बहुत अच्छी नेकनियत की चर्चा की गई है।" वह आगे कहते हैं......

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियमावली-नियम ११,पृ०३

किस बुनियाद पर सरकार काम करती है उसका उसे कुछ भी ख्याल नहीं है ।"[१] कन्हैयालाल गुप्त विधान परिषद् सदस्य ने अभिभाषण की चर्चा करते समय क्षोभ प्रकट करते हुए कहा "सरकार ने जो नीतियां शिक्षा सुधार के लिए पिछले पांच सालों में अख्तियार की थीं, वह असंतोषजनक साबित हुई ।"[२] श्री सत्यप्रेमी विधान परिषद् सदस्य के अनुसार अभिभाषण में सार्वजनिक स्वास्थ्य पर पूर्ण प्रकाश डाला नहीं गया है ।[३]

१९५३ ई० में राज्यपाल द्वारा दिये गए अभिभाषण पर वाद विवाद के समय विधान परिषद् के सदस्यों ने सरकार की नीति की आलोचना इस प्रकार की है । डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार" ..... परन्तु सम्बोधन में उन्होंने इस बात का वर्णन नहीं किया है कि शिक्षा में आजकल बड़े-बड़े दोष उत्पन्न हो गये हैं । .... प्रयाग विश्व विद्यालय में सुधार के विषय में कुछ कहा नहीं गया है । प्राइमरी शिक्षा भी बड़ी बुरी स्थिति में है ।[४] श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के अनुसार संभाषण में व्यवसायी बंधुओं अर्थात् पत्रकारों की सहानुभूति या सुविधा के लिए एक बात भी नहीं कही गई है ।"[५] विधान परिषद् के अन्य सदस्यों ने भी अभिभाषण की त्रुटियों को संकेत करते हुए सरकार की आलोचना की है ।

१९५७ में राज्यपाल द्वारा दिये गए अभिभाषण की त्रुटियों को इंगित करते हुए श्रीमती महादेवी वर्मा (परिषद् की मनोनीत सदस्या) का कथन है "अभिभाषण में मानवता के उत्थान के लिए कोई रूपरेखा नहीं मिलती है । "[६]

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य० खं० २५, २२ मई १९५२, पृ० ३८
२. खंड तथा तिथि वही, पृ० ५९
३. खंड तथा दिनांक वही, पृ० ६२
४. वि०परिषद् की कार्य०खं० ३०, १७ फरवरी १९५३, पृ० ६९
५. वि०परिषद् खंड वही दिनांक १८ फरवरी ५३, पृ० १०३
६. वि०परि० खंड वही, ५२, १५ अप्रैल १९५७ , पृ० ७२-७६

श्री वीरेन्द्रस्वरूप के अनुसार अभिभाषण में निम्न वेतनभोगी सरकारी नौकरों तथा अध्यापकों के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं है ।[१]

निष्कर्ष यह कि राज्यपाल के अभिभाषण की कमियों को दर्शा कर परिषद् सदस्यों ने सरकार पर आक्षेप किया है । इसी प्रकार अन्य अभिभाषणों पर भी विधान परिषद् सदस्यों द्वारा आलोचनाएं की गई हैं ।

राज्यपाल के अभिभाषण की त्रुटियों को बताने के लिए सदस्यों द्वारा संशोधन प्रस्ताव का भी प्रयोग किया जाता है । संशोधन प्रस्ताव के द्वारा यह कहा जाता है कि अमुक बातों का उल्लेख अभिभाषण में नहीं है , अत: अभिभाषण के अन्त में अमुक बातें (जो सदस्य द्वारा संशोधन प्रस्ताव में निर्दिष्ट किये जाते हैं) जोड़ दी जायं । यद्यपि इस प्रकार का अधिकार प्रत्येक सदस्य को प्राप्त है, किन्तु व्यवहार में इस अधिकार का प्रयोग विरोधी सदस्य द्वारा ही सरकार की आलोचना के लिए किया जाता है । प्रत्येक अभिभाषण पर प्राय: इस प्रकार के संशोधन प्रस्ताव रखे जाते हैं । यहां सभी का उल्लेख करना संभव नहीं । अत: केवल कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं ।

१९५४ में राज्यपाल द्वारा दिये गए अभिभाषण के सम्बन्ध में कुंवर गुरुनारायण ने संशोधन प्रस्ताव रखते हुए कहा कि संबोधन में आर्थिक संकट, लोगों की क्रयशक्ति में ह्रास, मध्यम वर्ग की दशा में गिरावट तथा अति कर भारित लोगों के कर को कम करने का कोई उल्लेख सम्बोधन में नहीं है अत: सम्बोधन के अन्त में उन्हें जोड़ दिया जाय ।[२] इसी प्रकार १९५७ में राज्यपाल द्वारा दिये गए अभिभाषण के लिए उनके धन्यवाद के प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री प्रतापचन्द्र आजाद ने प्रस्ताव किया था कि धन्यवाद प्रस्ताव में अन्त में

---

१. उ०प्र०वि०परि०, खंड ५२, १५ अप्रैल, १९५७, पृ० ~~७२-७४~~ ६१-६५.
२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, खंड ३४, १२ फरवरी, १९५४, पृ० १६

निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जांय :-" किन्तु राज्यपाल महोदय ने अपने भाषण में निम्नलिखित समस्याओं पर प्रकाश नहीं डाला है --प्रदेश की आर्थिक दशा सुधारने के निमित्त सरकार के बढ़ते हुए खर्च में कमी के उपाय, प्राइमरी शिक्षा के गिरते हुए स्तर को ऊंचा करने के उपाय, जिला परिषदों तथा नगर पालिकाओं एवं नगर निगमों के आगामी चुनाव की रूप-रेखा, भूमि का उचित रूप से पुन: बंटवारा तथा जनता के लिए उचित तथा सस्ते न्याय की व्यवस्था ।[१]

निष्कर्ष यह कि १९५२ से १९६२ के बीच राज्यपाल के प्रत्येक अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव के समय विधान परिषद् के सदस्यों ने सरकार की नीतियों की आलोचना के लिए समुचित अवसर प्राप्त किया है । वस्तुत: यही एक अवसर होता है जब सरकार विरोधी पक्ष की बातें सुनकर आगे अपने सभी विधेयकों तथा अन्य बातों का फैसला करती है ।[२]

विधेयकों पर वाद-विवाद के द्वारा [illegible] :-

छठें अध्याय में यह स्पष्ट हो चुका है कि बजट तथा विधेयकों पर वाद-विवाद के समय विधान परिषद् के सदस्यों ने किस प्रकार से सरकार को प्रभावित किया है यद्यपि मंत्रिमंडल विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी नहीं है, किन्तु उसके उच्चस्तरीय वाद-विवाद से वह प्रभावित हुई है । विश्वविद्यालय सम्बन्धी विधेयकों तथा अन्य विधेयकों पर विधान परिषद् के सदस्यों द्वारा दिये गए सुझावों से मंत्रिमंडल ने लाभ उठाया है तथा उनके उच्च स्तरीय बहस से प्रभावित हुआ है । कई विधेयकों पर बहस के समय सरकार की ओर से विधान परिषद् को योग्य तथा अनुभवी सदस्यों का सदन कह कर सम्बोधित किया गया है । संक्षेप में, सदस्यों की योग्यता तथा

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, खंड ५२, १२ अप्रैल,१९५७, पृ० ३०

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, खं० २५, २२ मई १९५२, पृ० ५२, श्री प्रभुनारायण सिंह, विधान परिषद् सदस्य

अनुभव ने सरकार को बहुत अंशों में प्रभावित किया है । १९५२ से १९६२ की अवधि में सरकार ने विधान परिषद् को आदर की दृष्टि से देखा है तथा इसे एक उपयोगी सदन के रूप में माना है ।

विधेयकों पर वाद-विवाद के समय सदस्यों द्वारा की गई आलोचनाओं से भी मंत्रिमण्डल प्रभावित हुआ है । यदा-कदा तो विधान परिषद् के सदस्य ने भी विधान सभा सदस्य की तरह मंत्रियों के व्यक्तिगत आचरण पर आक्षेप किया है । उदाहरणार्थ १९५६ ई० के गोरखपुर विश्वविद्यालय विधेयक पर विचार के समय तत्कालीन शिक्षा मंत्री द्वारा भाषण में प्रयोग किये गए कुछ शब्दों पर आक्षेप करते हुए डा० ईश्वरीप्रसाद विधान परिषद् स सदस्य ने कहा :--

" Almighty father forgive the redoubtable Education Minister of the Uttar Pradesh Government for he knows not the meaning of the words that he employs"[1]

वस्तुत: सरकार अपनी गलतियों के लिए विधान परिषद् द्वारा की गई आलोचनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकती है, यद्यपि वह अपनी त्रुटियों के लिए विधान परिषद् के समक्ष उत्तरदायी नहीं है । विधान परिषद् की कार्यवाही के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि विधान परिषद् सदस्यों की आलोचनाएं वास्तविकता पर आधारित होने के कारण सरकार अपनी गलतियों के लिए विधान परिषद् के समक्ष शर्मिन्दित रही है । उदाहरणार्थ १९५२ ई० के आगरा यूनिवर्सिटी (अनुपूरक) विधेयक पर तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री हरगोविन्द सिंह के वक्तव्य से उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जाती है । उन्हीं के शब्दों में --"..... ....डा० ईश्वरीप्रसाद साहब ने अपनी बजट स्पीच में कहा था कि इण्टरमीडिएट बोर्ड में क्लर्क्स स्क्रूटिनाइजर्स होते हैं । ..... मैं उस वक्त समझा कि बात गलत होगी इसलिए मैंने उसका खण्डन भी नहीं किया

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०खं० ४७,२३ मई १९५६, पृ० ७१९

था बाद को मैंने लिस्ट मंगाई । मुझे अफसोस है, शर्म भी है कि हमारे दफ्तर के सौ-सौ स्क्रूटिनाइजर्स और टैबुलेटर्स होते हैं जिनको हजार-हजार, बारह-बारह सौ, चौदह सौ रुपये मिल जाते हैं और उन्हीं के जरिये से सब करप्शन होता है । ...... मैं आपके सम्मुख एक अभियुक्त की भांति खड़ा होने के लिए तैयार हूं । मैं चाहता हूं कि यदि हम गलती करें तो आप हमारी निन्दा करें ।"[१]

निष्कर्ष यह कि यदि विधान परिषद् द्वारा की गई आलोचनाएं यथार्थ हैं, तो उन आलोचनाओं का प्रभाव सरकार पर अवश्य पड़ता है ।

मंत्रिमण्डल पर प्रभाव डालने के अन्य स्रोत :-

संसदीय प्रथा की तरह विधान परिषद् में भी प्रश्न, कार्यस्थगन प्रस्ताव तथा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर आधे घंटे की बहस की प्रथा है । विधान परिषद् की नियमावली में भी इनका उल्लेख है । विधान परिषद् के सदस्यों ने इन साधनों का प्रयोग सरकार से सूचना प्राप्त करने तथा उनकी गलतियों के लिए उनसे (सरकार से) स्पष्टीकरण मांगने के लिए किया है ।

प्रश्न :-

विधान परिषद् की प्रत्येक बैठक में जब तक कि सभापति ने अन्यथा आदेश नहीं दिया है, इसके सदस्यों द्वारा प्रश्न पूछे गये हैं । पूछे गए प्रश्नों में तारांकित, अतारांकित तथा अल्पसूचित प्रश्न हैं । निम्नलिखित तालिका में

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड २८, ६ नवम्बर १९५२, पृ० ३२६

विधान परिषद् में पूछे गये प्रश्नों और उनके उत्तरों की संख्या को दर्शाया गया है :-

विधान परिषद् में १९५७ से १९६२ के बीच पूछे गए प्रश्न[१]

प्रश्नों के प्रकार	सूचना दी गई प्रश्नों की संख्या	अतारांकित में परिवर्तित प्रश्नों की संख्या	तारांकित में परिवर्तित प्रश्नों की संख्या	अस्वीकृत या वापस लिये गये प्रश्नों की संख्या	सभापति द्वारा स्वीकृत प्रश्नों की संख्या	योग स्वीकृत प्रश्न	विचा०	उत्तर दिए प्रश्नों की संख्या	सत्रावसान के कारण व्यपगत प्रश्न
तारां०	१४,६८४	१८७	------	४,६६६	६८०१+४६० जो अल्पसूचित प्रश्न तारांकित में परिवर्तित किये गये थे	१०,२६१	८४३	७०६५	३३५३
अतारां०	४१९	—	——	९०	३२९+१८७ जो तारांकित से अतारांकित किए गए +२४ जो अल्प सूचित से तारांकित किएगए थे	५४०	२	४१२	१२६
अल्पसूचित	१,३१९	२४	४६०	६११	२२४	२२४	२६	१३२	६६
योग	१६,४२२			५,३९७	११०२५	११०२५	८७१	७६०९	३५४५

विधान सभा में १९५७ से १९६२ के बीच पूछे गये प्रश्न[२]

विधान सभा में १९५७ से १९६२ के बीच विधान सभा के सदस्यों द्वारा जो

१. उ०प्र०विधान परिषद् के कार्यों के सिंहावलोकन से संगृहित, १९६२

२. उ०प्र०वि०सभा की कार्यवाही से संकलित

प्रश्न पूछे गये थे उसकी तालिका इस प्रकार है :-

प्रश्नों के प्रकार	प्राप्त प्रश्नों की संख्या	अल्पसूचित प्रश्न जो तारांकित में स्वीकृत हुए	अल्पसूचित प्रश्न जो अतारांकित से स्वीकृत हुए	तारांकित प्रश्न जो अतारां० में स्वी० हुए	योग	उत्तरों के लिए निर्धा० प्रश्न	प्रश्न जो स्वी० नहीं हुए	प्रश्न जिनका उत्तर सदन में दिया गया	व्यक्तिगत प्रश्न स्वी० के उपरान्त	व्यक्तिगत प्रश्न अन्यथा	निलम्बित प्रश्न
तारां०	३४६९५	८,४१४	-- ---	१६२६	४१,४८३	२१७२१	१९७६२	२०१४६	६५०		६२५
अतारां०	५३४	—	६५१	१,६२६	३,१११	२,८१५	२९६	२५६०	१९०	--	६५
अल्प सूचित	१६,४६८	८,४१४	६५१	—	१०१०३	१३२६	८६६८	८८६	१२४		३१८
	५४,६९७				५४६९६	२५८६५	२८८३२	२३४५२	९६५		१३०८

उपर्युक्त तालिका से यह विदित है कि विधान् परिषद् में सूचना दी गई प्रश्नों की संख्या में से लगभग एक तिहाई प्रश्नों को अस्वीकृत कर दिया गया है, यद्यपि उनमें से कुछ प्रश्नों को प्रश्नकर्ता द्वारा वापस भी ले लिया गया है। वे प्रश्न अस्वीकृत किये गए जो नियमानुसार नहीं थे। किन्तु उत्तर के लिए निर्धारित प्रश्नों में भी सभी के उत्तर नहीं दिये गए हैं। जिन प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये जा सके, उनमें से कुछ प्रश्न विचाराधीन थे तथा कुछ प्रश्न विधान परिषद् का सत्रावसान हो जाने के कारण सत्र के अन्त में व्यपगत हो गए थे।

उपर्युक्त तालिका के आधार पर यह भी संकेत मिलता है कि मंत्रि-

मण्डल विधान परिषद् द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं था।

विधान सभा और विधान परिषद् की तुलना में यद्यपि सभा में प्राप्त प्रश्नों की संख्या अधिक है किन्तु विधान परिषद् की अपेक्षा विधान सभा में लगभग आधे प्रश्न अस्वीकृत हुए हैं। शेष स्वीकृत प्रश्नों में कुछ निलम्बित किये गए तथा कुछ प्रश्न सत्र के अन्त में सभा का सत्रावसान होने से व्ययगत हो गए थे।

यद्यपि सभा में पूछे गये प्रश्नों की संख्या, विधान परिषद् से तिगुनी से भी अधिक थी, परन्तु उन प्रश्नों के परिणाम के अनुपात दोनों सदनों में प्राय: समान ही थे।

कभी कभी सरकार ने किसी प्रश्न के उत्तर की पूर्ण जानकारी नहीं रहने पर उस प्रश्न का उत्तर नहीं भी दिया है। उदाहरणार्थ १२ सितम्बर १९५५ को बृजलाल वर्मन द्वारा पूछे गये प्रश्न संख्या ५ में कि "आत्म हत्या करने वालों की उम्र क्या थी, सभापति ने उत्तर दिया यदि सरकार इसकी सूचना दे सकती होती, तो दे देती, अगर नहीं दे सकती है तो जिसका उत्तर मिला है उसी से संतोष करना पड़ेगा।[१]

इसके अतिरिक्त सरकार यदि यह अनुभव करती है कि उत्तर देना जनहित में नहीं है, तो वह किसी भी प्रश्न का उत्तर देने से अस्वीकार कर सकती है। उदाहरणार्थ २४ दिसम्बर १९५६ को श्री कुंवर गुरुनारायण द्वारा पूछे गये प्रश्न संख्या ३९ कि "क्या सरकार बतायेगी कि १ जनवरी, १९५६ से १५ नवम्बर १९५६ तक कितने पाकिस्तानी नागरिक उत्तर प्रदेश में अपने परमिटों की अवधि से अधिक ठहरे ?" इस प्रश्न के उत्तर में मंत्री श्री जुगलकिशोर ने कहा -

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड ४१, पृ०१२ सितम्बर १९५५, प्रश्न सं.५

'वांछित सूचना देना जनहित में नहीं होगा'[1]। प्रश्नसंख्या ४१ और ४२ के सम्बन्ध में भी मंत्री ने दोनों प्रश्नों का उत्तर देने से उपर्युक्त आधार पर ही अस्वीकार किया था।

कुछ प्रश्नों में जिनमें सूचना मांगी गयी थी सरकार ने सूचना एकत्र करने से अस्वीकार किया है। उदाहरणार्थ ३० अगस्त १९५४ को प्रश्न संख्या १७ से २५ के उत्तर में तत्कालीन वित्तमंत्री श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम ने कहा -- मांगी हुई सूचना के इकट्ठा करने में जो मेहनत और खर्च होगा वह उससे हासिल होने वाले नफे से बहुत ज्यादा होगा। इसलिए अफसोस है सूचना नहीं दी जा सकती। २० नवम्बर १९५८ को पूछे गए प्रश्न के संदर्भ में भी सरकार ने उपर्युक्त आधार पर ही सूचना एकत्र करने से अस्वीकार किया था।[2]

ऐसे प्रश्न भी जो सरकार पर आक्षेप करते थे सदन में उन्हें पूछने की अनुमति नहीं दी गई।[3]

विधान परिषद् में प्रशासन के सम्बन्ध में भी प्रश्न पूछे गये हैं, यद्यपि उनमें से कुछ प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर सरकार की ओर से नहीं दिया गया है। उदाहरणार्थ १ मार्च १९५६ को पन्नालाल गुप्त ने प्रश्न किया था कि " क्या यह सत्य है कि २९ सितम्बर १९५५ को नगरपालिका बिन्दकी की कुछ अनियमितताओं के सम्बन्ध में एस०डी०एम०, खजुहा, द्वारा कोई जांच की गई थी और उसके फलस्वरूप सरकार ने क्या कार्यवाही की ? इस प्रश्न के उत्तर में तत्कालीन न्यायमंत्री सैयद अली जहीर ने स्वीकारात्मक उत्तर देते हुए कहा कि सरकार इस सम्बन्ध में विचार कर रही है।[4]

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० खंड, ५१, पृ० २१८

२. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड ६१, पृ० २४०

३. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खंड ४१, पृ० ४

४. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड ४५, पृ० ४१६, प्रश्न सं० ६

प्रशासन द्वारा बरती गयी अनियमितताओं की जांच के लिए भी सरकार से प्रश्न पूछे गये हैं। सरकार द्वारा अस्पष्ट अथवा असामान्य रूप से उत्तर दिये जाने पर सदस्य ने पुन: पूरक प्रश्न पूछा है। उदाहरणार्थ २५ जुलाई १९५७ को रामकिशोर रस्तोगी, विधान परिषद् सदस्य द्वारा पूछा गया प्रश्न लखनऊ म्युनिसिपल बोर्ड में कर्मचारियों की नियुक्ति से सम्बन्धित था। कन्हैयालाल गुप्त, विधान परिषद् सदस्य ने पूरक प्रश्न पूछते हुए कहा "क्या माननीय मंत्री जी के उत्तर से मैं यह समझूं कि इन सब नियुक्तियों के सम्बन्ध में जांच करेंगे ? सरकार द्वारा इस प्रश्न का सामान्य उत्तर दिये जाने के कारण कन्हैयालाल गुप्त ने पुन: कहा -- मेरा जो प्रश्न था, वह लखनऊ म्युनिसिपल बोर्ड में जो नियुक्तियां की गई हैं, उनकी जांच के बारे में था, लेकिन मंत्री जी ने एक सामान्यबात कही है। मैं जानना चाहता हूं कि सरकार इस सम्बन्ध में क्या करना चाहती है ?"[१] इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सरकार की ओर से विचित्र नारायण शर्मा ने कहा -- "जांच करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। जो अधिकार उन्हें मिले थे, यदि उन्होंने गलत तरीके से इस्तेमाल किये हैं, हम उनका सेंसर तो नहीं कर सकते हैं, लेकिन भविष्य में जब कभी इस तरह की नियुक्तियां होंगी, तो उसके लिये हमारे आदेश उनके पास पहुंच जायेंगे और इसके लिए हम सावधान रहेंगे।"[२]

उपर्युक्त प्रश्नोत्तर से यह प्रमाणित है कि परिषद् सदस्यों ने प्रश्न के द्वारा प्रशासनिक त्रुटियों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित कराया है तथा भविष्य में इस प्रकार की त्रुटि से बचने के लिए सरकारी आदेश तथा सरकार द्वारा सावधानी बरते जाने का आश्वासन प्राप्त किया है।

सरकार द्वारा व्यय की रकम की जानकारी के प्रयोजन से भी प्रश्न

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५३, पृ० १२१-१२२, प्रश्न सं० २२

२. वही।

पूछे गये हैं । उदाहरणार्थ १२ सितम्बर १९५५ को बलभद्रप्रसाद बाजपेयी, विधान परिषद् सदस्य ने यह प्रश्न किया था कि १९५३ -१९५४ और १९५५ में छपवायी गई डायरियों पर प्रत्येक वर्ष कितना खर्च पड़ा था ।[1] इसी प्रकार २९ अगस्त १९५७ को प्रतापचन्द्र आजाद द्वारा पूछा गया प्रश्न १९५६-५७ के वर्ष में स्थायी समितियों की बैठकों के ऊपर खर्च की रकम की जानकारी से सम्बन्धित था ।[2] सरकार ने उपर्युक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर खर्च की राशि में दिया था ।[3]

विधान परिषद् में वर्ग विशेष के हितों से सम्बन्धित प्रश्न भी पूछा गया है । उदाहरणाके लिए २६ अगस्त १९५३ को प्रतापचन्द्र आजाद, विधान परिषद् सदस्य द्वारा पूछा गया प्रश्न कृषक वर्ग के हित से सम्बन्धित था । उनका प्रश्न था "क्या सरकार यह बतलाने की कृपा करेगी कि एच०आर० शूगर फैक्टरी, बरेली और कैसर शूगर वर्क्स बहेड़ी (बरेली) पर कितना रूपया किसानों का अब तक (फरवरी १९५३ तक) वाजिब है ।"[4] सरकार द्वारा इस प्रश्न का उत्तर दिये जाने के पश्चात् उन्होंने पुन: पूरक प्रश्न पूछा — " क्या मंत्री जी ने आदेश दिया है कि यह रूपया उस समय तक अदा हो जाय ।"[5]

इसी प्रकार अध्यापक वर्ग के हित से सम्बन्धित प्रश्न भी पूछा गया है । उदाहरणार्थ ३१ मार्च १९५४ के रामकिशोर रस्तोगी द्वारा पूछा गया प्रश्न इस प्रकार था " क्या यह ठीक है कि सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में जब दस वर्ष से अधिक सेवाओं के लिए दो अतिरिक्त वृद्धियाँ दी गई, किन्तु सबसे पुराने

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० ४१ , पृ० २,प्रश्नसं० १

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५३, पृ० ६२८

३. स्थायी समितियों की बैठकों पर कुल व्यय ६,८८३ ' ९४ हुआ था — उ०प्र०वि०, परि०की कार्यवाही ,खं० ४१ , डायरियों की छपवाई में १९५३ में ६,८५५रू० ३ आने, १९५४ में ११०[illegible] तथा १९५४ में १७,६९४ रू० खर्च हुए थे — उ०प्र०वि०प०कार्य०,खं० ५३

४. उ०प्र०परि०की कार्य०खंड ३२,२६ अगस्त,१९५३,प्रश्न सं०३३

५. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०खं० ३५,पृ० १३६,प्रश्नसं० १

अध्यापकों को जो अपने उच्चतम पर पहुँच गये थे, उपर्युक्त अतिरिक्त वृद्धियों से वंचित रखा गया था ।"[१]

विधान परिषद् की कार्यवाही के अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि कृषक वर्ग तथा कृषि से सम्बन्धित अधिकांश प्रश्न विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों द्वारा पूछे गये हैं तथा शिक्षक तथा शिक्षण संस्थाओं के हितों से सम्बन्धित अधिकांश प्रश्न विधान परिषद् के शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों द्वारा पूछे गये हैं ।

वस्तुत: किसी भी प्रश्न का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य सरकार या किसी मंत्री से जनहित सम्बन्धी उन विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना होता है जिनके लिए प्राथमिक जिम्मेदारी राज्यसरकार की होती है । इसके अतिरिक्त एक दूसरा आशय जिसके लिए प्रश्न पूछे जाते हैं वह यह है कि सरकार का ध्यान किसी सार्वजनिक रूप की शिकायत की ओर आकर्षित कराया जाय । अत: यदि प्रश्न पूछने के उपर्युक्त दोनों उद्देश्य हैं, तो निश्चित रूप से विधान परिषद्ने भी प्रश्न का प्रयोग इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया है तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त किया है ।

विरोधी दल के सदस्यों ने प्रश्न पूछने के अधिकार का प्रयोग सरकार की त्रुटियों को दिखाने के लिए किया है तथा सरकार ने सदस्यों की शिकायत को दूर करने तथा सरकार की स्थिति स्पष्ट करने का प्रयास किया है । यद्यपि प्रश्न के घंटे में विधान परिषद् के प्रतिपक्षी सदस्यों ने अधिकांश प्रश्न पूछा है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रश्नों का समय केवल विरोधी सदस्यों का होता है । १० सितम्बर १९५६ को , प्रश्नोत्तर के उपरान्त डा० ए०जे० फरीदी ने सभापति से कहा, ... यह एक घंटे का समय जो हमें प्रश्न के लिए मिलता है वह प्रतिपक्ष का समय होता है, वह कल हमको नहीं मिल सका ।"[१] इस पर

१, उ०प्र०वि०परि० की कार्य०,खंड ६८,१० सितम्बर १९५६,पृ० ६०५

सभापति ने अपना निर्णय देते हुए कहा -" यह आप गलत कह रहे हैं प्रश्नों का समय केवल प्रतिपक्षियों का नहीं होता है वह तो पूरे सदन का समय होता है।"[१]

आधे घंटे की बहस :- कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई सदस्य उचित रूप से यह महसूस करता है कि किसी प्रश्न का दिया गया उत्तर या तो अपर्याप्त है या असंतोषजनक है और विषय इतने सार्वजनिक महत्व का है कि उस पर अधिक विचार होना चाहिए। स्वतंत्रता से पूर्व किसी प्रश्न के असंतोषजनक उत्तर मिलने के कारण 'काम रोको' प्रस्ताव के प्रस्तावित करने की प्रथा चली थी, किन्तु नये संविधान के लागू होने के पश्चात् लोकसभा के अध्यक्ष मावलंकर ने सदन में किसी प्रश्न से सम्बन्धित पर्याप्त सार्वजनिक महत्व के विषय पर दिन की बैठक के उपरान्त आध घंटा बहस के लिए समय नियत करने की प्रथा चालू की। उ०प्र० विधान परिषद् ने भी इस प्रथा को अपनाया है।[२] तीन दिन की पूर्व सूचना देकर भी प्रश्न के असंतोषजनक उत्तर के लिए सभापति की अनुमति से आधे घंटे की बहस की जा सकती है।

मई १९५२ से जुलाई १९५७ के बीच विधान परिषद् में सिर्फ एक बार प्रश्न के असंतोषजनक उत्तर पर आधे घंटे की बहस हुई थी।[३] किन्तु १९५७ के द्वितीय सत्र से लेकर १९६२ तक लगभग एक दर्जन प्रश्नों के असंतोषजनक उत्तर पर आधे घंटे की बहस हुई है। २५ जुलाई (1958) को पन्नालाल गुप्त द्वारा पूछे गए प्रश्न पर जो वन विभाग के रेंजरों, असिस्टेंट कंजरवेटरों तथा डिप्टी कंजरवेटरों की नियुक्ति से सम्बन्धित था ३० जुलाई १९५७ को आधे घण्टे की

---

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्यवाही, खंड ६८, १० सित०, १९५९ ई०, पृ० ६०६
२. परिषद् की कार्यसंचालन प्रक्रिया नियमावली- नियम १३५
३. उ०प्र०वि० परिषद् की कार्यवाही, खण्ड ४२, २६ सितम्बर १९५६, पृ०१२४-२८

बहस हुई ।[१] इसीप्रकार ११ सितम्बर को प्रतापचन्द्र आजाद द्वारा लखनऊ मैडिकल कालेज में एक छात्र की मृत्यु हो जाने के सम्बन्ध में पूछे गए प्रश्न पर १७ सितम्बर १९५७ को आधे घंटे की बहस हुई ।[२]

१९५८ और १९५९ के बीच विधान परिषद् की नियमावली के नियम १३५ के अन्तर्गत निम्नलिखित पांच महत्वपूर्ण प्रश्नों पर आधे घंटे की बहस हुई है :–

(क) १६ सितम्बर १९५८ को सरकार द्वारा प्रदेश में उद्योग चलाने के लिए दिये गये ऋण के सम्बन्ध में[३], (ख) २६ सितम्बर १९५८ को तहसील चकिया के शाहगंज क्षेत्र में लेवा इंडिया रोड के बनने के सम्बन्ध में रामानन्द सिंह (विधान परिषद् सदस्य द्वारा पूछे गये प्रश्न पर,[४] (ग) डा॰ ए॰ जे॰ फरीदी) के अल्प सूचित प्रश्न संख्या ३ के सम्बन्ध में,[४अ] (घ) महानगर, लखनऊ में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट द्वारा बनाये गये अधिक कीमत के मकानों के बटवारे के सम्बन्ध में,[५] तथा (५) प्रयाग विश्वविद्यालय के शिक्षक को शोध भत्ता के सम्बन्ध में ।[६]

उपर्युक्त सभी मामलों में सूचना देने वाले सदस्यों ने एक संक्षिप्त विवरण दिया है तथा सम्बन्धित मंत्री ने संक्षेप में उसका उत्तर दिया है । इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न जिनके उत्तर असंतोषजनक थे, आधे घंटे की बहस के बदले में मंत्रियों ने उनपर अपना वक्तव्य दिया है जिनमें से महत्वपूर्ण उदाहरण निम्नांकित हैं :–

(१) तेलूराम, विधान परिषद् सदस्य द्वारा पंचायत कार्यालय, वाराणासी के सम्बन्ध में ३ दिसम्बर १९५८ को पूछे गये प्रश्न संख्या १७ के अन्तर्गत अनुपूरक प्रश्नों के बारे में मंत्री के वक्तव्य ,[७]

---

१. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्यवाही, खंड ५३,२० जुलाई, १९५७, पृ॰ ४५६-४५६
२. वही, खंड ५४, १७ सितम्बर ५७, पृ० ३६०-३६४
३. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही, खं० ६०, पृ०६८-६९
४. वही, पृ० ५६७-५७२
४अ. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य० खं० ६२, पृ० १६६३-१६७१
५. वही, खंड ६७, पृ० ३९०-३९५
६. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, खं० ६८, पृ० ६५२-६५९
७ उ॰ प्र॰ वि॰ परि॰ खं॰ ६२, पृ॰ १४१६-१४१८

(२) नवलकिशोर गुरुदेव द्वारा ५ दिसम्बर १६५८ को पूछे गये तारांकित प्रश्न संख्या ६१-६४ तथा उन पर पूछे गये पूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में,[१]

(३) शिवराजवती नेहरू द्वारा पूछे गए तारांकित प्रश्न संख्या २१-२३ के दिनांक १७ सितम्बर १६५६ को दिए गए उत्तरों से सम्बन्धित अनुपूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में ।[२]

(४) शफीक अहमद खां तातारी द्वारा २० फरवरी १६५६ को पूछे गये तारांकित प्रश्न संख्या ११-१२ तथा उनके पूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में,[३]

(५) कुंवर रणंजय सिंह द्वारा १२ मार्च,१६५६ को पूछे गए तारांकित प्रश्न संख्या ७१ तथा उनके पूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में,[४]

(६) कन्हैयालाल गुप्त द्वारा दिनांक ७ अगस्त १६५६ को पूछे गये प्रश्न संख्या १३-१५ और उनके अनुपूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में,

(७) नवलकिशोर गुरुदेव द्वारा ११ फरवरी १६६० को पूछे गये तारांकित प्रश्न संख्या १०-११ से संबंधित डा० ईश्वरीप्रसाद ~~मस्त~~ के अनुपूरक प्रश्न के सम्बन्ध में,

(८) अब्दुर रऊफ द्वारा २२ दिसम्बर, १६५६ को पूछे गए तारांकित प्रश्न संख्या ५२ से सम्बन्धित अनुपूरक प्रश्न के सम्बन्ध में ।[५]

(६) शफीक अहमद खां तातारी द्वारा २० सितम्बर,१६६० की बैठक में पूछे गए तारांकि प्रश्न संख्या ८-१० से सम्बन्धित पूरक प्रश्न के सम्बन्ध में ।

(१०) १३ मार्च १६६१ की बैठक में तारांकित प्रश्न संख्या३-४ से सम्बन्धित पूरक

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० खं० ६३, पृ० २८८-८६
२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ६४, पृ० ५६७
३. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, खं० ६६, पृ०२२२-२४
४. वही, पृ० २२४
५. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खंड ७१, पृ० ४६४

प्रश्नों के सम्बन्ध में,[१]

(११) २४ फरवरी १९६१ को प्रेमचन्द्र शर्मा के तारांकित प्रश्न संख्या १-३ से सम्बन्धित पूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में,

(१२) देवेन्द्रस्वरूप द्वारा २४ अप्रैल १९६१ की बैठक में पूछे गये तारांकित प्रश्न संख्या ३२-३३ से सम्बन्धित पूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में,[२]

(१३) १२ मई १९६१ को पूछे गये तारांकित प्रश्न, प्रश्न संख्या ३-४ के अन्तर्गत पूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में ,

(१४) २१ अगस्त १९६१ की प्रश्नसंख्या २१-२२ के पूरक प्रश्नों के सम्बन्ध में,

(१५) २२ अगस्त १९६१ की बैठक में रामानन्द सिंह द्वारा पूछे गये प्रश्न संख्या २२ के उत्तर के सम्बन्ध में,

(१६) २० नवम्बर १९६१ की बैठक में तेलूराम द्वारा पूछे गये तारांकित प्रश्न संख्या २१ के बारे में जो नन्दकिशोर बाजोरिया मिल, सहारनपुर द्वारा कागज बनाने के लिए सस्ते दर पर सरकार से प्राप्त चीड़ की लकड़ी को खुले बाजार में बेचे जाने के सम्बन्ध में था ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश सरकारी वक्तव्य पूरक प्रश्नों के असंतोषजनक उत्तर पर दिये गए हैं । वस्तुत: अधिकांश प्रश्न जिनके सम्बन्ध में मंत्रियों ने वक्तव्य दिया है, प्रतिपक्षी सदस्यों के प्रश्न थे किन्तु दो-एक ऐसे भी उदाहरण हैं जो सत्तारूढ़ दल के सदस्यों के प्रश्नों के असंतोषजनक उत्तर से सम्बन्धित थे । उदाहरणार्थ २४ फरवरी १९६१ की बैठक में कांग्रेस सदस्य प्रेमचन्द्र शर्मा के तारांकित प्रश्न संख्या १ से ३ तक सम्बन्धित पूरक प्रश्नों के असंतोषजनक उत्तर पर सरकारी वक्तव्य दिया गया । निष्कर्ष यह कि सरकार ने विधान परिषद् में पूछे गये महत्वपूर्ण प्रश्नों की उपेक्षा नहीं की है, वरन् आधे घंटे की बहस अथवा सरकारी वक्तव्य द्वारा प्रश्न-

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० खं० ७७, पृ० २७९-२८०

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ७८, पृ० ११७

कर्ता को संतुष्ट करने का प्रयास किया है ।

कार्य स्थगन प्रस्ताव :--

नियमत: कामरोको प्रस्ताव में सरकार की किसी निश्चित भूल-चूक या किसी ऐसी स्थिति का निर्देशन होता है जिसके लिए प्रस्तावक सरकार को जिम्मेदार ठहराता है । इसलिए सदन के सामने कार्य को स्थगित करने का प्रस्ताव, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है, बहुधा निन्दात्मक ही होता है, चाहे उसमें सरकार की थोड़ी निन्दा हो या अधिक । कोई ऐसा प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव है या नहीं, यह बहुत कुछ सरकार के रुख पर निर्भर करता है । यदि सरकार इससे सहमत है कि मामला बहुत जरूरी और सार्वजनिक महत्व का है तथा उस पर सदन में विचार होना आवश्यक है, तो वह निन्दा प्रस्ताव नहीं होता ।

विधान परिषद् में सूचना दी गई कार्य स्थगन प्रस्ताव और उसके परिणाम इस प्रकार हैं :--

वर्ष	सूचित किए गए कार्य स्थगन प्रस्ताव	निलम्बित अथवा प्रस्तावक द्वारा वापस लिया गया कार्यस्थगन प्रस्ताव	अस्वीकृत
१९५२[१]	---	---	--
१९५३	-६-	१	५
१९५४	३	--	३
१९५५	४	--	४
१९५६	४	--	४
१९५७	१६	२ निलम्बित	१४
१९५८	३५	१ (वापस)	३४

---

१. ५ मई १९५२ से ३१ दिसम्बर १९५२ तक एक भी कार्यस्थगन की सूचना नहीं दी गई थी ।

वर्ष	सूचना दी गई कार्य स्थगन प्रस्ताव	निलम्बित अथवा प्रस्तावक द्वारा वापस लिया गया कार्य स्थगन प्रस्ताव	अस्वीकृत
१९५९	३१	१ (निलम्बित)	३०
१९६०	१८		१८
१९६१[१]	४१	२	३९
१९६२	२०	-	२०

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि १९५६ तक विधान परिषद् में कार्यस्थगन प्रस्ताव की प्रथा विशेष प्रचलित नहीं थी, किन्तु १९५७ में १९५५ और १९५६ की अपेक्षा चौगुनी संख्या में कार्य स्थगन प्रस्तावों की सूचना दी गई तथा १९५८ में १९५७ की दुगुनी । सर्वाधिक कार्यस्थगन प्रस्तावों की सूचना १९६१ में दी गई थी ।

१९५७ के पूर्व विधान परिषद् में सबल विरोधी दल के अभाव में प्रतिपक्ष द्वारा कार्य स्थगन प्रस्ताव का प्रयोग विशेष रूप से नहीं हुआ है, किन्तु १९५८ के द्विवर्षीय चुनाव के बाद विरोधी दल की स्थिति पूर्व की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ होने से प्रतिपक्षी सदस्यों ने सरकार की आलोचना के उद्देश्य से कार्यस्थगन प्रस्तावों की सूचना अधिक संख्या में दी है । सबसे अधिक कार्य स्थगन प्रस्ताव की सूचना समाजवादी दल की ओर से दी गई है । दूसरा स्थान प्रतिपक्ष के निर्दलीय सदस्यों का है ।

व्यक्तिगत रूप से सर्वाधिक कार्यस्थगन प्रस्तावों के प्रस्तावक शफीक अहमद खाँ तातारी हैं जिन्होंने १९५८ में ७ तथा १९५८ और १९६१ में प्रत्येक वर्ष ६ कार्यस्थगन प्रस्तावों की सूचना दी थी । निर्दलीय सदस्यों में मुख्य रूप

---

१. माधवप्रसाद त्रिपाठी द्वारा सूचित कार्य स्थगन प्रस्ताव को प्रस्तावक की अनुपस्थिति में समाप्त कर दिया गया ।

से कुंवर गुरुनारायण, हृदयनारायण सिंह और ब्रजेन्द्र स्वरूप द्वारा कार्य-स्थगन प्रस्तावों की सूचना दी गई थी । अन्य दल के सदस्यों में जनसंघ के पीताम्बरदास तथा साम्यवादीदल के जयबहादुर सिंह ने कार्य स्थगन प्रस्तावों की सूचना दी है ।

विधान सभा की तुलना में विधान परिषद् में सूचना दी गई कार्य स्थगन प्रस्तावों की संख्या कम है । विधान सभा में ५ वर्षों में १९५२ से १९५७ के बीच , ३५६ कार्य स्थगन प्रस्तावों की सूचना दी गई, जबकि विधान परिषद् में १० वर्ष में (१९५२ से १९६२ के बीच) केवल १७८ कार्यस्थगन प्रस्तावों की सूचना दी गई, किन्तु विधान सभा में भी उपर्युक्त कार्य स्थगन प्रस्ताव विधान परिषद् की तरह एक भी स्वीकृत नहीं हुआ है ।

यद्यपि विधान परिषद् में एक भी कार्यस्थगन प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ था, किन्तु कुछ कार्यस्थगन प्रस्तावों से सम्बन्धित विषयों पर सरकार की ओर से वक्तव्य दिया गया है । उदाहरणार्थ २९ अप्रैल १९५७ को गोरखपुर के दो तेल इंजनों की खराबी के कारण जिला बस्ती में ट्यूब वेल्स न चलने से ईख की खेती को नुकसान पहुंचने से सम्बन्धित कार्य स्थगन प्रस्ताव को अनावश्यक ठहराया गया था ।[१] परन्तु दूसरे ही दिन मंत्री ने इस सम्बन्ध में एक वक्तव्य दिया है ।[२] इसी प्रकार सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित उर्दू पत्रिका "नया दौड़" की माह जुलाई, १९५७ की प्रति हादी हली खां"बेखुद" के एक शेर से समाज के एक वर्ग विशेष की भावना को ठेस पहुंचने की आशंका के सम्बन्ध में कार्यस्थगन प्रस्ताव को निलम्बित किया गया था, परन्तु इस पर सरकार की ओर से वक्तव्य दिया गया ।[३] प्रदेश में फ्लू से उत्पन्न परिस्थिति के सम्बन्ध में कुंवर गुरुनारायण के कार्य स्थगन

---

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०, ५२, पृ० २२४-२२५

२. वही, पृ० ३२२-३२३

३. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०, खंड ५३, पृ० ५७०

प्रस्ताव को भी वाद-विवाद के लिए निलम्बित किया गया था ।[१] ~~जिलों में~~ हृदयनारायण सिंह का कार्य स्थगन प्रस्ताव जो राज्य के पश्चिमी जिलों में भीषण वर्षा तथा अपर्याप्त सरकारी सहायता के सम्बन्ध में था, अनुमति नहीं दी गई थी,[२] परन्तु दूसरे दिन उपर्युक्त स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए सरकारी वक्तव्य दिया गया ।[३] इसी प्रकार २ अगस्त १९५८ को पुलिस द्वारा विद्यार्थियों पर गोली वर्षा के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थिति के सम्बन्ध में कार्यस्थगन प्रस्ताव प्रस्तावक डा० ए०जे० फरीदी द्वारा वापस लिया गया था,[४] किन्तु सरकार ने उस पर दूसरे दिन बहस के लिए स्वीकृति दी थी,[४] डा० ए०जे० फरीदी के इस प्रस्ताव पर तीन घंटे तक बहस हुई थी । प्रस्तावक डा० ए०जे० फरीदी ने उपर्युक्त घटना का कारण सरकार की गलत योजना और गलत नीति बताया ।[५] बहस में जयबहादुर सिंह,[६] अब्दुर रऊफ[७] तथा महाराज सिंह[८] भारती (सभी विधान परिषद् सदस्य) ने सरकार की आलोचना की । हरिकृष्ण अवस्थी[९] ने उपर्युक्त घटना के लिए सभी राजनीतिक दलों को दोषी बताया । प्रतापचन्द्र आजाद[१०] और कुदसिया बेगम[११] ने विरोधी दल के सदस्यों की आलोचना का खंडन किया तथा सरकार की नीति का समर्थन । अन्त में सरकार की ओर से तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री हुकुम सिंह विसेन ने सरकार की स्थिति का

---

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्य० खं० ५३, पृ० ५९९-६००
२. उ०प्र०वि०परि० की कार्य०,खंड ५४, पृ० ३८४-३८५
३. वही, पृ० ४२२-४२५
४. उ०प्र०वि०परि० की कार्य० खं० ५८, पृ० ७००
५. वही, पृ० ७००
६. वही, पृ० ७०८
७. वही, पृ० ७११-७१२
८. वही, पृ० ७२०-७२२
९. वही, पृ० ७१८
१०. वही, पृ० ७०९
११. वही, पृ० ७१३-७१६

स्पष्टीकरण किया ।[१]

निष्कर्ष : — जिन कारणों से विधान परिषद् और मंत्रिमंडल के पारस्परिक सम्बन्ध प्रगाढ़ हुए हैं, वे हैं विधान परिषद् के सदस्यों को मंत्रि-मण्डल में सम्मिलित किया जाना तथा मंत्रियों द्वारा विधान परिषद् की बैठक में नियमित रूप से भाग लिया जाना । इसके अतिरिक्त मंत्रिमण्डल के वरिष्ठ सदस्य को विधान परिषद् के सदन नेता के रूप में नियुक्त करने की प्रथा से भी मंत्रिमण्डल और विधान परिषद् सन्निकट हुए हैं । यह सन्निकटता और भी बढ़ी होती यदि विधान परिषद् के सदस्य जो मंत्री हैं, सदन नेता के रूप में नियुक्त किये जाते ।

जिन कारणों से मंत्रिमण्डल विधान परिषद् से प्रभावित हुआ है, वे हैं विधान परिषद् के सदस्यों की उच्च योग्यताएं, उनके उच्चस्तरीय वाद-विवाद, तथा विधेयकों के सम्बन्ध में उनके महत्त्वपूर्ण सुझाव । विधान परिषद् सदस्यों द्वारा पूछे गए महत्त्वपूर्ण प्रश्न तथा उनकी आलोचना वास्त-विकता पर आधारित होने के परिणामस्वरूप भी मंत्रिमण्डल विधान परिषद् से प्रभावित हुआ है । प्रश्नों के असंतोषजनक उत्तर पर आधे घंटे की बहस हुई है तथा अनेक अस्वीकृत कार्य स्थगन प्रस्तावों से सम्बन्धित विषयों पर सरकारी वक्तव्य दिये गए हैं ।

अध्याय – ८

राजनीतिक दल और दबाव-गुट

आधुनिक संसदीय शासन प्रणाली राजनीतिक दल पर आधारित है। फलत: दल के बिना शासन को चलाना असंभव सा मालूम पड़ता है। विशेषत: वह सदन जिससे सरकार का गठन होता है, अनुभव यह बताता है कि दल आवश्यक है, परन्तु प्रश्न यह है कि क्या द्वितीय सदन के लिए भी दल आवश्यक है। यदि द्वितीय सदन को वाद-विवाद समिति से कुछ भी अधिक बनाना है, तो ऐसी स्थिति में द्वितीय सदन में भी दल के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता।[१] सामान्यतया द्वितीय सदन एक दलीय बहुमत या बहुदलीय मंत्रिमण्डल द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव, संकल्प तथा विधेयक पर विचार करता है। अत: जब यह दलीय सरकार द्वारा प्रस्तावित संकल्प या विधेयक पर विचार के लिए आमंत्रित किया जाता है तो वैसी स्थिति में यह संभव नहीं है कि द्वितीय सदन दलीय राजनीति की उपेक्षा कर सके।

वस्तुत: द्वितीय सदन भी विधान मण्डल का एक अंग है, अत: सदन भी राजनीतिक दल के प्रभावसे बचा नहीं रह सकता। के०सी० ह्वीयर का विचार भी इसी प्रकार का है।[२] जहां तक भारत के संघीय इकाई में द्वितीय सदन का प्रश्न है, संविधान के अन्तर्गत इसकी संगठन प्रणाली ही इस प्रकार की है कि वह दलीय प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता।

यद्यपि विधान परिषद् को दलीय व्यवस्था से अलग नहीं रखा जा सकता, फिर भी यह संभव है कि विधान परिषद् किसी विषय पर

---

१. ह्वीयर, के०सी०, लेजिस्लेचर, आक्सफोर्ड (१९६५), पृ० १९६-२००
२. वही।

स्वतंत्रता पूर्वक विचार विनिमय कर सके । उ०प्र० विधान परिषद् के कुछ निर्दलीय सदस्यों की राय थी कि इसे दलीय लक्षण से मुक्त होना चाहिए । उन लोगों का यह विचार था कि राजनीतिक दल के लोग विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित नहीं हों । इस प्रकार के विचार रखने वाले लोगों में विधान परिषद् के निर्दलीय सदस्य डा० ईश्वरीप्रसाद, कुंवर गुरुनारायण आदि हैं । श्री कुंवर गुरु नारायण के अनुसार "उच्च सदन की उपयोगिता बढ़ जायेगी अगर इसमें राजनीतिक दलों के लोगों को लाने का प्रयत्न न हो[1]।" इस प्रकार के तर्क के पीछे उनका दृष्टिकोण यह था कि दल से मुक्त सदस्य किसी भी विषय पर स्वतंत्रता पूर्वक विचार कर सकेंगे । श्री जगन्नाथ आचार्य, विधान परिषद् सदस्य, के अनुसार "..... निम्न सदन में जो लोग बैठते हैं वे अपने दल का चश्मा लगाकर बैठते हैं और अपने ही दल के चश्मों से सबको देखते हैं । वे लोग एक खास सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं और उसी सिद्धान्त पर विश्वास करते हुए आंख बन्द करके हर कार्य का समर्थन करते हैं,..... जो व्यक्ति स्वतंत्र विचार के होते हैं वे उस कार्य को समझकर कर सकते हैं और जो उचित बात होती है उसको करते हैं ।"[2]

यद्यपि यह तथ्य है कि निर्दलीय सदस्य स्वतंत्रता पूर्वक विचार कर सकते हैं, परन्तु विधान परिषद् के संगठन की वर्तमान प्रणाली से यह संभव नहीं कि इसके सभी सदस्य निर्दलीय एवं निष्पक्ष हों । लगभग एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन विधान सभा के सदस्यों द्वारा होता है । विधान सभा के सदस्य प्राय: किसी न किसी दल से सम्बन्धित होते हैं । अत: यह स्वाभाविक है कि विधान सभा के सदस्य विधान परिषद् के विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र में अपने दल से सम्बद्ध उम्मीदवारों को मत दें । परिणामत: इस निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य प्राय: किसी न किसी दल से सम्बद्ध रहते हैं ।

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५१, २८ दिसम्बर १९५६, पृ० ४६७
२. वही, पृ० ४६८

स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बात कही जा सकती है । लगभग एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र द्वारा होता है । १९५२ से १९६२ के बीच स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर कांग्रेस का प्रभाव था । परिणाम-स्वरूप इस निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों में कुछ अपवादों को छोड़ कर शेष कांग्रेस दल के थे ।

दूसरी ओर विधान परिषद् के कुछ सदस्यों[1] का मनोनयन होता है । मनोनयन राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री के परामर्श से किया जाता है । व्यवहार में अधिकांश सत्तारूढ़ दल के सदस्य ही मनोनीत हुए हैं ।

निष्कर्ष यह कि विधान परिषद् में राजनीतिक दलों के सदस्य निर्वाचित होते हैं अत: विधान परिषद् दल की उपेक्षा नहीं कर सकती, फिर भी यह संभव है कि विधान परिषद् के सदस्य दलीय भावना से ऊपर उठकर स्वतंत्रता पूर्वक विचार विनिमय कर सकें । विधान परिषद् के कांग्रेस सदस्य कुंवर महावीर सिंह का विचार है कि "अगर ज्यादातर लोगों की यहां पर विचारधारा स्वतंत्र रहे और दलीय अनुशासन उनके ऊपर न हो तो उच्च सदन का जो रोल होना चाहिए उसमें यह सदैव बहुत सफल हो सकता है ।"[2]

विधान परिषद् में दल का विकास तथा उसका गठन :-

अखिल भारतीय स्तर पर मान्यता प्राप्त दलों में मुख्य रूप से कांग्रेस, समाजवादी दल और जन संघ के सदस्य विधान परिषद् में थे । विधान परिषद् में कांग्रेस दल सदा बहुमत में रहा । समाजवादी दल और जनसंघ दल

---

१. निर्वाचित स्थानों के अतिरिक्त शेष स्थानों पर राज्यपाल द्वारा नामजद किया जाता है ।

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०खं० ५१, पृ० ४६७

के सदस्यों की संख्या बहुत कम थी । मई १९५८ से मई १९६० के बीच की अवधि को छोड़कर समाजवादी दल के सदस्यों की संख्या २ से ६ के बीच थी, किन्तु मई १९५६ के पूर्व जनसंघ का एक भी सदस्य विधान परिषद् में नहीं था ।

१९५२ में नवीन विधान परिषद् के गठन के बाद कांग्रेस दल के सदस्यों की संख्या ५५ थी । कांग्रेस के बाद दूसरा स्थान निर्दलीय सदस्यों का था । इनकी संख्या १४ थी । शेष तीन सदस्य संयुक्त समाजवादी दल के थे । इस समय कोई मान्य विरोधी दल नहीं था, यद्यपि श्री कुंवर गुरुनारायण, निर्दलीय सदस्य विरोधी दल के नेता के रूप में कार्य करते रहे ।

१९५४ के द्विवर्षीय चुनाव के बाद कांग्रेस सदस्यों की संख्या ५६ हो गयी थी । संयुक्त समाजवादी दल के केवल दो सदस्य थे । निर्दलीय सदस्यों की संख्या पूर्ववत् १४ थी ।

निर्दलीय सदस्यों में सात सदस्यों ने सदन के भीतर एक अलग गुट कायम कर लिया जिसका नाम प्रगतिशील संसदीय दल रखा गया । इस गुट के सात सदस्यों में तीन सदस्य शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र के थे, एक सदस्य नामजद था तथा शेष तीन सदस्य अन्य तीन निर्वाचन क्षेत्रों से[1] थे । ३०, सितम्बर १९५४ को सभापति ने इस गुट को जिसके नेता कुंवर गुरुनारायण थे, विरोधी गुट के रूप में मान्यता दी थी ।[2]

१९५६ के द्विवर्षीय चुनाव के बाद विधान परिषद् में कांग्रेसदल के ५५ सदस्य थे । समाजवादी दल, प्रगतिशील संसदीय गुट तथा निर्दलीय सदस्यों की स्थिति पूर्ववत बनी रही । १९५६ में प्रथमबार जनसंघ दल का एक सदस्य भी निर्वाचित हुआ था ।

---

१. विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र, स्थानीय संस्था निर्वाचन क्षेत्र तथा स्नातक निर्वाचन क्षेत्र, प्रत्येक से एक सदस्य संयुक्त प्रगतिशील गुट में था ।

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० सं० ३५, ३० सितम्बर १९५४, पृ० ७३७-३८

१९५८ के द्विवर्षीय चुनाव के बाद विधान परिषद् की दलगत व्यवस्था में विशेष परिवर्तन हुआ । प्रजा समाजवादी दल के सदस्य पहलीबार विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए और सदस्य संख्या के आधार पर कांग्रेस के बाद यह विधान परिषद् की दूसरी सबसे बड़ी पार्टी थी ।[१] इस दल के ६ सदस्य विधान परिषद् में थे । संयुक्त समाजवादी दल के सदस्यों की संख्या पूर्ववत् बनी रही । जनसंघ के भी चार सदस्य तथा कांग्रेस दल के ७७ सदस्य थे । एक सदस्य साम्यवादी दल का भी निर्वाचित हुआ था । प्रगतिशील संसदीय गुट में केवल दो सदस्य रहे तथा शेष दस सदस्य निर्दलीय थे जो किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं थे ।

यद्यपि प्रगतिशील संसदीय दल का लोप हो गया था, परन्तु एक दूसरे गुट का उदय हुआ था जिसमें विशेषतः निर्दलीय शिक्षक सदस्य तथा कुछ दलीय सदस्य भी थे । यहां यह विचारणीय है कि प्रगतिशील संसदीय गुट का लोप किन कारणों से हुआ ? प्रथमतः इस गुट के सभी सदस्य निर्दलीय तथा स्वतंत्र विचार के थे । परिणामस्वरूप उनके विचारों में सामंजस्य का अभाव था । द्वितीयतः , स्नातकों और शिक्षकों ने एक दूसरा स्वतंत्र गुट बना लिया था । इस नवीन गुट का नाम "संयुक्त प्रगतिशील दल" रखा गया । संयुक्त प्रगतिशील दल प्रगतिशील संसदीय दल से इस रूप में भिन्न था कि जहां प्रथम के सभी सदस्य निर्दलीय थे, वहां संयुक्त प्रगतिशील दल में निर्दलीय सदस्यों के अतिरिक्त कांग्रेस, जनसंघ, तथा कम्युनिस्ट दल के सदस्य भी सम्मिलित थे ।

विधान परिषद् के सभापति ने संयुक्त प्रगतिशील दल को गुट के रूप में मान्यता दी थी ।[२] इस गुट में प्रारम्भ में दस सदस्य थे , किन्तु जयबहादुर सिंह जो साम्यवादी दल के चुनाव चिह्न पर चुनाव जीतकर विधान परिषद् की सदस्यता प्राप्त की थी, संयुक्त प्रगतिशील गुट से अलग होकर साम्यवादी दल

---

१. यद्यपि संयुक्त प्रगतिशील दल की सदस्य संख्या प्रजासमाजवादी दल से अधिक थी परन्तु संयुक्त प्रगति शील दलगुट था, दल नहीं ।

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०सं० ५६, १३ अगस्त १९५८, पृ० ३५२

के प्रतिनिधि के रूप में सदन की कार्यवाही में भाग लेने के लिए इच्छा व्यक्त की थी ।

संयुक्त प्रगतिशील दल के नेता डा० ईश्वरीप्रसाद थे । इस गुट में एक मनोनीत सदस्य, दो विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य, दो स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से तथा चार शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य थे । यद्यपि संयुक्त प्रगतिशील दल में प्रजा समाजवादी दल से अधिक सदस्य थे, फिर भी संयुक्त प्रगतिशीलदल को मुख्य विरोधी दल के रूप में मान्यता नहीं दी गई । इसका कारण यह था कि इसमें सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के सदस्य भी सम्मिलित थे । पुन: संयुक्त प्रगतिशील दल को गुट के रूप में मान्यता मिली थी । अत: प्रजासमाजवादी दल को मुख्य विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई [१] जिसके नेता डा०ए०जे० फरीदी थे ।

१९६० के द्विवर्षीय चुनाव के बाद विधान परिषद् में कांग्रेसदल के ८० सदस्य, प्रजासमाजवादी दल के ७ सदस्य, जनसंघ के ३, संयुक्त समाजवादी दल के एक, साम्यवादी दल के भी एक सदस्य तथा निर्दलीय ७ सदस्य थे जो किसी भी दल अथवा गुट में सम्मिलित नहीं थे । इसके अतिरिक्त ६ सदस्य संयुक्त प्रगतिशील गुट में थे ।

१९६२ के द्विवर्षीय चुनाव के बाद कांग्रेस दल के सदस्यों की संख्या घटकर ७२ हो गयी । अन्य दलों की दलगत स्थिति इस प्रकार थी :—प्रजासमाजवादी दल की ४, संयुक्तसमाजवादी दल की ४, तथा जनसंघ की ३ । संयुक्त प्रगतिशील दल में केवल दो सदस्य रह गये थे ।

वस्तुत: १९६२ के बाद संयुक्त प्रगतिशील दल का अन्त हो गया था । इसका मुख्यकारण यह था कि शिक्षक तथा स्नातक सदस्य इस गुट से अलग हो गये थे । विधान परिषद् के शिक्षक सदस्य केवल शिक्षक सदस्यों का एक गुट अलग से निर्माण करना चाहते थे । शिक्षक सदस्यों की इस भावना के

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५६, १२ अगस्त १९५८, पृ० २५६
प्रजा समाजवादी दल के सदस्य :—सर्वश्री डा० ए०जे० फरीदी (नेता), बनवारी लाल (उपनेता), जगदीशचन्द्र वर्मा, मदनमोहन, नवलकिशोर गुरुदेव, रामनाथ तथा श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव ।

परिणामस्वरूप एक नये गुट का जन्म हुआ जिसका नाम राष्ट्रवादी दल (नैशनेलिस्ट पार्टी) रखा गया । १६६२ में इस गुट में ६ सदस्य थे [१] जिसमें सात शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित शिक्षक सदस्य तथा दो स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित शिक्षक सदस्य थे । श्री कन्हैयालाल गुप्त, इस गुट के नेता तथा श्री हृदयनारायण सिंह इसके उपनेता थे । इसके अतिरिक्त वे निर्दलीय सदस्य जो किसी भी गुट अथवा दल में सम्मिलित नहीं थे, उनकी संख्या तेरह थी ।

१६५२ से १६६२ के बीच विधान परिषद् में कांग्रेस के अत्यधिक बहुमत बने रहने के कई कारण थे । प्रथमत: विधान सभा में कांग्रेस दल का बहुमत था । अत: विधान परिषद् के विधान सभा निर्वाचित क्षेत्र से सर्वाधिक स्थान कांग्रेस दल को मिला । द्वितीयत: स्थानीय स्वायत्त संस्था निर्वाचन क्षेत्र के सम्पूर्ण मतदाताओं का छठांश जिला परिषद् के मतदाता थे । जिला परिषद् का बहुत दिनों तक चुनाव नहीं हुआ था । अत: इसके पुराने सदस्यों में कुछ अपवादों को छोड़कर सभी कांग्रेसी थे । पुन: स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर सत्तारूढ़ कांग्रेस दल का प्रभाव था । इन कारणों से इस निर्वाचन क्षेत्र से भी सर्वाधिक स्थान कांग्रेस दल को ही मिला था । तृतीयत:, नामजद सदस्यों में दो तिहाई कांग्रेसी सदस्य थे । उदाहरणार्थ १६५२, १६५४, और १६५६ में १२ नामजद सदस्यों में आठ सदस्य कांग्रेस दल के थे । इसी प्रकार १६६० और १६६२ में १२ मनोनीत सदस्यों में ६ कांग्रेस दल के थे । चतुर्थत: आकस्मिक रिक्त स्थानों पर निर्वाचन एक साथ न होने से विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के आकस्मिक रिक्त स्थान कांग्रेस दल को ही प्राप्त हुआ था ।

यद्यपि विधान परिषद् में कांग्रेस दल का सदा बहुमत रहा किन्तु इसने १६६२ के द्विवर्षीय चुनाव में ८ स्थान खोया था । तृतीय आम चुनाव के बाद विधान सभा में जनसंघ, प्रजा समाजवादी दल तथा संयुक्त समाजवादी दल के सदस्यों का अनुपात द्वितीय विधान सभा की अपेक्षा अधिक था । उदाहरणार्थ

---

१. १६७० में राष्ट्रवादी दल में १२ शिक्षक सदस्य थे जिसमें माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक भी सम्मिलित थे —श्री हृदयनारायण सिंह से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर, साक्षात्कार, २ म १६७०

द्वितीय विधान सभा में जनसंघ को १७ स्थान मिले थे, किन्तु तृतीय विधान सभा में इसे ४६ स्थान मिले थे जो द्वितीय विधान सभा में जनसंघ दल के सदस्यों की संख्या से लगभग तिगुनी थी । समाजवादी दल को भी तृतीय विधान सभा में अधिक स्थान प्राप्त हुआ था । फलत: तृतीय विधान सभा में विरोधी दलों को अधिक स्थान प्राप्त होने के परिणामस्वरूप विधान परिषद् के विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से विरोधी दलों को अन्य द्विवर्षीय चुनाव की अपेक्षा १९६२ में अधिक स्थान मिले थे ।

१९६२ के द्विवर्षीय चुनाव में कांग्रेस ने स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से भी स्थान खोया, किन्तु स्थानीय स्वायत्त निर्वाचन क्षेत्र से कांग्रेस को १९६० की अपेक्षा ४ स्थान अधिक मिले थे । इसका अर्थ यह है कि १९६२ में कांग्रेस सरकार का प्रभाव स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर बना हुआ था ।

शिक्षक तथा स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से प्रारम्भ में निर्दलीय सदस्य निर्वाचित हुए थे । प्रारम्भ में इन दो निर्वाचन क्षेत्रों में कांग्रेस दल की ओर से कोई भी उम्मीदवार खड़ा नहीं किया गया था । कांग्रेस सरकार यह चाहती थी कि इन निर्वाचन क्षेत्रों से निर्दलीय सदस्य ही निर्वाचित हों । कोई दूसरा दल भी इन निर्वाचन क्षेत्रों के लिए अपना उम्मीदवार खड़ा नहीं किया था । कांग्रेस दल की यह इच्छा अधिक दिनों तक कामयाब नहीं रही । परिणामस्वरूप बाद में कांग्रेसदल के प्रत्याशी भी इन निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित होने लगे ।

विरोधी दल :-

विधान परिषद् के सभापति श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर के अनुसार "कानून के अन्तर्गत न तो कोई विरोधी दल माना गया है और न कोई सरकार की पार्टी मानी गयी है[१]।" वस्तुत: राजनीतिक दल का निर्माण शासन की

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही, खं० ६०, ११ सितम्बर,१९५८, पृ० ५७७

सुविधा के लिए होता है, परन्तु प्रजातंत्र में केवल सत्तारूढ़ दल से ही कार्य नहीं चल सकता । सरकार के कार्य एवं उसकी नीति की समीक्षा एवं टीका आवश्यक है जो विरोधीदल द्वारा ही संभव है । विधान परिषद् सदस्य डा० ईश्वरीप्रसाद ने विधान परिषद् में विरोधी दल की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा था "प्रजातन्त्र राज्य को चलाने के लिए विरोधी दल की बहुत जरूरत है, लेकिन इसके साथ ही साथ इस बात की भी जरूरत है कि विरोधी दल दुर्बल न हो ।"[१]

विधान परिषद् में विरोधी दल सदा निर्बल रहा है । अगस्त १९५८ तक विधान परिषद् में किसी भी अखिल भारतीय राजनीतिक दल की सदस्य संख्या इतनी नहीं थी कि वह विधान परिषद् में मुख्य विरोधी दल के रूप में कार्य कर सके । तथ्य तो यह है कि १९५६ तक कांग्रेस को छोड़कर विधान परिषद् में अन्य दलों का अस्तित्व नाम मात्र के लिए था । विधान परिषद् में विरोधी दल को सबल बनाने के प्रयोजन से विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या बढ़ाये जाने के लिए तर्क दिया गया था ।[२]

१९५८ में विधान परिषद् की सदस्य संख्या को बढ़ाये जाने के परिणामस्वरूप १९५८ के द्विवर्षीय चुनाव के बाद पहलीबार प्रजासमाजवादी दल को मुख्य विरोधी दल के रूप में कार्य करने का अवसर मिला था, परन्तु मार्च १९६० में विधान परिषद् में मुख्य विरोधी दल की समस्या पुन: उठ खड़ी हुई । विरोधीदल के नेता की मान्यता के प्रश्न पर विधान परिषद् सदस्य इसहाक संभली ने नये विरोधीदल की मान्यता के लिए प्रस्ताव किया था ।[३]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५१, २८ दिसम्बर १९५६,पृ० ४९९

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५१, २८ दिसम्बर १९५६, उ०प्र० विधान परिषद् की सदस्यों की संख्या बढ़ाये जाने के प्रस्ताव पर बहस ।

३. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० ७१, २८ मार्च १९६० , पृ० ९८-९९

अप्रैल १९६० को सभापति ने निर्णय दिया ," चूंकि अभी कोई विरोधी दल नहीं है, अत: नेता का प्रश्न नहीं उठता ।[१] इसका यह अर्थ है कि अप्रैल १९६० में विधान परिषद् में कोई मान्य विरोधी दल नहीं था । ~~जनसंघ के~~- या वस्तुत: १९५२ से १९६२ के बीच सत्तारूढ़ दल को छोड़कर जिस किसी भी अखिल भारतीय दल का विधान परिषद् में प्रतिनिधित्व हो सका, उनमें प्रजासमाजवादी दल, संयुक्त समाजवादी दल, जनसंघ और साम्यवादी दल था ।

उपर्युक्त विरोधी दलों के अतिरिक्त प्रगतिशील संसदीय दल और राष्ट्रवादी दल को भी विरोधी दल के रूप में कार्य करने का अवसर मिला था, यद्यपि इन दोनों में से किसी को भी दल के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं थी । दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिये उसकी सदस्य संख्या सदन की पूर्ण सदस्य संख्या का दसवां भाग होना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त उसका प्रतिरूप विधान सभा में भी हो । दल के रूप में मान्यता दिये जाने के सम्बन्ध में विधान परिषद् में एक बार प्रश्न उठाया गया था । विधान परिषद् सदस्य पूर्णचन्द्र विद्यालंकार द्वारा यह पूछे जाने पर कि विधान परिषद् के दस सदस्यों के नाम दिये जाने पर जिसके नेता डा० ईश्वरीप्रसाद हैं, उसे दल के रूप में मान्यता क्यों नहीं दी गई ?[२] सभापति ने उत्तर दिया कि दल के रूप में नियमित मान्यता देने के लिए यह आवश्यक है कि वह दल सदन के भीतर भी काम करता हो और सदन के बाहर भी करता हो । द्वितीयत:, उसका सिद्धान्त अथवा आदर्श निश्चित हो जिसकी जानकारी जनता को हो । तृतीयत:, यदि उस दल ने कोई चुनाव लड़ा हो और चुनाव के द्वारा उसे इस प्रकार का स्थान राजनीतिक क्षेत्र में प्राप्त हुआ हो जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश अथवा पूरे

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०,सं० ७१, २८ मार्च १९६०, पृ० २२०-२

२. उ०प्र०वि०परिषद् की कार्य०, सं० ५९, पृ० २५६, १२ अगस्त,१९५८

भारतवर्ष में उसको बाहर की मान्यता भी मिली हो । इसके अतिरिक्त दल के कार्यों का प्रभाव जनता पर पड़ता हो । यदि कोई दल इस प्रकार का प्रभाव नहीं रखता है और इस बात का पता नहीं है कि वह दल कैसे स्थापित हुआ है, तो सभापति के लिए उस दल को मान्यता देने के सम्बन्ध में उलझन पैदा हो जायेगी ।[१]

प्रगतिशील संसदीय दल, संयुक्त प्रगतिशील दल और राष्ट्रवादी दल उपर्युक्त शर्तों को पूरा नहीं करती थी, इसलिए सभापति ने उन्हें दल के रूप में मान्यता नहीं देकर गुट के रूप में मान्यता दी थी ।

राजनीतिक दल और गुट में अन्तर है । दल का उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना होता है । दूसरी ओर गुट का उद्देश्य सरकार की आलोचना करना, सदन की कार्यवाही को सुगम बनाना तथा किसी समुदाय या वर्ग विशेष के स्वार्थ को पूरा करने अथवा उसके हित की रक्षा करने के प्रयोजन से सरकार पर दबाव डालना होता है ।[२]

सदन में गुट के बन जाने से लाभ भी हैं । एक लाभ यह है कि सदन के सामने जब कोई महत्वपूर्ण विषय आता है तो उसके ऊपर सदस्यों को सामूहिक रूप से एक मत होना पड़ता है । द्वितीयत:, मंत्री को भी यह आसानी हो सकती है कि कौन-कौन सी सुविधायें सरकार को साधारण जनता को देनी है ।[३] सभापति की राय में सदन में गुट का बन जाना एक अच्छी परम्परा है । उन्होंने यह आशा व्यक्त की थी कि किसी गुट को सदन में मान्यता मिल जाने के बाद, उस गुट के सदस्य सदन में सोच विचार कर विचार रखेंगे तथा

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५६, पृ० २५६, १२ अगस्त १९५८
२. लेखक का विधान परिषद् सदस्य श्री हृदयनारायण सिंह से साक्षात्कार के आधार पर (जून १९७०)
३. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५६, पृ० २६०

गैर जिम्मेदारी से सरकार के ऊपर आक्षेप भी नहीं करेंगे । वस्तुत: शासन के संचालन में गुट का भी महत्वपूर्ण हाथ होता है । विधान परिषद् के सभापति श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर के अनुसार "केवल सरकार ही शासन नहीं चलाया करती है बल्कि जितने भी गुट होते हैं वह सब मिलकर शासन चलाते हैं और यह जनता के लिए भी उपयुक्त होता है ।"[१]

१९५४ के पहले विधान परिषद् में न तो कोई विरोधी दल था और न कोई मान्य विरोधी गुट ही । अत: सदन के कार्यक्रम में काफी दिक्कत पड़ती थी ।[२] इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए विधान परिषद् के प्रथम सभापति श्री चन्द्रभाल ने प्रगतिशील संसदीय दल को १९५४ में विरोधी गुट के रूप में मान्यता दी थी ।[३] इस गुट को विरोधी गुट के रूप में मान्यता देते समय विधान परिषद् के किसी सदस्य ने आपत्ति प्रकट नहीं की थी ।

सदन में विरोधी दल का प्रभाव :-

विधान परिषद् में विरोधीदल की स्थिति न तो काफी सुदृढ़ थी और न स्थायी ही । मई १९५२ से सितम्बर १९५४ तक विधान परिषद् के कुछ निर्दलीय सदस्य तथा समाजवादी दल के २-३ सदस्य प्रतिपक्ष के रूप में कार्य करते थे, परन्तु विरोधी दल के रूप में उनका कोई गठन नहीं था । इसका कारण यह था कि विरोधी पक्ष के रूप में कार्य करने वाले अधिकांश सदस्य निर्दलीय थे । अत: सरकारी विधेयकों अथवा उसकी नीतियों की आलोचना करते

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० ५६, पृ० २६०

२. वही, खंड ४९, पृ० २६० ३५, ३० सितम्बर १९५४, पृ० ७३७-७३८

३. वही ।

समय उनके दृष्टिकोण एवं विचार अलग-अलग हुआ करते थे । जब कभी विरोधी पक्ष की ओर से कोई संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है तो उस प्रस्ताव पर विरोधी पक्ष के सभी सदस्यों के विचार एवं दृष्टिकोण एक प्रकार के नहीं थे । यदि किसी प्रस्ताव का कुछ सदस्यों ने समर्थन भी किया है, तो मतविभाजन के समय वे सभी एक साथ नहीं थे । उदाहरणार्थ १९५२ ई० के उ०प्र० जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि व्यवस्था नियमावली एवं १९५३ ई० के उ०प्र० कृषि आय-कर (संशोधन) विधेयक में कुंवर गुरु नारायण द्वारा प्रस्तावित संशोधन प्रस्ताव पर प्रस्तावक के अतिरिक्त केवल नरोत्तमदास टंडन का मत मिला था ।[१] इसी प्रकार १९५३ ई० के इन्कमबर्ड इस्टेट्स (संशोधन) विधेयक से संबंधित एक संशोधन प्रस्ताव पर मत विभाजन के समय प्रस्तावक कुंवर गुरुनारायण के अतिरिक्त किसी भी सदस्य का मत नहीं मिला था ।[२] कभी-कभी प्रतिपक्ष की ओर से प्रस्तावित किसी संशोधन प्रस्ताव पर ४-५ सदस्यों का मत भी मिला है । उदाहरणार्थ १९५२ ई० के उ०प्र० कोर्टफीस (संशोधन) विधेयक से सम्बन्धित कुंवर गुरुनारायण के एक संशोधन प्रस्ताव पर मत विभाजन के समय प्रस्तावक के अतिरिक्त चार सदस्यों का मत मिला था ।[३] ~~अतिरिक्त चार सदस्यों का~~ प्रतिपक्ष की ओर से मई १९५२ से मई १९५४ के बीच अधिकांश संशोधन प्रस्ताव कुंवर गुरु-नारायण द्वारा प्रस्तावित हुआ था ।

१९५४ में प्रगतिशील संसदीय दल को मुख्य विरोधी गुट के रूप में मान्यता मिल जाने के बाद भी, कई संशोधन प्रस्तावों पर मत विभाजन के समय इस गुट के सभी सदस्य एक साथ नहीं थे । उदाहरणार्थ १९५४ ई० के उ०प्र० विवाह सुधार विधेयक को प्रवरसमिति को निर्दिष्ट किये जाने के संशोधन

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०, खं० २६, पृ० ६०६

२. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० खं० २८, पृ० २०३

३. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० खं० २७, ६ अक्टूबर १९५२,
संशोधन प्रस्ताव के पक्ष में --सर्वश्री कुंवर गुरुनारायण (प्रस्तावक, नरोत्तमदास टंडन, प्रभुनारायण सिंह, बलभद्रप्रसाद बाजपेयी, राजाराम शास्त्री, हृदयनारायण सिंह

प्रस्ताव[1] पर प्रस्तावक कुंवर गुरु नारायण के अतिरिक्त किसी अन्य सदस्य का मत नहीं मिला था । इस प्रकार के उदाहरण अपवाद स्वरूप हैं । वस्तुत: सितम्बर १९५४ से १९५६ के बीच की अवधि में अनेक संकल्पों अथवा संशोधन प्रस्तावों के पक्ष अथवा विपक्ष में प्रगतिशील संसदीय दल के सदस्यों ने एक साथ मत दिया है । उदाहरणार्थ कुंवर गुरुनारायण द्वारा प्रस्तावित संकल्प कि "अधिनियमों के अन्तर्गत बने नियमों की जांच के लिये दोनों सदनों की एक समिति बनायी जाय" पर मत विभाजन के समय प्रस्तावक के अतिरिक्त इस गुट के अन्य चार सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया था[2]। एक अन्य संशोधन प्रस्ताव के पक्ष में जो कुंवर गुरुनारायण द्वारा प्रस्तावित किया गया था, इस गुट के पांच सदस्यों ने एक साथ मत दिया था ।[3]

मई १९५६ में कुछ संशोधन प्रस्तावों पर मत विभाजन के समय प्रगतिशील संसदीय दल, जनसंघ तथा समाजवादी दल के सदस्य एक साथ थे । उदाहरणार्थ १९५६ ई० के गोरखपुर विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में प्रतिपक्ष की ओर से प्रस्तावित एक संशोधन प्रस्ताव के पक्ष में प्रगतिशील संसदीय दल के पांच सदस्यों के अतिरिक्त जनसंघी सदस्य पीताम्बरदास, समाजवादी सदस्य प्रभुनारायण सिंह तथा निर्दलीय सदस्य वीरेन्द्रस्वरूप तथा बृजेन्द्रस्वरूप का भी मत मिला था ।[4]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०सं० ४०, १७ मार्च १९५५, पृ० १६८

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य० सं० ३९, १४ फरवरी १९५५, पृ० १८३

•. संशोधनप्रस्ताव के समर्थन में :—सर्वश्रीअम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, कुंवर गुरुनारायण, गोविन्द सहाय, शिवप्रसाद सिन्हा, हृदयनारायण सिंह ।

३. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०सं० ४३, २६ फरवरी १९५५, पृ० १४४-१४५

४. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० सं० ४७, २३ मई १९५६, पृ० ६३७
प्रगतिशील संसदीय दल के निम्नलिखित सदस्य संशोधन प्रस्ताव के पक्ष में मत दिये थे—सर्वश्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, डा० ईश्वरीप्रसाद, कुंवर गुरुनारायण, शिवप्रसाद सिन्हा तथा हृदयनारायण सिंह ।

इसी प्रकार प्रभुनारायण सिंह के एक संशोधन प्रस्ताव पर मत विभाजन के समय उपर्युक्त सभी सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया था।[1] गोरखपुर विश्वविद्यालय विधेयक को संयुक्त प्रवर समिति को निर्दिष्ट किये जाने के प्रस्ताव के विपक्ष में प्रगतिशील संसदीय दल के सदस्यों के साथ गोविन्दसहाय, बलभद्रप्रसाद बाजपेयी तथा प्रभुनारायण सिंह ने भी मत दिया था।[2]

निष्कर्ष यह कि विरोधी दल और विरोधी गुट के सदस्यों ने सुदृढ़ तथा मजबूत विरोधीपक्ष के अभाव का अनुभव किया था। इस अभाव को दूर करने के प्रयोजन से ही विरोधी गुट तथा, विरोधीदल के सदस्य आपस में संगठनात्मक भाव को बढ़ावा देने के लिए मत विभाजन के समय एक साथ मत दिया है।

अब प्रश्न यह है कि परिषद् भवन में विरोधी दल ने अपना कर्तव्य किस अंश तक पूरा किया है? विरोधी दल का यह कर्तव्य होता है कि सरकार जो विधेयक या प्रस्ताव लाये, उनकी विवेचना करे, उन पर विचार करे और अपने सुझाव दे ताकि उसके अन्दर जो गल्तियां हों वे दूर हो जायें।[3] प्रो० बार्कर ने विरोधी दल के कार्यों की विवेचना करते हुए बताया है —
"The two sides are indeed engaged in the conflict of debate but they are engaged in the Co-operation of managing the natio business together. The conflict is public, the co-operation wh is unacknowledged and even be unconscious , is hidden in the background."[4]

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, सं० ४७, पृ ६७८

२. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य० सं० ४६, २१ मार्च १९५६, पृ० १६१

३. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्यवाही खण्ड ५१, २८ दिसम्बर १९५६, पृ० ४९९ (डा० ईश्वरीप्रसाद)

४. बार्कर, अर्नेस्ट, प्रिंसिपुल्स ऑफ सोशल एंड पोलिटिकल थ्योरी, रिप्रिन्टेड १९५५, पृ० २९६-२९७

विधान परिषद् सदस्य कुंवर गुरुनारायण के अनुसार विरोधी दल का कार्य रचनात्मक आलोचना करना है।[१]

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि विधानपरिषद् के विरोधी सदस्यों के वाद-विवाद का स्तर ऊँचा रहा है। प्रस्ताव, संकल्प तथा विधेयक पर विरोधी सदस्यों ने आलोचना की है तथा सुझाव भी दिये हैं। राज्यपाल को उनके संबोधन के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव पर बहस के समय विरोधी पक्ष के सदस्यों ने सरकार की आलोचना की है। इसी प्रकार आय-व्ययक की विरोधी सदस्यों ने आलोचना की है। उदाहरणार्थ श्री राजाराम शास्त्री की दृष्टि में १९५५ का बजट श्रमिकों का बजट नहीं है।[२] इसी प्रकार ~~समाजवाद~~ समाजवादी दल के अनुसार यह किसानों का बजट नहीं था। साथ ही १९५४-५५ के पूरक अनुदान (दूसरी किस्त पर) साधारण वाद-विवाद के समय कुंवर गुरुनारायण की मुख्य आपत्ति यह थी कि पूरक अनुदान में अधिकांश ऐसी मदें हैं जिनको बजट में लाया जा सकता था और इस समय पूरक अनुदान में उनको रोका जा सकता था।[३] उन्होंने यह भी आलोचना की कि सरकार को इस आदत को रोकना चाहिए वरना विभाग पर कोई नियंत्रण नहीं रहेगा और जितने विभाग हैं वह बराबर अपने खर्च को बढ़ाते रहेंगे और बाद में पूरक अनुदान के द्वारा रुपया लेते रहेंगे।[४]

सरकारी विधेयकों की भी विरोधी पक्ष में आलोचना हुई है तथा सम्पूर्ण विधेयक अथवा विधेयक के कुछ खंडों का विरोध किया है। १९५२ई० के कोर्टफीस (संशोधन) विधेयक की आलोचना करते हुए कुंवर गुरुनारायण ने

---

१. दि पायनिअर, इंगलिश डेली, लखनऊ धन्यवाद के प्रस्ताव पर, मई २५, १९५२, पृ० ५
२. उ०प्र० विधान परिषद् खं० ३४, २६ फरवरी १९५४, पृ० ४५१-४५८
३. उ०प्र० विधान परिषद् खंड ३९-४०, २४ सितम्बर १९५५, पृ० १२४
४. उ०प्र० विधान परिषद् खंड ३९-४०, २४ सितम्बर १९५५, पृ० १२१-२२

कहा कि विधेयक के द्वारा कर बढ़ाये जा रहे हैं जिसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा ।[१] नरोत्तमदास टंडन[२] तथा सोशलिस्ट सदस्य श्री प्रभुनारायण[३] के दृष्टिकोण भी इसी प्रकार के थे । १९५४ ई० के इलाहाबाद यूनिवर्सिटी (संशोधन) विधेयक पर बहस के समय डा० ईश्वरीप्रसाद ने शिक्षामंत्री की आलोचना की थी ।[४] १९५५ ई० के जौनसार बावर जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था विधेयक के सम्बन्ध में कुंवर गुरुनारायण की यह धारणा थी कि जौनसार क्षेत्र जब तक अविकसित है यह विधेयक जौनसार के लिए उपयोगी नहीं होगा ।[५]

वस्तुत: सभी आलोचनाएं निराधार अथवा अवास्तविक नहीं थीं । बजट के सम्बन्ध में विरोधी दल द्वारा की गई आलोचना के सम्बन्ध में सरकार की ओर से श्री चन्द्रभानु गुप्त का कथन है कि " जहां तक आलोचना का सम्बन्ध है, उनकी आलोचना तो सत्य है ही..... लेकिन इसका क्या कारण है, यह बात सदन के सामने साफ तौर से आ जाना चाहिए । हमारे प्रदेश को और इस सदन को इस बात का निर्णय करना है कि पहले प्रदेश में हमें किन खामियों और कमजोरियों को अपने बजट से हटाना है ।"[६] उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि विरोधी सदस्यों ने रचनात्मक आलोचनाएं की हैं । शिक्षामंत्री श्री हरगोविन्द सिंह के अनुसार " यहां मैं समझता हूं कि विरोधीदल के माननीय सदस्य अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं और उसके अनुकूल अपने विचारों को रखना चाहते हैं ।"[७]

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् खंड २७, ६ अक्टूबर १९५२, पृ० ७ ३-४
२. उ०प्र०विधान परिषद् खंड २७, ६ अक्टूबर १९५२, पृ० ७
३. उ०प्र०विधान परिषद् खंड २७, ६ अक्टूबर १९५२, पृ० २८-३०
४. उ०प्र०विधान परिषद् खंड ३८, १६ दिसम्बर १९५४, पृ० २४६-२७०
५. उ०प्र०विधान परिषद् खण्ड ४४, १८ जनवरी १९५५, पृ० ११६-११७
६. उ०प्र०विधान परिषद् खंड ३४, २७ फरवरी १९५४, पृ० ५१२ (१९५४-५५ का बजट)
७. उ०प्र०विधान परिषद् खण्ड ३४, २७ फरवरी १९५४, पृ० ५२६

वस्तुत: ऐसी बात नहीं है कि विरोधी पक्ष के सदस्यों ने सभी विधेयकों का विरोध अथवा आलोचनाएं ही की हों अपितु कुछ विधेयकों का समर्थन भी किया है । १९५२ के उ०प्र० कंट्रोल आफ सप्लाइज (कन्टीन्यूएशन आफ पावर्स) (संशोधन) विधेयक के सिद्धान्त का श्री प्रभुनारायण सिंह ने समर्थन किया था ।[१] १९५२ ई० के अस्थायी कन्ट्रोल आफ रैन्ट्स एण्ड इविक्शन (संशोधन) विधेयक का राजाराम शास्त्री, कुंवर गुरुनारायण, ईश्वरीप्रसाद तथा हृदयनारायण ने समर्थन किया था ।[२] भूमि संरक्षण विधेयक (१९५३) का श्री कुंवर गुरुनारायण ने समर्थन किया ।[३] हरप्रसाद शिक्षा विधि बनारस (समझौता पुष्टिकरण) (सम्पत्ति संक्रमण) विधेयक (१९५४) का प्रभुनारायण सिंह[४] तथा श्री कुंवर गुरुनारायण[५] ने समर्थन किया था । होम्योपैथिक मैडिसिन विधेयक (१९५५)[६] तथा गोवध निवारण विधेयक (१९५५)[७] पर एक सदस्य को छोड़कर[८] सभी विरोधी सदस्यों का समर्थन मिला है। जोत चकबन्दी (तृतीय संशोधन) विधेयक (१९५५)[९] का सभी विरोधी सदस्यों ने तथा उ०प्र०श्रमकल्याण निधि (संशोधन) विधेयक (१९५६) श्री कुंवर गुरुनारायण ने समर्थन किया था ।[१०] इसके अतिरिक्त अनेक सरकारी छोटे विधेयकों का प्रतिपक्ष ने कोई विरोध नहीं

---

१. उ०प्र०वि०परिषद्, खण्ड २६, १७ सित० १९५२, पृ० ३८९-३९०

२. उ०प्र०वि०परिषद् खंड २६, १९ सित० १९५२, पृ० ४८२-५१०

३. उ०प्र०वि०परिषद् खंड ३५, उ०णि १९५४

४. उ०प्र०वि०परिषद् खण्ड ३५, ३१ मार्च १९५४, पृ० १००

५. उ०प्र०वि०परिषद् खण्ड ३५, ३१ मार्च १९५४, पृ० १८१

६. उ०प्र०वि०परिषद् खण्ड ४१, १४ सितम्बर १९५५, पृ० १९८ -२३१

७. उ०प्र०विधान परिषद्, खण्ड ४१, १६ सितम्बर, १९५५, पृ० ३०३-३४५

८. गोविन्दसहाय ने विधेयक का विरोध किया था ।

९. उ०प्र०वि० परिषद् की कार्य० खंड ५२, पृ० ५४०

१० वही पृ. 283-'88.

किया है । सरकार द्वारा प्रस्तावित संयुक्त प्रवर समिति के प्रस्तावों का भी प्रतिपक्ष की ओर से समर्थन किया गया है ।

समर्थन के अतिरिक्त विरोधी सदस्यों ने सुझाव भी दिए हैं । १९५२ ई० के अभ्यस्त अपराधी प्रतिरोध विधेयक पर कुंवर गुरुनारायण ने सुझाव देते हुए कहा " अपराधी को पहली ही गलती करने पर सुधारा जाय तो अच्छा है ।"[१] विरोधी सदस्य प्रभुनारायण सिंह तथा राजाराम शास्त्री ने उस सुझाव का समर्थन किया था । इसी प्रकार नगरपालिका (संशोधन) विधेयक (१९५२) पर श्री कुंवर गुरुनारायण का सुझाव यह था कि बिना चेतावनी दिए जनता के प्रतिनिधि (नगरपालिका के सदस्य या अध्यक्ष) को हटाना उचित नहीं । उनके सुझाव के अनुसार उन्हें हटाने के लिए कम से कम १५ दिनों की सूचना देना आवश्यक है । राजनीतिक दल के सदस्य को चुनाव से अलग कर दिये जाने का सुझाव भी दिया गया । वस्तुत: विरोधी सदस्यों द्वारा जितने भी संशोधन प्रस्ताव हैं, वे सुझाव ही हैं । हां, यह अवश्य है कि कुछ एक को छोड़ कर प्राय: सभी संशोधन सरकार द्वारा अस्वीकृत कर दिये गए हैं ।

सदन के बाहर के दल का सदन पर प्रभाव :-

अब प्रश्न यह है कि सदन के बाहर के राजनीतिक दल का किस हद तक विधान परिषद् पर तथा विधान परिषद् के सदस्यों पर प्रभाव पड़ता है । क्या विधान मंडल के बाहर राजनीतिक दल विधायकों को नियंत्रित करते हैं ? क्या वे विधायकों द्वारा प्रस्तावित विषयों पर किस प्रकार मत दिया जाय, इसके लिए निर्देशित करते हैं ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर एक देश से दूसरे देश में तथा एक शासन व्यवस्था से दूसरे शासन व्यवस्था में अलग-अलग है ।

उत्तर प्रदेश विधान मंडल द्विसदनीय व्यवस्था होने के कारण विधान परिषद् स्वभावत: विधान सभा की अपेक्षा आम जनता के आकर्षण का केन्द्र कम रहा है । सरकार का पतन तथा निर्माण विधान सभा के विधायकों पर निर्भर करता है, अत: राजनीतिक दल जिसका मुख्य उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना

ही होता है, विधान सभा के सदस्यों से विशेष सम्बन्ध बनाये रखना राजनीतिक दल के लिए अधिक स्वाभाविक है। चूंकि विधान परिषद् राजनीतिक दल को सत्ता प्राप्त कराने में सहायता नहीं कर सकती, अतः विधान परिषद् को राजनीतिक दल द्वारा प्रभावित करने का प्रश्न भी उतना महत्वपूर्ण नहीं है। कांग्रेस दल को छोड़कर अन्य दल की स्थिति विधान परिषद् में सबल तथा सुदृढ़ नहीं थी। वास्तव में सदन के बाहर राजनीतिक संगठन द्वारा अनुमोदित नीति सदन के भीतर संबंधित दल के विधायकों द्वारा माने जाने के लिए आवश्यक नहीं है। इस सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त है कि इस देश अथवा इस प्रदेश में विधान मंडलीय परम्परा यह है कि सदन नेता तथा विधानमंडलीय दल द्वारा निर्धारित नीति तथा अनुशासन ही विधायकों के द्वारा अनुकरण किए जाते हैं। उदाहरणार्थ उ०प्र० विधान मण्डल कांग्रेस दल द्वारा निर्धारित नीति अथवा आदेश विधानमंडल के दोनों सदनों के कांग्रेस सदस्यों द्वारा पालन किये जाते रहे हैं। इसके बावजूद सत्तारूढ़ विधान मण्डलीय दल उन्हीं नीतियों के आधार पर सरकार की नीति का निर्माण तथा निर्धारण करते हैं जो दलीय अधिवेशन द्वारा निर्धारित किया गया है।

इसके विपरीत एक दलीय शासन व्यवस्था में विधान मण्डल के बाहर के राजनीतिक दल की नीति का प्रभाव विधान मंडल पर प्रत्यक्षतः पड़ता है। उदाहरण के लिए सोवियत संघ में साम्यवादी दल का प्रभाव सर्वोच्च सोवियत पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। परन्तु ब्रिटेन में रूढ़िवादी दल जो विधान मंडल के बाहर है संसद को प्रभावित नहीं करता। साथ ही रूढ़िवादीदल के विधायक दलीय अधिवेशन द्वारा स्वीकृत नीति को मानने के लिए भी बाध्य नहीं है।[१] इसी प्रकार मैकडोनाल्ड, एटली तथा मोरिसन के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि श्रमिकदल की नीति श्रमिक सरकार के लिए निर्देशन के रूप में हो,

---

१. ह्वीयर, के०सी०, लेजिस्लेचर, पृ० ६८

किन्तु श्रमिक दल के कुछ समर्थकों का दृष्टिकोण इसके विपरीत है कि विधान मण्डल के बाहर के श्रमिकदल की नीति विधायकों द्वारा अनुकरण किये जायें ।

दबाव गुट :-

दबाव गुट के अन्तर्गत मजदूर संघ, व्यापार संघ मालिक संघ, कर्मचारी संघ तथा व्यावसायिक संघ, एसोशियेशन तथा वे गुट जो जनता के कुछ उद्देश्यों को पूरा करने अथवा अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बनाये जाते हैं, आते हैं । कभी-कभी उनका मुख्य उद्देश्य विधायकों पर प्रभाव डालना होता है, परन्तु कभी-कभी वे विधान मण्डल की अपेक्षा सरकार पर प्रभाव डालकर अपने उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास करते हैं ।

ये संगठित निकाय जो प्रभाव डालने के दृष्टिकोण से संगठित होते हैं प्राय: दबाव गुट कहे जाते हैं । इन दबाव गुटों के क्रिया-कलाप प्राय: विधान मण्डल के गोष्ठी कक्ष में किये जाते हैं जहाँ सदस्य मिल सकते हैं और बात-चीत कर सकते हैं । इसलिये इन्हें 'लाबिंग' भी कहते हैं । 'लाबिंग' एक प्रकार की अभि-व्यक्ति है जो सदस्यों के साथ मिलने, सम्पर्क और समझौता तथा बात-चीत करने के लिए प्रयोग किया जाता है । इस शब्द का क्षेत्र अब इतना बृहद् हो गया है कि इसमें पूरे क्रिया कलाप जिसमें विनोद जो विधायकों पर प्रभाव डालने के लिए किये जाते हैं, भी निहित हैं । अत: "गोष्ठी-कक्ष" प्रभाव डालने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । परन्तु गोष्ठी-कक्ष के इस अर्थ क्षेत्र में अब कुछ परि-वर्तन हुआ है । प्रभाव डालने के बहुत से कार्य अब विधान मंडल भवन के बाहर पत्र या तार, मनोविनोद, बैठक तथा वाद-विवाद द्वारा किये जाते हैं ।

ऊपर यह स्पष्ट हो चुका है कि विधान परिषद् में समय-समय पर गुट का निर्माण होता रहा है । ये गुट सदन में दबावगुट के रूप में काम करते रहे हैं । विधान परिषद् में प्रारम्भ से शिक्षकों का गुट दबाव गुट के रूप में कार्य करता रहा है । प्रगतिशील संसदीय गुट जो निर्दलीय सदस्यों द्वारा

गठितहुआ था , का मुख्य उद्देश्य सरकार की आलोचना करना तथा उस पर प्रभाव डालना था । परिषद् के शिक्षक सदस्य शिक्षक वर्ग के हित की रक्षा करना चाहते थे । फलत: शिक्षक सदस्यों ने संयुक्त प्रगतिशील दल से निकलकर जिनमें शिक्षक के अतिरिक्त गैर शिक्षक भी थे, एक अलग गुट कायम कर लिया जिसका नाम 'राष्ट्रवादी दल रखा गया । इस गुट के सदस्यों का शिक्षा सम्बन्धी विधेयक पर एक प्रकार के दृष्टिकोण थे । उदाहरणार्थ विश्व-विद्यालय सम्बन्धी विधेयक पर शिक्षक सदस्यों ने विश्वविद्यालय को अधिक स्वाय-त्तता दिए जाने के पक्ष में तर्क दिया । इसी प्रकार शिक्षक के वेतन तथा उनकी अन्य सुविधाओं की वृद्धि तथा सुधार के लिए इस गुट ने सरकार का ध्यान समय-समय पर आकृष्ट किया है ।

निष्कर्ष :- विधान परिषद् में राजनीतिक दल की स्थिति सुदृढ नहीं थी । दस वर्ष की अवधि में अखिल भारतीय दलों में सिर्फ प्रजा समाजवादी दल ने केवल दो वर्षों तक मुख्य विरोधी दल के रूप में कार्य किया है । बहुत से ऐसे अवसर भी थे जब कि सदन में विरोधी दल के रूप में न तो कोई दल था और न गुट ही ।

प्रतिपक्षी द्वारा किये गए कार्यों में एक तो रचनात्मक थे और दूसरे वेजो रचनात्मक नहीं थे । रचनात्मक कार्यों में विपक्षी द्वारा दिए गए सुझाव तथा संशोधन निहित हैं । दूसरी ओर जो रचनात्मक नहीं थे, वे हैं सरकार की कटु आलोचना करना तथा सरकार की नीतियों के विरोध स्वरूप अथवा सभापति की व्यवस्था के विरुद्ध सदन का त्याग करना, दबाव गुट के रूप में सदन के शिक्षक सदस्यों का गुट विशेष प्रभावी ढंग से कार्य किया है ।

विधान परिषद् में जनता तथा जनहित का प्रतिनिधित्व और प्रभाव :-

ऊपर यह स्पष्ट हो चुका है कि विधान परिषद् में वर्ग एवं पेशा का प्रतिनिधित्व हुआ है परन्तु प्रश्न यह है कि वर्ग- एवं पेशा के अतिरिक्त

क्या विधान परिषद् जनता का भी प्रतिनिधित्व करती है । सैद्धान्तिक रूप से यह सदन सामान्य जनता द्वारा निर्वाचित नहीं होने के कारण यह आशंका पैदा होती है कि इस सदन में जनता का प्रतिनिधित्व नहीं होता, परन्तु सैद्धान्तिक आधार पर इस सदन के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा बनाना उपयुक्त नहीं है । यदि जनता के प्रतिनिधित्व से मतलब आम जनता द्वारा सदस्यों के चुने जाने से है, तो निश्चय ही विधान परिषद् जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती, परन्तु यदि इसका अर्थ जनता की इच्छा को व्यक्त करना, उनकी भलाई तथा हित के लिए संकल्प प्रस्तुत करना तथा विधेयक बनाना है तो इस दृष्टिकोण से विधान परिषद् जनता का भी प्रतिनिधित्व करती है । प्रश्नोत्तर के समय सदस्यों ने अनेक ऐसे प्रश्न पूछे हैं जो किसी वर्ग विशेष के हित से सम्बन्धित न होकर सामान्य जनता के हित से सम्बन्धित थे ।

प्रश्नों के अतिरिक्त राज्यपाल को उनके संबोधन के लिए धन्यवाद के प्रस्ताव पर वाद-विवाद के समय भी सदस्यों ने जनता के हित को व्यक्त किया है । विधान परिषद् सदस्य श्री अम्बिका प्रसाद बाजपेयी ने १९५४ में प्रयाग के कुम्भ मेले में हुई दुर्घटना पर बोलते हुए कहा " हम लोग जनता के प्रतिनिधि हैं । हमको जनता को उसी दृष्टिकोण से देखना चाहिए ।"[१] श्री राजाराम शास्त्री भी धन्यवाद के प्रस्ताव पर भाषण देते समय प्रदेश में बढ़ती हुई बेकारी तथा बढ़ते हुए कर के सम्बन्ध में सरकार का ध्यान आकृष्ट किया/साथ ही गरीब, किसान, शिक्षक तथा मध्यम वर्ग की उन्नति के लिए अपना विचार व्यक्त किया था ।[२]

आय-व्ययक अथवा पूरक अनुदानों पर साधारण बहस के समय भी सदस्यों ने सामान्य हित की बात कही है तथा जनहित से संबंधित विषयों का

---

१. उ०प्र०विधान परिषद्, खण्ड ३४, १३ फरवरी १९५४, पृ० ५१
२. उ०प्र०विधान परिषद् खंड ३४, १३ फरवरी, १९५४, पृ० १८- २१

समर्थन किया है । १९५२-५३ ई० के पूरक अनुदान पर कुंवर गुरुनारायण ने अकाल सहायता के लिए पचास लाख रुपये के अनुदान की मांग का समर्थन किया था ।[१]

विधान परिषद् में ऐसे गैर सरकारी संकल्प भी उपस्थित किये गए हैं जिसके द्वारा प्रदेश में बढ़ती हुई बेरोजगारी को दूर करने के लिए शीघ्र प्रबन्ध किये जाने की बात कही गयी । " इस प्रस्ताव को पेश करने का मेरा सिर्फ यह मतलब था कि मैं सदन का ध्यान और जन साधारण का ध्यान इस ओर खिलाऊँ कि यह बहुत गम्भीर मामला है और इसकी ओर कोई ठोस कदम उठाना चाहिए ।[२] इन पंक्तियों से जनता की भलाई के भाव का संकेत मिलता है । यद्यपि मंत्री द्वारा यह आश्वासन दिये जाने पर कि सरकार इस पर गंभीर रूप से विचार कर रही है प्रस्तावक ने प्रस्ताव को वापस ले लिया था । इसके अतिरिक्त विधान् परिषद् के सदस्यों में जनता की अनेक समस्याओं को लेकर जैसे उ०प्र० पूर्वी जिलों की खाद्य स्थिति पर,[३] प्रदेश में इन्फ्लूएंजा की बीमारी से उत्पन्न स्थिति पर,[४] सिंचाई की दरों[५] तथा बाढ़ की स्थिति पर[६] कानपुर में कपड़ा मिल मजदूरों की स्थिति,[७] तथा प्रदेश में अतिसार तथा हैजे के प्रकोप से उत्पन्न परिस्थिति पर[८] वाद-विवाद किये हैं जिससे जनता के हितों का

---

१. उ०प्र०वि०परिषद्, खंड २७, ७ अक्टूबर, १९५२,पृ० ७९-८१
२. उ०प्र०वि०परि०, खंड ३०, १५ सितम्बर १९५४
३. उ०प्र०वि०परि०, खंड ५७, २ अगस्त, १९५७
४. उ०प्र०वि० परिषद्, खंड ५७, २ अगस्त १९५७
५. उ०प्र०वि० परिषद् खंड ३६, ४ सितम्बर १९५४, पृ० ३२०-३२१
६. उ०प्र०वि० परिषद् खंड ४२, १९ अक्टूबर, १९५५, पृ० ३९५-४३२
७. उ०प्र०वि०परि०, १९५6 के द्वितीय सत्र में
८. उ०प्र० विधान परिषद के १९६० के सत्र में

प्रतिनिधित्व किये जाने का संकेत मिलता है। सिंचाई की दरों पर वाद-विवाद के उपरान्त वित्तमंत्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम ने कहा " जो बहस आज इस सदन (विधान परिषद्) में हुई उससे एक बात तो यह निकलती है कि जो इरीगेशन टैक्स बढ़ गए हैं वह एक जुल्म है। दूसरी बात यह निकलती है कि टैक्स का बोझ इस राज्य के रहने वालों पर हद से ज्यादा हो गया है जिसको बर्दास्त करना उनकी शक्ति के बाहर है।"[१]

इसके अतिरिक्त अनेक वैसे गैर सरकारी संकल्प भी उपस्थित किये गये जिनके द्वारा सामाजिक अनेक कुरीतियों को दूर किया जा सकता था। उदाहरणार्थ प्रदेश के मेहतर समाज की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति की जाँच किए जाने के लिए एक समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव [२] और प्रदेश में दहेज प्रथा रोकने तथा विवाह सुधार के लिए दहेज निषेध एवं विवाह सुधार विधेयक।[३] दहेज प्रथा गैर सरकारी विधेयक पर सदन में हुए वाद-विवाद के सम्बन्ध में न्यायमंत्री श्री सैयद अलीजहीर का विचार है कि इस सदन के वाद-विवाद का जनमत पर काफी प्रभाव पड़ता है।[४]

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना उपयुक्त है कि विधान परिषद् ने विधान सभा द्वारा पारित जन साधारण के हित से संबंधित विधेयक को पारित होने में किसी प्रकार का अवरोध नहीं डाला है। उदाहरणार्थ जमींदारी उन्मूलन विधेयक, चकबन्दी विधेयक, नगर महापालिका आदि विधेयकों को पारित करने में किसी प्रकार की अड़चन नहीं डाली है। इस सम्बन्ध में यह आरोप जो

---

१. उ०प्र०वि०परिषद, खंड ३६, ४ सितम्बर १९५४, पृ० ३५०

२. उ०प्र०विधान परिषद् खंड ६९, ८ जनवरी १९७०, पृ० ५१९-५५६

३. उ०प्र०विधान परिषद्, खं० ४१, २२ सित०,१९५५, पृ० ४९७-५०५

४. उ०प्र०वि०परिषद् खण्ड ४२, १३ अक्टूबर १९५५, पृ० १५७

उच्च सदन के सम्बन्ध में सामान्य रूप से लगाया जाता है कि यदि यह सदन निम्न सदन के प्रस्ताव से सहमत है तो बेकार है और यदि असहमत है तो अप्रजातांत्रिक है, परन्तु उ०प्र०विधान परिषद् के सम्बन्ध में यह आरोप-पूर्ण रूपेण सत्य नहीं कहा जा सकता। छठे अध्याय में यह स्पष्ट हो चुका है कि विधान परिषद् ने विधान सभा द्वारा पारित विधेयकों पर विचार विनिमय करने के उपरान्त उसे संशोधित अथवा असंशोधित रूप में पारित किया है। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथमत: कि विधान परिषद् विधानसभा द्वारा पारित किसी भी विधेयक को अवरोध के द्वारा जनहित की भावना को ठेस नहीं पहुंचायी है और दूसरी बात यह स्पष्ट होती है कि इसने सोच-विचार कर ही विधेयक को पारित किया है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर विधान परिषद् के सम्बन्ध में निम्नलिखित धारणायें बनायी जा सकती हैं। (१) विधान परिषद् में जनहित का प्रतिनिधित्व हुआ है द्वितीयत: इसमें वर्ग और पेशाओं के हितों का प्रतिनिधित्व भी हुआ है। तृतीयत: यह आवश्यक नहीं कि शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य केवल शिक्षकों के हितों का ही ध्यान रखते हों। वस्तुत: शिक्षक सदस्यों ने जनहित तथा सामाजिक हितों से संबंधित अनेक प्रश्न पूछे हैं तथा कई संकल्पों और विधेयकों को प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार दूसरे निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित सदस्यों ने भी जनहित की भावना का आदर तथा समर्थन किया है। चतुर्थत: विधान परिषद् के सम्बन्ध में यह धारणा गलत है कि यह सिर्फ पूंजीपतियों तथा धनी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है। वस्तुत: विधान परिषद् केवल अमीरों का नहीं बल्कि गरीबों तथा जन सामान्य के हितों का भी प्रतिनिधित्व करती है। "... इस सदन में पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व नहीं है। यह सदन उन बहुत से व्यक्तियों के हितों का संरक्षण करता है जो असहाय हैं जो मुसीबत जदन हैं। ..... इस सदन का प्रत्येक सदस्य संरक्षक है उन व्यक्तियों का जो कमजोर है और गरीब है।"[१]

---

१ उ०प्र०विधान परिषद की कार्य०, खं० ४२, पृ० २८०

अध्याय – ६

विधान परिषद् का मूल्यांकन तथा निष्कर्ष :-

१९५२ से १९६२ के बीच उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के विभिन्न सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् प्रश्न है कि विधान परिषद् द्वितीय सदन के रूप में किस अंश तक सफल रही । सामान्य रूप से द्वितीय सदन का कार्य प्रथम सदन द्वारा पारित विधेयकों तथा नियमों का पुनरीक्षण एवं उनमें निहित त्रुटियों को दूर करना है । संविधान निर्माताओं का उद्देश्य भी विधान परिषद् को परिशोधक सदन बनाना था । संविधान निर्माताओं की इस भावना के अनुरूप उत्तर प्रदेश विधान परिषद् ने दस वर्ष की अवधि में लगभग डेढ़ दर्जन विधेयकों तथा कई नियमावलियों को संशोधित किया है । विधान परिषद् के इन सभी संशोधनों से विधान सभा भी सहमत थी ।

विधान परिषद् द्वारा किये गये संशोधनों के तीन प्रकार हैं :-

(क) संशोधन के द्वारा विधेयक से निकाला गया अनावश्यक अंश,[१]

(ख) अनुपयुक्त शब्द, वाक्य खण्ड अथवा वाक्य को संशोधित कर उपयुक्त शब्द, वाक्य खण्ड अथवा वाक्य का प्रयोग,

(ग) विधेयक के खण्ड, उपखण्ड अथवा स्पष्टीकरण में बढ़ाया गया नया अंश ।[२]

उपर्युक्त तीनों प्रकार के संशोधनों में शाब्दिक संशोधन और बड़े संशोधन दोनों सम्मिलित हैं । यहाँ प्रश्न है कि क्या शाब्दिक संशोधनों के लिए द्वितीय

---

१. इसमें शब्द, वाक्य खण्ड अथवा वाक्य के संशोधन भी सम्मिलित हैं ।

२. वही ।

सदन के रूप में विधान परिषद् की आवश्यकता है ? इस प्रसंग में लास्की का विचार जानने योग्य है। लास्की के अनुसार शाब्दिक संशोधनों के लिए द्वितीय सदन की आवश्यकता नहीं है।[१] वस्तुत: द्वितीय सदन द्वारा किया गया शाब्दिक संशोधन यदि महत्वपूर्ण नहीं है, तो उस स्थिति में परिशोधक सदन के रूप में द्वितीय सदन की आवश्यकता नहीं हो सकती है, किन्तु शाब्दिक संशोधन भी यदि महत्वपूर्ण हैं, तो उस दशा में द्वितीय सदन की उपयोगिता की उपेक्षा करना वांछनीय नहीं है। उत्तर प्रदेश विधान परिषद् द्वारा किये गये शाब्दिक संशोधनों के अभिलेख से विदित है कि इसने विधेयक के खण्ड अथवा उप-खण्ड में प्रयुक्त अनुपयुक्त शब्दों को संशोधित कर विधेयक से अस्पष्टता तथा वैधानिक त्रुटियों को दूर किया है। इस दृष्टि से विधान परिषद् द्वारा किये गये महत्वपूर्ण शाब्दिक संशोधनों से विधान परिषद् की उपयोगिता सिद्ध हुई है।

बड़े एवं महत्वपूर्ण संशोधनों के लिए लास्की ऐसे विचारक का कथन है कि जनता द्वारा निर्वाचित सदन में सत्तारूढ़ दल को चुनौती दिया जाना चाहिये,[२] किन्तु चुनौती का प्रश्न तो तब उठता है जब उस संशोधन का सम्बन्ध सरकार की नीति से हो। इस दृष्टि से उत्तर प्रदेश विधान परिषद् द्वारा किये गये महत्वपूर्ण संशोधनों में एक भी ऐसा संशोधन नहीं है जिससे सरकार की नीति प्रभावित हुई हो तथा जिसके परिणामस्वरूप विधान सभा में सत्तारूढ़ दल को चुनौती दिये जाने का प्रश्न उठता हो।

विधान परिषद् द्वारा संशोधित विधेयकों की तालिका से स्पष्ट है कि विधान परिषद् ने परिशोधक सदन के रूप में कार्य किया है, किन्तु प्रश्न है कि दस वर्ष की अवधि में लगभग डेढ़ दर्जन विधेयकों का संशोधन ही क्या परिशोधक सदन के रूप में इसके औचित्य को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है ?

---

१. लास्की, एच०जे०, ए ग्रामर ऑफ पौलिटिक्स, पृ० ३३२
२. वही, पृ० ३३२

१९५२ से १९६२ के बीच लगभग ३०० विधेयक विधान मण्डल द्वारा पारित हुए हैं। वस्तुत: विधेयकों की इतनी बड़ी संख्या की तुलना में डेढ़ दर्जन विधेयकों का संशोधन परिशोधक सदन के रूप में विधान परिषद् के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

विधान मण्डल द्वारा पारित कुछ विधेयक अधिनियम बनने के पश्चात् न्यायालय द्वारा अवैध घोषित हुए थे जिसके परिणामस्वरूप उन्हें पुन: संशोधन विधेयक के रूप में लाना पड़ा था। यहाँ यह आपत्ति की जा सकती है कि यदि विधान परिषद् का कार्य ही पुनरीक्षण सम्बन्धी है तो इसने उन विधेयकों पर विचार-विनिमय के समय उनकी त्रुटियों को दूर क्यों नहीं किया ? वस्तुत: ऐसे विधेयकों को जिन्हें सरकार जल्दी में पास करना चाहती थी, विधान परिषद् को उन पर विचार करने के लिए समुचित समय नहीं मिल पाया था। तीसरे अध्याय में यह स्पष्ट हो चुका है कि इसके एक तिहाई से अधिक सदस्य वकील तथा कानूनवेत्ता थे। विधान परिषद् इन विधि विशेषज्ञों की सहायता से उन त्रुटियों को दूर कर सकती थीं यदि विधान परिषद् को इसकी पूर्व सूचना देकर उन पर विचार करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाता।

केवल पुनरीक्षण सम्बन्धी कार्य के मूल्यांकन के आधार पर विधान परिषद् के पक्ष अथवा विपक्ष में निर्णय लेना उचित नहीं है। यदि यह मान भी लिया जाय कि परिशोधक सदन के रूप में विधान परिषद् आंशिक रूप से सफल रही, किन्तु दूसरे दृष्टिकोण से भी विधान परिषद् उपयोगी रही है। विधान परिषद् ने विचारोत्तेजक सदन के रूप में भी कार्य किया है। विचारोत्तेजक सदन के रूप में इसने आलोचना के द्वारा विधेयक की कमजोरियों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है। उदाहरण के लिए १९५४ ई० के अनुपूरक अनुदान (द्वितीय किस्त) पर विधान परिषद् में हुई बहस के सम्बन्ध में तत्कालीन वित्तमंत्री श्री हाफिज-मुहम्मद इब्राहिम का कथन है कि "जो बहस आज सुबह से अनुपूरक अनुदान पर हुई, वह मेरे नजदीक बहुत माकूल और दिलचस्प बात है और इसमें वाकई बहुत ही

मुनासिब बात की ओर तवज्जह दिलाई गई है[1]। स्थानीय स्वायत्त संस्था सम्बन्धी विधेयक तथा बिक्रीकर विधेयकों के सम्बन्ध में भी विधान परिषद् ने आलोचना के द्वारा विधेयक की त्रुटियों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है।

विचारोत्तेजक सदन के रूप में विधान परिषद् का योगदान एक दूसरे रूप में भी रहा है। परिषद् ने अपने महत्वपूर्ण सुझावों से विधेयक को अन्तिम रूप देने में सहायता पहुंचायी है। विश्वविद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में विधान परिषद् द्वारा दिये गये सुझावों से विधान परिषद् की उपयोगिता प्रमाणित हुई है। विधान परिषद् के कई सदस्य विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा प्राध्यापक थे जो अन्य सदस्यों की अपेक्षा विश्वविद्यालय सम्बन्धी समस्याओं से विशेष अवगत थे। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय विधेयक पर विचार विनिमय के समय विधान परिषद् के शिक्षक सदस्यों द्वारा दिये गये सुझावों से विधान सभा और सरकार ने विश्वविद्यालय विधेयक के निर्माण में लाभ उठाया है। इसी प्रकार विनियोग विधेयक, कर विधेयक तथा अन्य प्रकार के विधेयकों पर विधान-परिषद् द्वारा दिये गये सुझावों से विधेयक को अन्तिम रूप देने में सहायता मिली है।

विधान परिषद् अन्य दृष्टिकोणों से भी उपयोगी रही है। द्वितीय सदन के कार्यों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि द्वितीय सदन में वैसे सभी अविवादास्पद विधेयकों का सूत्रपात किया जाना चाहिये जो विधान सभा द्वारा आसानी से पारित हो सके। दस वर्ष की अवधि में विधान परिषद् में लगभग १०० विधेयकों का सूत्रपात तथा उसके द्वारा पारित हुआ था। विधान परिषद् में पुरःस्थापित तथा उसके द्वारा पारित इन विधेयकों से विधान सभा को दो लाभ हुए हैं। प्रथमतः, विधान परिषद् में इन विधेयकों पर समुचित रूप से विचार हो जाने के परिणामस्वरूप विधान सभा को इन विधेयकों पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं हुई है। फलस्वरूप विधान सभा के समय की

---

१. उ०प्र० विधान परिषद् की कार्य०, खं० ३८, १६ फरवरी १९५५, पृ० १५७

सबल हुई है। द्वितीयत:, विधान परिषद् में इन विधेयकों का सूत्रपात किये जाने से विधान सभा के विधायन का भार हल्का हुआ है। वस्तुत: दोनों सदनों द्वारा सम्पादित विधायिनी कार्य के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विधान परिषद् का साधारण विधेयक के सम्बन्ध में विधायिनी योगदान विधान सभा से कम नहीं था। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि दस वर्ष की अवधि में विधान परिषद् का विधायिनी योगदान अपर्याप्त रहा।

द्विसदनीय व्यवस्था में द्वितीय सदन द्वारा प्रथम सदन के उतावले विधायन पर अवरोध की आशा की जाती है। उत्तर प्रदेश विधान परिषद् ने द्वितीय सदन के इस अपेक्षित कार्य को पूरा किया है। वस्तुत: दोनों सदनों की विधायिनी प्रक्रिया के अन्तर्गत विधेयक को पारित होने में जो समय लगा है, उससे उतावले विधायन पर अवरोध का उद्देश्य पूरा ~~पूस्न~~ हुआ है। यदि विधान परिषद् का अस्तित्व नहीं होता तो सभी विधेयकों पर समुचित रूप से विचार कर समय से पारित करना विधान सभा के लिए संभव नहीं था। स्वभावत: उसे उतावले विधायन करने पड़ते। उतावले विधायन का परिणाम विदित है। विधेयक में त्रुटि रह जाने के कारण संशोधन विधेयक लाने पड़ते हैं जिससे दुबारा समय और धन का व्यय होता है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि विधान परिषद् के रहने से विधान सभा ने उतावला विधायन बिल्कुल नहीं किया है, अथवा एक भी विधेयक में त्रुटि नहीं रह पायी है अथवा विधेयक की त्रुटि को दूर करने के लिए संशोधन विधेयक नहीं लाने पड़े हैं, किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यदि उ०प्र० विधान मण्डल में विधान परिषद् का स्थान नहीं होता तो विधान सभा के उतावले विधायन की गति और तीव्र होती जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश विधेयकों में त्रुटियां बनी रहतीं।

संविधान निर्माताओं का उद्देश्य विधान परिषद् को इस प्रकार का सदन बनाना था, जहां वाद-विवाद का स्तर ऊंचा रह सके। उत्तर प्रदेश

विधान परिषद् और विधान सभा की कार्यवाही के तुलनात्मक अध्ययन से यह विदित होता है कि विधान परिषद् में वाद-विवाद का स्तर विधान सभा की अपेक्षा काफी ऊंचा था । सामान्यरूप से सरकारी विधेयकों पर परिषद् सदस्यों के विचार सुस्पष्ट तथा उच्चस्तरीय थे । शिक्षा तथा विश्व विद्यालय विधेयक के सम्बन्ध में सरकार का दृष्टिकोण था कि विधान परिषद् में वाद-विवाद का स्तर विधान सभा की तुलना में अधिक ऊंचा रहा है । बजट, विनियोग विधेयक तथा कर सम्बन्धी विधेयकों पर भी विधान परिषद् में उच्च स्तरीय वाद-विवाद हुआ है । उदाहरणार्थ १९५६ ई० के बिक्रीकर विधेयक पर परिषद् सदस्यों के विचार सुनने के बाद तत्कालीन वित्तमंत्री तथा सदन नेता श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम का कथन है कि "यहां पर जितनी तकरीरें हुई..... सब तकरीरों के बाबत में यह अर्ज कर देना जरूरी समझता हूं कि बहुत ही मुनासिब तकरीरें हुई...... । उन तकरीरों के सुनने के बाद मैंने यह महसूस किया कि हमारे इस सदन के डिबेट का स्तर बहुत ही ऊंचा है और वह उस जगह पर है जिस जगह पर होना चाहिए ।"[१]

गैर सरकारी विधेयकों तथा संकल्पों पर भी विधान परिषद् में उच्च-स्तरीय वाद-विवाद हुए हैं । भूदान यज्ञ, भिखमंगी उन्मूलन आदि गैर सरकारी संकल्पों पर विधान परिषद् के उच्च स्तरीय बहस विधान मंडल के इतिहास में लिखे जाने योग्य हैं । विधान परिषद् के उच्चस्तरीय वाद-विवाद से जनमत पर भी प्रभाव पड़ा है । तत्कालीन न्याय मंत्री श्री सैयद अली जहीर का कथन है कि" इस हाउस के डिबेट का जनमत पर काफी प्रभाव पड़ता है ।"[२] वस्तुत: व्यापक एवं महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विधान परिषद् में स्वतंत्रता पूर्वक किन्तु गम्भीरता से विचार हुए हैं ।

उ०प्र० विधान परिषद् का मूल्यांकन उसके दृष्टिकोण के आधार पर भी

---

१. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्यवाही, सं० ४७,२१ मई १९५६ , पृ० २०३

२. उ०प्र०विधान परिषद् की कार्य०,सं० ४१,२०सितम्बर,१९५५, पृ० ३०६
संदर्भ १९५४ ई० का उ०प्र० दहेज निषेध तथा विवाह सुधार विधेयक

किया जा सकता है । सामान्यत: द्वितीय सदन के दृष्टिकोण को पूंजीवादी कह कर उसकी आलोचना की जाती रही है । सामान्यरूप से विधान परिषद् के सदस्यों का दृष्टिकोण पूंजीवादी नहीं था, यद्यपि दो-एक बिक्रीकर विधेयक तथा दूसरे प्रकार के दो-एक विधेयकों पर परिषद् के इने-गिने दो-चार सदस्यों ने व्यापारी तथा मालिक वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व किया है । वस्तुत: दो चार सदस्यों का दृष्टिकोण पूरे सदन का दृष्टिकोण नहीं हो सकता । सदस्यों ने सामान्यरूप से अनेक अवसरों पर जनहित तथा प्रदेश की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को ध्यान में रखकर विचार व्यक्त किये हैं ।

दृष्टिकोण के सम्बन्ध में परिषद् सदस्यों को सामान्यरूप से रूढ़िवादी भी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि दो-एक विधेयकों के सम्बन्ध में वर्गहित के आधार पर दो-चार सदस्यों का दृष्टिकोण रूढ़िवादी भी प्रमाणित हुआ है । उदाहरणार्थ पब्लिक गैम्बलिंग बिल पर विचार विनिमय के समय दो-चार सदस्यों ने व्यापारी वर्ग के हित के आधार पर यह राय प्रकट की थी कि दीपावली के अवसर पर व्यापारियों को जुआ खेलनेपर प्रतिबन्ध न लगाया जाय । उनका तर्क था कि व्यापारी दीपावली में जुआ खेलना शुभ मानते हैं और इसमें हार-जीत के आधार पर ही वे व्यापार में लाभ-हानि का अनुमान लगाते हैं । वस्तुत: इस प्रकार का दृष्टिकोण समाज के एक वर्ग विशेष का दृष्टिकोण है जो दीपावली में जुआ खेलना शुभ मानता है । इस दृष्टि से यदि किसी विधेयक से किसी वर्ग विशेष के हित पर प्रभाव पड़ने की संभावना हो, तो उस विधेयक के सम्बन्ध में उस वर्ग विशेष का दृष्टिकोण भी रखना आवश्यक है, यद्यपि यह एक अलग प्रश्न है कि वह विचार तथा दृष्टिकोण किस अंश तक मानने योग्य है ।

विधान परिषद् में कृषक, शिक्षक, वकील, व्यापारी, महिलाओं तथा अन्य वर्ग एवं व्यवसायों का प्रतिनिधित्व हुआ है । यदि विभिन्न हितों के प्रतिनिधित्व के लिए द्वितीय सदन आवश्यक है, तो इस दृष्टि से भी विधान परिषद् सफल रही है ।

निष्कर्ष यह कि १९५२ से १९६२ के बीच विधान परिषद् के विभिन्न पक्षों एवं उसके द्वारा सम्पादित कार्यों के आधार पर यह सदन द्वितीय सदन के रूप में उसकी उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

विधान परिषद् की सदस्य संख्या का प्रश्न :-

उत्तर प्रदेश की जनसंख्या की दृष्टि से विधान परिषद् की वर्तमान सदस्य संख्या कम है । १९५८ में ७२ सदस्यीय विधान परिषद् को १०८ सदस्यीय बनाया गया था । इसके पश्चात् आज तक इसकी सदस्य संख्या में बढ़ोत्तरी नहीं हुई है । प्रदेश की बढ़ती हुई आबादी और इसके बड़े-बड़े असुविधाजनक निर्वाचन क्षेत्र को ध्यान में रखकर इसकी सदस्य संख्या को बढ़ाया जाना आवश्यक है । शिक्षक और स्नातक निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाताओं की संख्या पहले की अपेक्षा काफी बढ़ी है । दोनों निर्वाचन क्षेत्रों के प्रत्येक में निर्धारित केवल ९ स्थान उनके समुचित प्रतिनिधित्व के लिए पर्याप्त नहीं हैं । वस्तुत: विधान परिषद् की १०८ सदस्य संख्या विधान सभा की सदस्य संख्या का लगभग चतुर्थांश है, जब कि संविधान के अनुसार इसकी महत्तम सदस्य संख्या विधान सभा की सदस्य संख्या की एक तिहाई तक बढ़ायी जा सकती है । अतएव समुचित प्रतिनिधित्व के लिए यदि इसकी सदस्य संख्या को १०८ से बढ़ाकर १४० कर दी जाय तो इसमें संवैधानिक कोई कठिनाई नहीं है । उत्तर प्रदेश इतनी बड़ी आबादी वाले इकाई के लिए विधान परिषद् की १४० सदस्य संख्या अधिक नहीं कही जा सकती ।

मनोनयन की समस्या :-

सामान्यत: मनोनयन व्यवस्था को अप्रजातांत्रिक कहा गया है । यह भी आलोचना की जाती है कि सरकार अपने दल के लोगों को ही नामजद करने का प्रयास करती है । १९५२ से १९६२ के बीच उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में भी अधिकांश नामजदगी सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के सदस्यों की हुई थी । पुन: संविधान के अनुसार साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन और समाज सेवा में विशिष्ट ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त व्यक्ति को ही नामजद किया जाना चाहिए । उ०प्र० विधान परिषद् में सबसे अधिक नामजदगी साहित्य के आधार पर हुई थी ।

साहित्य से नामजद सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण अन्य विषयों का मनोनयन के द्वारा समुचित प्रतिनिधित्व नहीं हो सका है। यद्यपि संविधान में इसका उल्लेख नहीं किया गया है कि उपर्युक्त सभी विषयों से नामजदगी समानुपात में हो, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त सभी विषयों से सम्बन्धित विभिन्न हितों के बीच संतुलन बनाये रखने के लिये तथा उनके समुचित प्रतिनिधित्व के लिए यह आवश्यक है उन विषयों में विशिष्ट ज्ञान अथवा अनुभव रखने वाले लोगों की नामजदगी समानुपात मे हो। ~~किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त सभी विषयों से सम्बन्धित विभिन्न हितों के बीच संतुलन बनाये रखने के लिये तथा उनके समुचित प्रतिनिधित्व के लिए यह आवश्यक है उन विषयों में विशिष्ट ज्ञान अथवा अनुभव रखने वाले लोगों की नामजदगी समानुपात में हो।~~

उपर्युक्त सभी समस्याओं के निदान हेतु मनोनयन व्यवस्था को हटाकर सभी विषयों का प्रतिनिधित्व निर्वाचन द्वारा कराये जाने का सुझाव दिया जा सकता है। विधान परिषद् के नामजद सदस्य डा० बीबी भाटिया की भी राय है कि यदि भिन्न-भिन्न पेशाओं के विशिष्ट अनुभवी लोग निर्वाचित होकर आवें तो वे मनोनीत सदस्यों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता पूर्वक विचार व्यक्त कर सकते हैं।[१]

शिक्षकों के प्रतिनिधित्व की समस्या :-

विधान परिषद् में शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र द्वारा शिक्षकों के प्रतिनिधित्व दिये जाने के आधार पर प्रदेश के प्राइमरी और जूनियर हाई स्कूल के शिक्षकों ने भी विधान परिषद् में प्रतिनिधित्व दिये जाने के लिए मांग की है। उनके इस मांग के आधार पर विधान परिषद् सदस्य सर्वश्री शान्तिस्वरूप अग्रवाल और पुष्करनाथ भट्ट ने विधान परिषद् की सदस्य संख्या बढ़ाये जाने के प्रस्ताव पर बहस के समय प्राइमरी और जूनियर स्कूल के अध्यापकों को प्रतिनिधित्व दिये जाने के लिए सरकार से आग्रह किया था।[२]

१. उ०प्र०वि०परि० की कार्य० खं०५१, पृ० ५०१ ,   २. वही, पृ० ५०६

वस्तुत: विधान परिषद् में जब शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र के द्वारा शिक्षकों का प्रतिनिधित्व हुआ है तो इस दृष्टिकोण से प्राइमरी और जूनियर हाई स्कूल के शिक्षकों को भी विधान परिषद् में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए, किन्तु संविधान निर्माताओं का उद्देश्य विधान परिषद् को उच्चस्तरीय द्वितीय सदन बनाना था । इस दृष्टिकोण से संविधान के अन्तर्गत शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र के लिए वर्तमान व्यवस्था ही उपयुक्त है । व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी प्रदेश की प्राइमरी और जूनियर हाईस्कूलों के शिक्षकों की इतनी बड़ी संख्या को विधान परिषद् में समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाना संभव नहीं है ।

अन्त में विधान परिषद् सफल द्वितीय सदन के रूप में कार्य कर सके, इसके लिये कुछ परम्परायें कायम की जानी चाहिए । सर्वप्रथम स्नातक और शिक्षक निर्वाचन क्षेत्र से निर्दलीय सदस्य ही निर्वाचित हों । निर्दलीय सदस्यों से परिषद् में बहस का स्तर ऊँचा हुआ है । दलीय प्रतिबन्ध नहीं होने के कारण वे महत्वपूर्ण विषयों पर स्वतंत्रता एवं गंभीरता से विचार व्यक्त कर सके हैं ।

द्वितीयत: विधान परिषद् के सभापति और उप सभापति पद पर निर्दलीय सदस्यों को ही निर्वाचित करने की प्रथा अपनानी चाहिए । विधान परिषद् का कार्य शान्त वातावरण में विधेयकों का पुनरीक्षण एवं महत्वपूर्ण विषयों पर व्यापक रूप से विचार विनिमय करना है । यद्यपि विधान सभा की अपेक्षा विधान परिषद् की कार्यवाही शान्त वातावरण में हुई है । किन्तु कभी कभी प्रतिपक्षियों द्वारा सभापति के निर्णय की अवज्ञा क अथवा उनके निर्णय के विरोधस्वरूप सदन का त्याग करने के समय विधान परिषद् की शान्ति भंग हुई है । इसक T यह अर्थ है कि सदन में शान्तवातावरण का बना रहना बहुत हद तक सभापति की निष्पक्षता पर निर्भर करता है । अत: यदि सभापति निर्दलीय एवं निष्पक्ष है, तो स्वभावत: उन्हें सभी सदस्यों का विश्वास प्राप्त होगा जिसके परिणामस्वरूप सदस्यों द्वारा उनके निर्णय की अवज्ञा अथवा

उनके निर्णय के विरोधस्वरूप सदन त्याग करने की संभावना नहीं रहेगा ।

यद्यपि निर्दलीय सदस्यों में से ही सभापति तथा उपसभापति निर्वाचित करना सर्वोत्तम है, किन्तु यदि यह संभव नहीं हो, तो एक दूसरे विकल्प को भी अपनाया जा सकता है । विधान सभा में अध्यक्ष को सत्तारूढ़ दल से तथा उपाध्यक्ष को विरोधी दल से निर्वाचित किये जाने की परम्परा कायम की गई है । प्रतिपक्ष और सरकारी पक्ष के बीच तनाव को कम करने के लिए यह प्रथा विधान परिषद् में भी अपनायी जा सकती है ।

तीसरा सुझाव सदन नेता के सम्बन्ध में है । विधान परिषद् के सदन नेता मंत्रिमण्डल के वे सदस्य नियुक्त होते रहे हैं जो विधान सभा के सदस्य थे । प्रथम सदन नेता श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम तथा उनके उत्तराधिकारी सदन नेता श्री हुकुम सिंह भी विधान सभा के ही सदस्य थे । अत: यह युक्ति-संगत नहीं है कि विधान परिषद् के सदन नेता विधान सभा के सदस्य हों । नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि नेता समान व्यवहार, समान दृष्टिकोण तथा समान गुण का हो । विधान सभा और विधान परिषद् के निर्वाचन की प्रणाली अलग-अलग होने के कारण दोनों सदनों के सदस्यों का दृष्टिकोण अलग-अलग होता है । अतएव विधान परिषद् का सदन नेता मंत्रिमण्डल का वह सदस्य नियुक्त हो जो विधान परिषद् का भी सदस्य है । इस प्रथा को अपनाने से मंत्रिमण्डल और विधान परिषद् की सन्निकटता बढ़ेगी तथा दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छा बना रहेगा ।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

(क) कार्यवाही :-

१. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की कार्यवाही, खंड संख्या २५ से ८८ तक
२. उ०प्र० विधान सभा की कार्यवाही, खं०सं० १०० से २२५ तक
३. भारतीय संविधान सभा डिबेट, खण्ड ४,५,७।६
४. दि कंस्टिट्यूशन ऑफ इंडिया (१ सितम्बर १९६७ तक परिशोधित) भारत सरकार प्रका०,दिल्ली, १९६७

(ख) हस्तलिखित मूल स्रोत:-

१. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में आरम्भ किये गये विधेयकों का रजिस्ट १९५२ से १९६० तक (उ०प्र०विधान परि०सचिवालय)
२. उत्तर प्रदेश विधान सभा में आरम्भ किये गये तथा परिषद् को हस्तांतरित किये गये विधेयकों का रजिस्टर (मार्च १९५२ से १९ मई १९६१ तक, उ०प्र०वि०परिषद् का सचिवालय)
३. सरकारी संकल्पों का रजिस्टर (मार्च १९५२ से अक्टूबर १९६२ तक)
४. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के गैर सरकारी संकल्पों का रजिस्टर (१७ जुलाई १९५२ से अक्टूबर १९६१ तक,उ०प्र०विधान परिषद् सचिवालय,लखनऊ)
५. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के असरकारी विधेयकों का रजिस्टर (१९५३ से १९६० तक, उ०प्र०विधान परि०सचिवालय,लखनऊ)

(ग) संक्षिप्त सिंहावलोकन :-

१. उ०प्र० विधान परिषद् के कार्यों का संक्षिप्त सिंहावलोकन (१८ जुलाई १९५७ से ६ अप्रैल १९५८ तक) विधान परिषद् सचिवालय, लखनऊ ।

(२) उ०प्र०विधान परिषद् के कार्यों का संक्षिप्त सिंहावलोकन २० जुलाई १९५८ से ८ अप्रैल १९५९ तक) विधान परिषद् सचि०, लखनऊ ।

३. उ०प्र०विधान परिषद् के १९५९ ६० के प्रथम सत्र में कृतकार्य का सिंहावलोकन (२९ जुलाई १९५९ से २२ मई १९६० तक), उ०प्र० वि०परि०,सचि०, लखनऊ

४. उ०प्र०विधान परिषद् के १९६० के सत्र में कृत कार्य का सिंहावलोकन २२ जुलाई १९६० से २० दिसम्बर १९६० तक) ,

५. उ०प्र० विधान परिषद् के १९६१ के प्रथम सत्र में कृतकार्य का सिंहावलोकन (६ फरवरी १९६१ से १९ मई १९६१ तक), विधान परिषद् सचि०, लखनऊ

६. उ०प्र०वि०परि० के १९६१ के प्रथम सत्र में कृतकार्य का सिंहा० (१७ अगस्त १९६१ से २७ अक्टूबर १९६१ तक), विधान परि०सचि०, लखनऊ ।

७. उ०प्र० विधान परिषद् के १९६१ के तृतीय सत्र में कृतकार्य का सिंहावलोकन (१५ नवम्बर १९६१ से ६ मार्च १९६२ तक, वि०परि० सचिवालय,लखनऊ

८. उ०प्र०विधान परिषद् के १९६२ के प्रथम और द्वितीय सत्र के कार्यों का सिंहावलोकन (१४ दिसम्बर १९६२ तक), विधान परिषद् सचि०, लखनऊ

९. उ०प्र०विधान सभा के कार्यों का संक्षिप्त सिंहावलोकन (प्रत्येक वर्ष का अलग-अलग १९५७ से १९६२ तक) उ०प्र०विधान सभा सचि० लखनऊ

६. नियमावली तथा सभापति के निर्णयों का संकलन :-

१. रूल्स औफ प्रोसिड्यौर एण्ड कंडक्ट आफ बिजनैस औफ दि उत्तर प्रदेश लैजिस्लैटिव कौंसिल लखनऊ (१९५२)

२. उत्तर प्रदेश विधान परि० की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली

लखनऊ (१९६१)

३. उत्तर प्रदेश विधान सभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली(लखनऊ १९६१)

४. रेगुलेशन्स मेड अन्डर दि० यू०पी० लैजिस्लैटिव कौंसिल रूल्स,इलाहाबाद,१९५८

५. उत्तर प्रदेश विधान परिषद् में सभापति पद से दिये गये निर्णयों का संकलन (२ फरवरी १९५० से १२ अक्टूबर,१९६० तक) उ०प्र०वि०परि० सचिवालय, कार्यवाही विभाग,१९६९)

६. उत्तर प्रदेश विधान सभा में अध्यक्ष पद से दिये गये महत्वपूर्ण निर्णयों का संहित संकलन, अप्रैल १९५२ से २२ दिसम्बर १९६७ तक (सं० १०१ से लेकर २७५ तक), (उ०प्र०वि०सभा सचिवालय,कार्यवाही विभाग, १९६९)

(ड०) प्रतिवेदन :-

१. चैम्सफोर्ड रिपोर्ट (१९१८)

२. रिपोर्ट ऑफ दि इंडियन स्टैच्युटरी कमीशन,वौल्यूम २ , रिकोमैन्डेशन्स, कलकत्ता गवर्नमेंट ऑफ इंडिया सैन्ट्रल पब्लिकेशन, ब्रांच (१९३०)

३. नेहरू रिपोर्ट

४. विधान परिषद् की आश्वासन समिति का प्रतिवेदन (१ से ६ तक)

५. विधान सभा की आश्वासन समिति का प्रतिवेदन

(च) शोध प्रबन्ध :-

१. सईद मोहम्मद - रोल ऑफ दि कमिटीज इन यू०पी० लैजिस्लेचर (थीसिस, लखनऊ यूनि०,लाइब्रेरी)

२. किदवई , प्रोबलेम ऑफ सेकेन्ड चेम्बर्स इन इंडिया विद स्पेशल रिफरेन्श यू०पी० (१९४२) (थीसिस, लखनऊ यूनि०,लाइब्रेरी)

(छ) सहायक ग्रन्थ :-

१. ऑस्टिन ग्रेनविल, दि इंडियन कंस्टिट्यूशन (ऑक्सफोर्ड ,१९४४)

२. आयंगर,एस०श्री निवास, स्वराज कंस्टिट्यूशन , मद्रास (१९२७)

३. अग्रवाल आर०एन० - नेशनल मूवमेंट एन्ड कंस्टिट्यूशनल डेवलपमेंट, दिल्ली, द्वितीय संस्क० १९५६

४. बनर्जी, ए०सी० और चटर्जी, कै०एल०, ए सर्वे ऑफ दि इंडियन कंस्टिट्यूशन, कलकत्ता प्रथम संस्करण १९५७)

५. बनर्जी, कै०एल०, इंडियन कंस्टिट्यूशनल डौक्यूमेन्ट्स (१७५२-१९३६) वौल्यूम ३, कलकत्ता(१९४८)

६. बनर्जी, डी०एन० इंडि०कंस्टिट्यूशन एण्ड इट्स एक्चुअल वर्किंग, कलकत्ता १९३५

७. बसु, दुर्गादास, कॉमेन्ट्री औन दि कंस्टिट्यूशन औफ इंडिया, वौल्यू० ३, (पंचम संस्क०) १९६७

८. बार्कर, अर्नेस्ट, रिफ्लेक्शंस औन गवर्नमेंट, औक्सफोर्ड, प्रथम संस्क०, पुन: मुद्रित (१९४८)

९. बार्कर, अर्नेस्ट - प्रिंसिपुल्स औफ सैशल एन्ड पौलिटिकल थ्योरी, औक्सफोर्ड (पुन: मुद्रित (१९५५)

१०. बार्कर, अर्नेस्ट - ऐसैज औन गवर्नमेंट औक्सफोर्ड (१९४५)

११. कार्ल जे० फ्रेडरिक, कंस्टिट्यूशनल गवर्नमेंट एंड डैमोक्रेसी, आई०बी०एच०, कलकत्ता, (१९६६)

१२. दास, एस-सी०, कंस्टिट्यूशन औफ इंडिया (इलाहाबाद, १९६०)

१३. फाइनर, एच० थ्योरी एन्ड प्रैक्टिस औफ मॉडर्न गवर्नमेंट, लंदन(१९६१)

१४. फाइनर एच० गवर्नमेंट औफ ग्रेटर यूरोपियन पावर, लंदन, (१९५६)

१५. जहीर एम०एन्ड गुप्त जगदेव - दि औरगैनाइजेशन औफ दि गवर्नमेंट औफ उत्तर प्रदेश एस० चन्द एण्ड कं० १९७०

१६. जैनिंग्स, सर आइवर - दि लॉ औफ दि कंस्टिट्यूशन, (लंदन चतुर्थ संस्क० १९५४ ई०)

१७. जैन, सी०एम०, स्टेट लैजिस्लेचर्स इन इंडिया, एस०चंद एण्ड कं० प्रथम सं० १९५२-६६;

१८. जॉनसन, ए० डब्ल्यू दि युनिकैमेरल लैजिस्लेचर (१९३८)

१९. हैन्स, जी०एच०, दि सिनेट एन्ड दि युनाइटेड स्टेट्स, इट्स हिस्ट्री एण्ड प्रैक्टिस १९२८)

२०. कीट्न, जी०डब्ल्यू- दि पासिंग औफ पार्लियामेंट, लंदन, १९५२

२१. लास्की, एग्रामर औफ पौलिटिक्स, लंदन, चतुर्थसंस्क०

२२. लास्की, पार्लियामेंट्री गवर्नमेंट इन इंगलैण्ड, लंदन, १९४८

२३. लौन्डी फिलिप - दि औफिस औफ स्पीकर (लंदन, प्रथम संस्क० १९६४)

२४. लीoस्मीथ,एचoबीo- सैकैन्ड चैम्बर्स इन थ्यौरी एन्ड प्रैक्टिस(१६२३)
२५. मैरियट,जेoआर- सैकैन्ड चैम्बर्स, औक्सफोर्ड (१६१०)
२६. मारकंदन,कैoसीo मद्रास लैजिस्लैटिव कौंसिल (१८६१ से १६०६ तक) एसoचन्द एण्ड कंo, प्रथम संस्कo
२७. माइकैलमैकडोनाह दि पेजिएन्ट औफ पार्लियामेंट (लंदन प्रथम संस्कo,१६२१)
२८. मौरिस,जौन्स - पार्लियामेंट इन इंडिया, (लंदन,प्रथमसंस्कo १६५६)
२६. मौरगैन,जेoएचo दि हाउस औफ लार्ड्स एन्ड कंस्टिट्यूशन
३०. मौर,एसoएसo - प्रैक्टिस एन्ड प्रौसिड्यौर औफ इंडियन पार्लियामेंट, बम्बई, प्रथम संस्कo १६६०
३१. मुन्शी,कैoएमo - इंडियन कंस्टिच्यूशनल डौक्यूमेंट्स, वौo १ (बाके प्रथम संस्कo १६६७ ईo)
३२. मुखर्जी,एoआरo (पार्लियामेंटरी प्रौसिड्यौर इन इंडिया,औक्सफोर्ड(द्वितीय संस्कo १६६७)
३३. पाईक,एलoऔo- ए पौलिटिकल हिस्ट्री आफ हाउस औफ लार्ड्स
३४. पचौरी,पीoएसo, लॉ औफ पार्लियामेंट्रीप्रिविलैजेज इन यूoकैo एण्ड इंडिया, बम्बई,प्रथम संस्कo १६७१)
३५. पाइली,एमoवीo - कंस्टिच्यूशनल गवर्नमेंट इन इंडिया (एसिया पब्लिoहाउस, द्वितीय संस्कo १६३५
३६. रॉबर्ट्स,सीoबीo - दि फंक्शन्स औफ एन इंगलिश सैकैन्ड चैम्बर,लंदन,प्रथम संस्करण१६२६
३७. राव,बीoएनo, इंडियाज कंस्टिच्यूशन इन मैकिंग औरियन्ट लौंग्समैन (१६६०)
३८. राव,बीoशिवा- दि फ्रेमिंग औफ इंडियाज कंस्टिच्यूशन:सैलैक्ट डौक्यूमेंट्स न्यूo दैलही १६६७)
३६. राव,बीoशिवा- दि फ्रेमिंग औफ इंडियाज कंस्टिच्यूशन न्यू दैलही, प्रथम संo
४०. सैनoडीoकैo इंडियन कंस्टिच्यूशन, औरियन्ट लौंग्समैन,१६६०
४१. टैम्परलै,डब्ल्यू बीo- सिनैट्स एनण्डअपरचैम्बर्स,(लंदन १६१०)
४२. वाट्स आरएलo - न्यू फैडैशन्स एक्सपैरिमेंट इन कॉमनवैल्थ (ऑक्सफोर्ड१६६६)
४३. विल्सन- दि स्टैट (लंदन,१६१६)

४४. वरम्हा,आर० - दि मैकिंग श्रौफ दि न्यू कंस्टिच्यूशन फ ौर इंडिया,एनाकुलम
१६३४ ई०
४५. ह्वीयर,कै०सी०- लैजिस्लैचर (लंदन,प्रथम संस्करण, पुन: मुद्रित(१६६५)
४६. ह्वीयर,कै०सी० गवर्नमेंट,बाई कमिटी, ऑक्सफ ोर्ड ,प्रथम संस्करण, पुन:मुद्रित
१६६८
४७. उ०प्र०विधान सभा सदस्यों का जीवन परिचय, १९५६ लखनऊ सचिवालय
४८. उ०प्र० विधान परिषद् सदस्यों का जीवन परिचय, १९६२ लखनऊ, सचिवालय

समाचार पत्र जर्नल और पैम्फलैट :-

१. टाइम्स श्रौफ इंडिया- जून १६५४, अप्रैल ७, १६६६.
२. पायोनियर, जून (२२) १६५६
३. हिन्दुस्तान अक्टूबर (१८), १६६८
४. दि सर्चलाइट (पटना) अप्रैल, ४, १६७०
५. दिनमान, टाइम्स श्रौफ इंडिया प्रकाशन,१४ अप्रैल १६६७
६. जर्नल श्राफ दि सौसाइटी फ ौर दि स्टडी श्रौफ स्टैट गवर्नमेंट्स (वाराणासी)
१६५८ से १६६२ तक)
७. ए शॉर्ट नौट श्रौन प्रिविलैज (पैम्फलैट), द्वारा श्री चन्द्रमाल
८. "प्रश्न" - द्वारा चन्द्रमाल, लखनऊ सचिवालय
६. दि स्पीकर श्रौफ दि हाउस श्रौफ कौमन्स (हैन्सर्ड सौसाइटी पैम्फलैट)
द्वारा ब्रियर्स , पी०एम०

साक्षात्कार :-

१. श्री परमात्माशरण पचौरी, सचिव उ०प्र०विधान परिषद्
२. डा० ईश्वरीप्रसाद (उ०प्र०विधान परिषद् सदस्य १६५२ से १६७२ तक)
३. डा० श्यामनारायण (विधान परि०सदस्य १६६० से १६६६ तक)
४. श्री हृदयनारायण सिंह (उ०प्र० वि०परि०सदस्य,१६५२ से लगातार
५. श्री राजाराम शास्त्री सदस्य, उ०प्र०वि०परिषद्,१६५२ से ७० तक)

६. डा० प्यारेलाल श्रीवास्तव (सदस्य उ०प्र०विधान परि०१९५२ से १९६२)

७. श्रीमती महादेवी वर्मा (नामजद सदस्या उ०प्र० विधान परिषद् १९५२ से ६२ तक)

८. श्रीमती रानी टंडन (सदस्या विधान सभा, उ०प्र०)

९. श्रीमती कमला गोइन्दी (सदस्या विधान सभा उ०प्र०)

१०. श्री लक्ष्मीशंकर यादव, (सहकारी मंत्री, उत्तर प्रदेश)

—